सस्कृति रक्षक सघ माहित्य रत्नमाला का ३८ वा रत्न

समर्थ समाधान

भाग २

संग्राहक-
श्रीमान् सेठ किसनलालजी पृथ्वीराजजी
गणेशमलजी मालू
खीचन

सम्पादक- रतनलाल डोशी

प्रकाशक-

अखिल भारतीय साधुमार्गी
जैन संस्कृति रक्षक संघ
सैलाना (मध्य-प्रदेश)

मूल्य ३-००

प्रथमावृत्ति
२५००

वीर संवत् २४९१
विक्रम संवत् २०२
सन् १९७

सम्पादक की ओर से

शास्त्रो का स्वाध्याय करने वाले तो किसी भी जमाने में वहुत होते है, किन्तु उनका भाव,आशय एव रहस्य समझने वाले वहुत कम होते है और गीतार्थ तो विरले ही होते हैं। हमारे इस युग मे वहुश्रुत श्रमणश्रेष्ठ पूज्य श्री १००८ प श्री समर्थमलजी म सा हमारे समाज मे आदर्श श्रुतज्ञानी हैं। आपका अनुभव विशाल है। ज्ञान और चारित्र-रुचि एव सतर्कता अद्वितीय है। आप इस हीयमान युग मे धर्म-प्रेमियो के लिए अवलम्वनभूत हैं। आपके उपदेश वडे तात्विक एव मार्मिक होते है। भौतिकता धान युग मे आपकी अध्यात्मनिष्ठा (चारो ओर व्याप्त दूषित व विपरीत वातावरण मे भी) शान्त दृढता, अडिगता आदि ुण आदर्श हैं। ठीक ही कहा है कि–"**नो दृश्यते तवसमो ुनिमण्डलेस्मिन्** ।" सचमुच आप अद्वितीय है। आप चिरायु रह कर धर्म की ज्योति जगाते रहे।

समर्थ-समाधान प्रथम भाग तो प्रकाशित होने के थोडे दिन बाद ही अप्राप्य हो गया और दूसरी आवृत्ति की मांग होने लगी, जो अवतक होती आ रही है। प्रथम भाग की उपयोगिता इसी से सिद्ध होती है कि दानवीर धर्मप्रिय श्रीमान् सेठ रामजी

भाई शामजी वीराणी राजकोट की ओर मे, गुजराती अनुवाद हो कर प्रकाशित हो रही है। हिन्दी प्रकाशन से अनेक साधु-साध्वियो ने भी लाभ लिया है। इस प्रकाशन मे तत्त्वज्ञ सिद्धात-प्रेमियो के ज्ञान मे अभिवृद्धि हुई है। गुजराती अनुवाद हिन्दी की कमी पूरी करेगा–इस आशा मे हमने पुनरावृत्ति का कार्य रोक कर दूसरे भाग का कार्य प्रारभ किया।

दूसरे भाग के सम्पादन मे हमे कई कठिनाइयो का सामना करना पडा। प्रथम भाग तो हमने सम्यग्दर्शन के अको से ही सम्पन्न कर लिया था, परन्तु दूसरा भाग तो रजिस्टर पर से ही लेना था। रजिस्टर की नकल करवाने की आवश्यकता हुई। श्रीमान् सेठ किसनलालजी पृथ्वीराजजी सा मालू के रजिस्टर को हम कम्पोज मे नही दे सकते थे। इस रजिस्टर मे अशुद्धियाँ भी बहुत है। हमे इतना समय नही मिलता कि जिससे हम इस कार्य मे विशेष समय दे सके। हम इसकी नकल करवा कर कम्पोज मे देते रहे। प्रूफ देखते समय हमारे सामने कई कठिनाइयाँ आई। कई बार मूल या टीका का पाठ मिलाने के लिए, काम रोक कर उधर समय देना पडा, और कभी-कभी साधन प्राप्त करने के लिए पुस्तकालय जाने मे विलम्ब होने और अन्य आवश्यक कार्य के आकर्षण के कारण उपेक्षा से आगे बढना पडा। कई स्थलो पर मुझे भी समझने मे कठिनाई हुई, परन्तु पूछ कर समाधान प्राप्त करने मे कई दिनो का विलम्ब होता था, इस लिए वैसे ही चलाना पडा। सब मे सरल तरीका तो मूल रजिस्टर का सशोधन होने के बाद प्रकाशन होना है। किन्तु हम ऐसा नही कर

सकते थे। प्रथम आवृत्ति के प्रकाशन के प्रश्न पर, अहमदाबाद मे हम पूज्य बहुश्रुत श्रमणश्रेष्ठ की अप्रसन्नता देख चुके थे। इसलिए सशोधन करवाने की बात तो हम सोच भी नही सकते थे। हमे जैसे तैसे यह कार्य सम्पन्न करना पडा।

प्रूफ सशोधन भी निर्दोष नही है। कही-कही तो रजिस्टर के लिपिकार और प्रश्नकार की भूले भी इसमे रह गई है। उदाहरणार्थ पृ ४०३ प्रश्न न १४६२ और पृ ४०४ प्रश्न न १४६३ मे 'धर्मघोष' के स्थान पर 'धर्मरुचि' होना था। यह भूल प्रूफ सशोधन तक ध्यान मे नही आई। इस पर ध्यान गया–प्रश्नानुक्रमणिका के समय। पाठक मेरी विवशता की ओर देख कर क्षमा करेगे। वे यही सोच कर सतोष करे कि–भले ही रोटी, गोल नही हो कर वाकी-टेढी है, परन्तु है तो निखालिस गेहूँ की ही। इसमे मिट्टी व ककर-पत्थर तो नही है।

श्रीमान् सेठ किसनलालजी पृथ्वीराजजी सा मालू खीचन निवासी का समाज उपकृत रहेगा, जिन्होने प्रश्नोत्तरो की नकल करवा कर सुरक्षित रखे। उसी के आधार से यह प्रकाशन हो रहा है। ये प्रश्नोत्तर तीसरे और चौथे रजिस्टर के हैं। इस रजिस्टर मे और भी प्रश्नोत्तर शेष बचे है। आगे तीसरे भाग का कार्य कब प्रारम्भ होगा, यह बताना कठिन है। जबतक इसका निरीक्षण और पुनर्लेखन नही हो जाय, तबतक तो रुकेगा ही।

इस भाग मे सम्वत्सरी, ध्वनियन्त्र प्रयोग, आधाकर्मी सेवन, किसमिस, उपादान और निमित्त, आत्मवाद आदि कई प्रश्नो का उत्तर विस्तारपूर्वक अकित है। प्रश्न न १११३ पृ. २१७ से

प्र ११११७ पृ ७२० तक 'अपवाद' विपयक प्रश्न तो आचार्य श्री नानालालजी म सा के है। पाठको को उन पर निर्ग्रंथ-परम्परा की दृष्टि से सोच कर सही बात अपनानी चाहिए।

समर्थ-समाधान भा २ को देखने और मनन करने के लिए बहुत से साधु-साध्वी और श्रावक-श्राविकाएँ उत्सुक रहते है और हमसे 'समर्थ समाधान' की माँग करते ही रहते हैं। दूसरे भाग के थोक आर्डर से यह रुचि स्पष्ट होती है। निम्न महानुभावो ने हमे इस प्रकार थोक आर्डर दिया है।

५०० श्रीमान् रतनलालजी मालू खीचन (व्यवसाय स्थान जैपुर–उडीसा)
२५० ,, सेठ पीराजी छगनलालजी, झाब।
२०० श्रीमती भूरीबाई मातेश्वरी श्री मोहनलालजी सोहन-लालजी सुराणा मड्या।
१०० श्री शामजी वेलजी वीराणी अने श्री कडवीबाई वीराणी स्मारक ट्रस्ट राजकोट।
१०० श्रीमान् मोतीलालजी बोहरा मद्रास।
१०० ,, सेठ जुगराजजी श्रीश्रीमाल येवला।
१०० श्रीमती भँवरबाई द्वारा श्री किसनलालजी कोठारी मैसूर (मारवाड मे मेसिया)
१०० श्रीमान् घीसुलालजी धर्मीचदजी जैन हैद्राबाद।
५० ,, फतेचदजी भीखमचदजी जुगराजजी गादिया बैंगलोर
५० ,, बाबूलालजी मागीलालजी आलीजार आर्णी

५० ,, मोतीलालजी कोठारी की मातेश्वरी, आर्णी
५० ,, शिवलालजी चपालालजी वांरूदिया जसनगर
५० ,, नेमीचदजी बाठिया पीपलिया-कला
५० ,, मुल्तानमलजी घेवरचदजी भडारी जोधपुर
२५ ,, जगजीवनदासभाई रतनशी वगडिया दामनगर
२५ ,, सेठ मेहताबचदजी जैन, दिल्ली।
२५ ,, पूनमचदजी धूपिया, रायपुर (राज)
२५ ,, जयतिलालभाई, मस्कारिआ बम्बई

इस प्रकार १८५० की अग्रिम माँग दर्ज हुई। इसके अतिरिक्त दस-पाँच आदि की कई माँगे आई, जिन्हे हमने लिखा ही नही। हमने कुल २५०० प्रतियाँ ही छपवाई है। यदि सम्यग्दर्शन मे विज्ञप्ति प्रकाशित होते ही हमे सूचना मिल जाती, तो हम विशेष प्रतियाँ छपवाते। जब फार्म छप कर खुल चुके, तब अपनी माँग भेजने वालो की व्यवस्था हम कैसे कर सकते थे ? हमे फुटकर प्रतियाँ माँगने वालो को भी देनी ही पडेगी।

इस पुस्तक का मूल्य हमने तीन रुपया रखा है, जो छपाई, कागज और जिल्द बँधाई का खर्चा मात्र है। प्रथम भाग की पुस्तक भी इतने ही आकार की थी, किन्तु उसका मूल्य दो रुपया था, जो लागत से कम था। मेरा सदा से यही विचार रहा कि सघ-साहित्य स्वल्प मूल्य मे प्रचारित होता रहे। अब-तक मैं यही सोच कर प्रयत्न करता रहा। भगवती सूत्र–जिसमे दो रुपये लगभग की लागत का तो बाइंडिंग ही है, केवल पांच रुपये मे दिया जाता रहा। परन्तु अब सघ के कुछ

सदस्यो का विचार है कि मूल्य लागत से कम नही रखा जाय, क्यो कि हमे १००) रुपये और इससे अधिक लेने वाले को १०) प्रतिशत बटाव (कमिशन) भी देना पडता है। इधर राज्य के विक्रय कर विभाग की ओर से भी परेशानियाँ उत्पन्न हो रही है। लगता है कि पुस्तक निर्माण पर भी टेक्स लगेगा। इत्यादि बातो पर विचार कर इस बार इस पर, पूरा लागत मूल्य लगाया गया है।

सघ का कार्य विकसित हो—यह तो इसके सभी शुभेच्छुक चाहते है। किन्तु इसका स्थायी कोष क्या है ? अब तक यह कार्य विना स्थायी कोष के, मात्र सहयोगियो की कृपा से ही चलाया जाता रहा। अब तो सघ का खर्च भी वढ गया है। कागज आदि भी महँगे हो गये है। कार्यकर्त्ताओ का पारिश्रमिक भी वढ गया है। अब तक यह सघ, बिना स्थायी ठोस निधि के ही साहित्य सेवा करता रहा। किन्तु अब समाज के धर्म-प्रिय महानुभावो को इस ओर ध्यान दे कर सघ की आर्थिक स्थिति सुदृढ वना ही देना चाहिए।

समर्थ-समाधान भाग २ पाठको की सेवा मे उपस्थित करते हुए मै हर्षित हूँ और चाहता हूँ कि इसका अधिकाधिक सदुपयोग हो।

सैलाना माघ कृ १२ —रतनलाल डोशी
वीर सम्वत् २४९६
विक्रम सवत् २०२६
ता ३-२-१९७०

प्रश्नान्तर्गत विषय

प्रश्नाक पृष्ठाक

प्रश्नांक पृष्ठांक

प्रश्नांक | पृष्ठांक

प्रश्नांक पृष्ठांक

प्रश्नांक | | पृष्ठांक

प्रश्नाक | पृष्ठाक

प्रश्नांक | पृष्ठांक

प्रश्नांक पृष्ठांक

प्रश्नांक पृष्ठाक

प्रश्नांक पृष्ठांक

प्रश्नांक पृष्ठांक

२६ एक सौ दो बोल का बासठिया	०–०७	०–१०
२७ गुणस्थान स्वरूप	०–१६	०–१०
२८ गति-आगति	०–०७	०–१०
२९ कर्म प्रकृति	०–०८	०–१०
३० नव तत्त्व	०-६०	०–२०
३१ समर्थ समाधान भाग १	अप्राप्य	
३२ जैन सिद्धात थोक सग्रह भाग २	१–५०	०–३५
३३ रजनीश दर्शन	०–२०	०–१०
३४ भगवती सूत्र भाग ४	५–००	१–८०
३५ शिविर व्याख्यान	१–६०	०–३०
३६ मगल प्रभातिका	०–३०	०–१०

卐 शीघ्र प्रकाशित होंगे 卐

भगवती सूत्र भाग ५

समर्थसमाधान भाग २

जैनसिद्धात थोक सग्रह भाग १ आवृत्ति २

पच्चीस बोल का थोक आवृत्ति २

समकित के ६७ बोल

समिति गुप्ति

समर्थ समाधान

भाग २

८१६ प्रश्न–पुण्यानुबंधी और पापानुबंधी-पुण्य के कौन-कौन से कार्य हैं? किन-किन कामो के करने से जीव, पापानुबंधी-पुण्य बांधता है? पापानुबंधी-पुण्य के द्वारा जो शरीर, संपत्ति, समझ, सत्ता आदि मिलती है, वह अच्छे कार्य मे लगती है या बुरे कार्य मे? पापानुबंधी-पुण्य के भोगने से जीव का उत्थान होता है या पतन–गति, जाति, स्थिति तथा आत्मिक शक्ति मे?

उत्तर–ज्ञानपूर्वक, नियाणा रहित, कुशल अनुष्ठान (सर्व जीवो मे दया, विरागता, विधिवद गुरु-भक्ति, निरतिचार चारित्र आदि) मे पुण्यानुबंधी पुण्य होता है, भरत चक्रवर्ती आदि की तरह।

नियाणादि दोषो से दूषित धर्म अनुष्ठान से पापानुबंधी-

पुण्य होता है। ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती आदि की तरह। पापानुबंधी-पुण्य के द्वारा मिली हुई संपत्ति आदि बुरे कार्य मे लगती है और पापानुबंधी पुण्य के भोग से जीव का उत्थान नही होकर पतन होता है। ऐसा पतन गति, जाति, आत्मिक शक्ति आदि मे भी समझना चाहिए। उपरोक्त खुलासा हारिभद्राष्टक २४ वाँ सटीक, पंचाशक सटीक, पंचवस्तु सटीक आदि ग्रंथो मे दिया गया है तथा 'अभिधान राजेन्द्र' कोष भाग ५ वॉ पृष्ठ ९९२-९३ मे भी दिया गया है।

८२० प्रश्न–जीव के ५६३ भेद हैं, उनमे से चार गति मे शाश्वत और अशाश्वत जीव कितने है ? पर्याप्ता और अपर्याप्ता मे कितने-कितने है ?

उत्तर–सात नारकी के अपर्याप्ता . ७
पांच सन्नी तिर्यंच के अपर्याप्ता . ५
एक सौ एक सन्नी मनुष्य के अपर्याप्ता . १०१
एक सौ एक असन्नी (समुर्च्छिम) मनुष्य.... १०१
और निन्यानवे देवो का अपर्याप्ता....९९

एवं ७+५+१०१+१०१+९९=३१३। ये जीव के ३१३ भेद अशाश्वत हैं और जीव के २५० भेद चार गति मे शाश्वत हैं।

सात नारकी के पर्याप्ता–७, पांच सन्नी तिर्यंच के अपर्याप्ता को छोड कर शेष तिर्यंच के ४३, एक सौ एक सन्नी मनुष्य के पर्याप्ता और ९९ देवो के पर्याप्ता एवं कुल २५० जीव के भेद शाश्वत हैं।

८२१ प्रश्न—क्षायिक-वेदक समकित ७ वे गुणस्थान में प्रवेश के बाद ही आती है या चौथे गुणस्थान मे भी आ जाती है ?

उत्तर—क्षायिक-वेदक समकित चौथे गुणस्थान मे भी आ सकती है।

८२२ प्रश्न—नव नारु व नव कारु, इन १८ के नाम और अप्रसिद्धो का अर्थ बतलावे ?

उत्तर—श्रेणी के १८ भेद होते हैं। उनमे ९ नारु और ९ कारु इस प्रकार हैं,—

नव नारु—१ कुंभकार, २ पट्टइल्ल (पटेल—किसानो का मुखिया) ३ सुवण्णकारा (सुनार), ४ सूवकारा (रसोइया), ५ गधव्वा (गवैया) ६ कामवग्गा (नाई), ७ मालाकार (माली), ८ कच्छकरा (कीर जो नदी आदि के पास ककड़ी, खरबूजा आदि बोते हैं और ९ तंबोली।

नव कारु—१ चम्मयरु (चर्मकार—चमडे आदि का काम करनेवाला), २ जंतपीलग (तेली), ३ गन्छिऊ (गाछा), ४ छिपाय (छीपा), ५ कंसकार (कसारा—बर्तन बनाने वाला), ६ सीवग (दर्जी), ७ गुआर (सम्भवत. ग्वाल होना चाहिए), ८ भिल्ला (भील) और ९ धीवर (मच्छीमार)।

८२३ प्रश्न—आठ महाप्रतिहार्य भगवान् के हमेशा रहते हैं या नही और यदि रहते हो, तो मृगावतीजी के समय अंधकार क्यो हुआ ?

उत्तर—समवसरण मे भगवान् के पीछे भामण्डल रहता

ही है। समवसरण मे अधेरा नही होता और न मृगावतीजी को भी समवसरण मे अधेरा मालुम हुआ। परन्तु समवसरण के बाहर तो अँधेरा होना स्वाभाविक ही है। समवसरण मे अँधेरा न होते हुए भी दिन व रात का ज्ञान तो समवसरण-वासियो को अवश्य होता था। बिना जाने स्वाध्याय, ध्यान, भिक्षा, प्रतिक्रमण और निद्रात्याग आदि कार्य, साधु कब और कैसे करते ? अत समवसरणवासियो को समवमरण मे भी दिन व रात का ज्ञान अवश्य होता ही था।

यहाँ खास बात यह है कि उस मौके समवसरण भूमि मे चन्द्र और सूर्य मूल (खास शाश्वत) विमान से आये हुए थे। सूर्य विमान की वहाँ मौजूदगी होने से महासती मृगावतीजी को असमय होने का पता नही लगा और विमान जाते ही शीघ्र मालूम हो गया।

चन्द्र और सूर्य का शाश्वत विमान से आना, निम्नोक्त स्थानाग के पाठ की टीका से स्पष्ट है। पाठ–"उतरण चन्द्र-सुराणं (सू. ७७७)" टीका "भगवतो महावीरस्य वन्दनार्थमवतरणमाकाशात् समवसरणभूम्या चन्द्रसूर्ययो शाश्वतविमानोपेत-योर्बभूवेदमप्याश्चर्यमेवेति ॥६॥"

८२४ प्रश्न–ध्यान करने से निकाचित कर्म टूटते हैं या भोगने से ?

उत्तर–ध्यान तप है, तप से भी निकाचित कर्म टूटते हैं, यह बात स्थानाग के दस प्रकार के बल की इस–"तपोबल यद-नेकभवार्जितमनेकदु खकारण निकाचितकर्म्मग्रंथि क्षपयति" (सू.

७४०) टीका से स्पष्ट है ।

८२५ प्रश्न–दूसरे नमुत्थुण मे–"कामाण" शब्द है, तो क्या केवली भगवान् भी मोक्ष की अभिलाषा करते है ?

उत्तर–अप्रमत्त मुनि, मोक्ष की अभिलाषा नही करते । परन्तु अभिलाषा नही करते हुए भी जिस कार्य से जो वस्तु प्राप्त होती है, उसके कर्त्ता को उस चीज का अभिलाषी कहते हैं । जो व्यक्ति जिस वस्तु के योग्य बनता है, उसे भी उस वस्तु का अभिलाषी कहते हैं तथा जिस कार्य से जो परिणाम निकलनेवाला हो, उस कार्य के कर्त्ता को, बिना अभिलाषा के भी उस परिणाम के अभिलाषी कहते हैं । जैसे उत्तराध्ययन–७ मे "आएसपरिकखए," "आएसाए समीहिए," "आऊ अनरएकखे, जहाएसवएलए" इन उदाहरणो से मोक्ष की अभिलाषा न करते हुए भी भगवान् को मोक्षाभिलाषी समझना चाहिए ।

८२६ प्रश्न–जो जीव, जल्दी से जल्दी अपर्याप्त अवस्था मे मरते है, वे किस पर्याप्ति के अपर्याप्ता रहते हुए मर सकते हैं ?

उत्तर–इन्द्रिय पर्याप्ति पूर्ण होने पर ही जीव पर-भव का आयु बांध सकता है, पहिले नही । अत. जल्दी से जल्दी मरनेवाला उच्छ्वास पर्याप्ति का अपर्याप्ता मर सकता है, इसके पहले नही । यह बात स्थानाग ठा. २ उ १ (सूत्र ७३) के टीका व अर्थ मे है ।

८२७ प्रश्न–गर्भ मे रहते हुए तिर्यंच पंचेन्द्रिय को भी क्या वैक्रिय लब्धि हो सकती है ?

उत्तर–हा, हो सकती है। प्रमाण स्थानाग ठा २ उ ३ (सूत्र ८५) के मूल पाठ मे बताया है।

८२८ प्रश्न–प्रथम गुणस्थान से ३, ४, ५, ७ मे जाते हैं, ऐसी मान्यता है, तो क्या प्रथम से सीधे पाचवे या सातवे मे पहुँच जाते हैं, बिना चौथा स्पर्शे ही।

उत्तर–सादि मिथ्यात्वी ही प्रथम गुणस्थान से ३, ५ और ७ वे गुण मे जा सकता है, अनादि मिथ्यात्वी नही। अनादि मिथ्यात्वी तो प्रथम से चौथे गु० ही जायगा।

८२९ प्रश्न–ढाई द्वीप के बाहर असख्यात द्वीप समुद्रो मे तिर्यंच पचेद्रिय जीव हैं, वे सज्ञी हैं या असज्ञी ? क्या मन-वाले जीव, ढाई द्वीप के बाहर भी हैं ? यदि हो, तो उनके मनो-गत भावो को मन पर्यव ज्ञानी क्यो नही जानते ? मन पर्यव ज्ञानी नही जाने, इस दृष्टि से शंका होती है कि शायद ढाई द्वीप के बाहर मनवाले जीव उत्पन्न नही होते हो ?

उत्तर–सज्ञी और असज्ञी जलचर तिर्यंच पचेन्द्री की जो उत्कृष्ट अवगाहना १००० योजन की बताई है वे १००० योजन के जलचर तो स्वयभूरमण समुद्र मे ही होते हैं तथा सज्ञी उरपरी सर्प की उ. अवगाहना १००० योजन की बताई है, वे भी मनुष्य क्षेत्र के बाहर ही होते हैं। समुग्ग और विततपक्षी भी मनुष्य क्षेत्र से बाहर ही होते हैं। सातवी नरक के नेरिये यावत् स्वयभूरमण समुद्र मे भी उत्पन्न होते हैं। यह बातप्रज्ञा-पना पद २१ तेजस व कार्मण की अवगाहना के मूलपाठ से स्पष्ट होती है। अत. वहा सज्ञी अवश्य हैं। तथा असंख्यातवें

द्वीप मे जो मानसरोवर है, वहाँ के जलचर भी ज्योतिषी देवो का रूप देख, निदान कर के ज्योतिषी होते हैं। असज्ञी ज्योतिषियो मे नही जाते, अत वहाँ भी सज्ञी है। यह बात प्रज्ञापना के तीसरे पद की टीका से स्पष्ट है। इत्यादि अनेक प्रमाणो से सज्ञी व असज्ञी दोनो ही प्रकार के तिर्यंच पचेद्रिय जीव, स्वयभूरमण समुद्र तक हैं।

मन पर्यवज्ञान का विषय लम्बाई-चौडाई मे मनुष्य क्षेत्र प्रमाण और ऊँचाई मे समभूमि से ९०० व नीचाई मे १००० योजन की है। अत. वे अधिक नही जान सकते। इसी कारण वे मेरु के सोमनस और पडग वन की बावडियो आदि के संज्ञी तिर्यंच के मनोगत भावो को नही जान सके।

ऊपर मनवाले वैमानिक देव हैं। नीचे मनवाले नैरयिक हैं और मनुष्य क्षेत्र से बाहर तिर्यंच, व्यन्तर और ज्योतिषियो के होते हुए भी मन पर्यव ज्ञान का विषय नही होने से नही जान सकते, परन्तु सज्ञी तिर्यंच तो मनुष्य क्षेत्र के बाहर बहुत है।

८३० प्रश्न–असंज्ञी तिर्यंच पचेन्द्रिय जीव जो संख्यात वर्ष की आयुवाले हैं, उनके उत्पत्ति के स्थान कौन से हैं ? क्या सज्ञी के मृत कलेवर से असंज्ञी उत्पन्न हो सकते हैं ?

उत्तर–जल, कर्दम, वनस्पति, भूमि, तिर्यंच पंचेन्द्रिय के शरीर व मृतक शरीर (मेढकादि) आदि मे असज्ञी तिर्यंच पचेन्द्रिय उत्पन्न होने की सम्भावना है।

८३१ प्रश्न–साधु को ७२ हाथ कपडा रखना तथा साध्वी को ९६ हाथ कपडा रखना कहा है, सो ७२ और ९६

हाथ का विभाग अपनी श्रद्धा-प्ररूपणा के अनुसार कैसे रखा जाय ?

उत्तर–७२ और ९६ हाथ वस्त्र-विभाग विषयक म. श्री की धारणा निम्न प्रकार है–५ हाथ की लम्बाई और ३ हाथ की चौडाई के हिसाब से २ चद्दर (ऊनी तथा सूती) के ३० हाथ और १ चद्दर लम्बाई, चौडाई मे कुछ छोटी अत करीब १३ हाथ की, चोलपट्टक ६ हाथ लम्बा और १॥ हाथ चौडाई से ९ हाथ का हुआ। शेष २० हाथ वस्त्र मे मुख-वस्त्रिका, रजोहरण का कपडा, झोली, रजस्त्राण, गलना, बिछौना ग्रादि का समावेश होना सभव है।

साध्वी के ३ हाथ चौडी दो चद्दर और ४ हाथ चौडी एक, इन तीनो की लम्बाई साढे चार हाथ की हुई। और दो हाथ की चौडाई लम्बाई ३॥ हाथ की एक चद्दर। करीब ७॥ हाथ की लम्बी और २ हाथ की चौडी साडी। शेष २९ हाथ मे अवगपट्ट "जघिया-काचला" और ऊपर निर्दिष्ट उपकरणो का सम्भव है।

पुस्तकें बाद मे लिखी गई है, अत पुस्तको को बाधने के लिए वस्त्र अलग है।

बृहत्कल्प के तीसरे उद्देशे मे "तिहि कसिणेहि वत्थेहि आयाए सपव्वइत्तए" तथा–"चउहि कसिणेहि वत्थेहि आयाए सपव्वइत्तए।" इस पाठ के अनुसार जो ७२ तथा ९६ हाथ का वर्णन करते है, वही प्रथा अभी भी इस देश के बुनकर लोगो मे चालू है। २८ अगुल के हाथ से २४ हाथ लम्बा और एक हाथ

चौडा जो कपडे का थान तय्यार करते हैं उसे-'रेजा' कहते हैं।

मूल्य की अपेक्षा से टीकाकारो ने एक वस्त्र की कीमत अठारह रुपये से कम की है और अपनी धारणा तो १०) रुपये के भीतर की है।

टीकाकारो ने चद्दरो की लम्बाई ३॥ हाथ की बताई है और अपनी धारणा ऊपर अनुसार है।

८३२ प्रश्न-अरिहन्तो के आठ प्रातिहार्य, हर समय रहते हैं क्या ?

उत्तर-अरिहंतो को केवलज्ञान होने के बाद सभी प्रातिहार्य होते हैं, परन्तु निरन्तर नही। जैसे-गगन मे साथ रहते हुए भी जहा भी खडे रहे व बैठें, वही पर तत्काल अशोक वृक्ष हो जाता है और पृष्ठ भाग मे भामण्डल भी। छत्र, चामर और सिंहासन आदि आकाश मे साथ चलते हैं, परन्तु बैठने के प्रसग पर ही सिंहासन बैठने के काम आयगा। समवसरण में उपदेश के प्रसग पर दिव्य-ध्वनि समझनी चाहिए। सर्वत्र न होकर समवसरण भूमि मे पुष्प-वृष्टि होती है। इत्यादि प्रसंगो से सभी प्रातिहार्यों का युगपत् (एक साथ) चालूपना निरन्तर नही जचता।

८३३ प्रश्न-साधु-साध्वी को प्रथम प्रहर मे स्वाध्याय, दूसरे मे ध्यान, तीसरे मे भिक्षा और फिर से चौथे मे स्वाध्याय करना बताया है। फिर आगमानुसार विहार का समय कौन-सा समझें ?

उत्तर-उत्तराध्ययन के २६ वें अध्ययन की १२ वीं

गाथा मे इस प्रकार से सामान्य दिन-कृत्य बताया है। इसमे प्रतिलेखना, उच्चार-प्रस्रवण परित्याग, धर्मदेशना, विहार, वैयावृत्य आदि क्रियाओ का अन्तर्भाव हो जता है। जैसे इसी अध्ययन की ८ वी गाथा मे प्रतिलेखना का और ९-१० मे वैयावृत्य का वर्णन है। तथा इसी अध्ययन में अन्यत्र शय्या, उच्चार-प्रस्रवण-भूमि प्रतिलेखना, प्रतिक्रमण आदि का वर्णन भी है। इसी प्रकार विहार का अवसर होने पर साधु-साध्वी, दिन के किसी भी प्रहर मे विहार कर सकते हैं और विहार का समय-चारो पहर मे से किसी भी प्रहर, मे–"**काले य दिवसे वुत्ते**" –उतराध्ययन के २४ वें अध्ययन के इस पद से स्पष्ट होता है। तथा रात्रि विहार का निषेध बृहत्कल्प के प्रथम उद्देशे के "**नो कप्पई निग्गथाण वा निग्गथीण वा राउ वा वियाले वा अद्धाणगमित्तए ४८**" इस पाठ मे स्पष्ट है। अत साधु-साध्वो अपनी अनुकूलतानुसार चारो मे से किसी भी प्रहर मे विहार कर सकते है।

८३४ प्रश्न–देवलोक किसके आधार पर है ?

उत्तर–ठाणाग सूत्र के तीसरे ठाणे के तीसरे उद्देशे मे–"**तिपइट्ठिया विमाणा प. तं. घणोदधिपइट्ठिया, घणवाय पइट्ठिया, ओवासंतरपइट्ठिया (१८०)**" इस प्रकार मूलपाठ है। टीका व अर्थ मे १॥ गाथा इस प्रकार है–"**घणउदहि-पइट्ठाणा सुरभवणा होंति दोसु १–२ कप्पेसु। ३–४–५ तिसुवाउपइट्ठाणा तदुभयसुपइट्ठिया तीसु ६–७–८**

॥१॥ तेण परं उवरिमगा आगासतरपइट्ठिया सव्वेति ।

८३५ प्रश्न—भगवान् ऋषभदेव के पारणे मे १०८ घडो का वर्णन है या एक घडे का वर्णन है ?

उत्तर—"त्रिषष्ठि-शलाका-पुरुष-चरित्र" मे तो 'इक्षु रस के अनेक घडो का रस वहराया'—ऐसा वर्णन है। आवश्यक मलयगिरि प्रथम खण्डान्तर्गत कथा मे 'एक घडे का' ही वर्णन है। अत यहा कथा मे मतभेद दिखाई देता है।

८३६ प्रश्न—उतराध्ययन के अध्ययन २० की २९ वी गाथा मे—"वह मेरे जानते-अनजानते अन्न, पानी, स्नान, सुगन्ध आदि सेवन नही करती," सो अन्य वस्तुएँ भी त्याग दी होगी, किन्तु अन्न, पानी जानते व अनजानते जितने दिन बिमारी रही, उतने दिन ग्रहण नही किया हो—यह किस तरह माना जावे ?

उत्तर—पति के दारुण व भयकर दुःख से अत्यन्त दुखित हृदयवाली पतिव्रता स्त्री, पति के प्रेम से अन्न-पानी का भी त्याग कर देती है।

दूसरा, उनके वेदना कुछ दिन ही रही थी। उनकी वेदना मे उस स्त्री ने अन्न-पानी भी छोड दिया था, यह बात बिल्कुल सही है। क्योकि मुनियो मे सिंह समान वे अनाथी महाराज थे। उन्होने अतिशयोक्ति नही करते हुए यथार्थ बात कही है। अत सशय की कोई बात नही।

८३७ प्रश्न—दीपायन का जीव, आगामी चौबीसी मे १९ वा तीर्थंकर होगा, ऐसा सुनने मे आया है। क्या यह ठीक है ?

उत्तर—इस भरत क्षेत्र की आनेवाली चौबीसी मे द्वीपा-

यन का जीव बीसवां तीर्थंकर हाेगा, उन्नीसवां नही ।

८३८ प्रश्न–वेद, मोहनीय कर्म की प्रकृति है, किन्तु पुरुषादि लिंग किस कर्म मे है ? लिंग किस कर्म की प्रकृति है ?

उत्तर–लिंग नाम कर्म 'उपाग नाम' की प्रकृति है ।

८३९ प्रश्न–बाल, ग्लान, रोगी और वृद्ध के विशेष उपकरणो के विषय मे महाराज सा की क्या धारणा है ?

उत्तर–बाल, ग्लान, रोगी और वृद्ध के लिए विशेष उपकरणो के विषय मे म श्री की धारणा निम्न प्रकार है–

बाल या वृद्ध साधु साध्वी सशक्त हो, तो उनके लिए विशेष उपकरणो की आवश्यकता नही, परन्तु अशक्तो के लिए है । निशीथ के १४ वें उ. के सूत्र ६–७ से पात्रो के लिये, और १८ वें उ के अन्तिम भाग से वस्त्र के लिए स्पष्ट है ।

हस्त-पादादि छिन्न, ग्लान व रोगियो के लिये जिन-जिन उपकरणो की आवश्यकता प्रतीत होती हो, उन्हे वे उप-करण देना उपरोक्त सूत्र से सगत लगता है । पृथक्-पृथक् रोगादि के पृथक्-पृथक् कारण होते हैं, अत. भिन्न-भिन्न उपकरणो की आवश्यकता हो सकती है । इसलिये उपकरणो की सख्या का निर्देश न होते हुए भी नितात आवश्यकतानुसार, सयमानुकूल उपकरण देना योग्य लगता है । और जरा-जीर्ण स्थविरो के अधिक उपकरण, नामयुक्त व्यवहार सूत्र के ८ वें उद्देशे के ५ वें से सिद्ध है ।

साधारण रोगादि के प्रसग पर तथा निरोग बालक आदि के लिए तो परस्पर के उपकरणो से ही निभाव हो सकता है ।

तथा १॥ मास तक अधिक वस्त्र भी विधानानुसार रख सकते हैं।

८४० प्रश्न—नारकी, भवनपति और व्यंतर मे जीव के ३ भेद गिने जाते हैं, वे कौन से हैं ? खुलासे के साथ बतावे।

उत्तर—चोदहवे समवायाग मे जीव के जो १४ भेद बताये हैं, उन में से जीव का ११ वा भेद असन्नी पचेद्रिय का अपर्याप्ता, तेरहवा भेद सन्नी पचेद्रिय का अपर्याप्ता और १४ वाँ सन्नी पंचेद्रिय का पर्याप्ता, ये जीव के ३ भेद नारकी, भवनपति और व्यन्तर देवो मे होना सम्भव है।

यहा से तो असन्नी व सन्नी के पर्याप्ता ही मर के नरक व देव गति मे जाते हैं, परन्तु वहा उस असन्नी का असन्नीपन कुछ देर (अन्तर्मुहूर्त) तक अपर्याप्त अवस्था मे ही रहता है। अत ११ वा ही भेद गिनना चाहिए, बारहवा नही।

यदि कोई कहे कि यहा से १२ वे भेद मे मरा, तो वहा ११ वाँ भेद कैसे हो गया ? इसके समाधान मे कहना है कि—जिस प्रकार १४ वे भेद वाला मर कर नरक व देवादि मे—१३ वे भेद मे उत्पन्न होता है, उसी प्रकार असन्नी जीव के १२ वे भेद मे मर कर नरक व देवगति के ११ वे भेदपने उत्पन्न होता है।

श्री टीकमदासजी म श्री ने भी चोवीस ठाणे (नव तत्त्व) मे उपरोक्त ६ भेद ही फरमाएँ हैं।

शका—नारक, भवनपति और व्यन्तर के अपर्याप्ता में असन्नी पचेद्रिय का अपर्याप्ता, जो जीव का ११ वां भेद बताया

है, उसमे यह बाधा उपस्थित हो जाती है कि फिर पृथ्वी, जल, वनस्पति मे देवादि आकर उत्पन्न होते है, तो उनके अपर्याप्ता अवस्था मे भी सन्नी पचेद्रिय का अपर्याप्ता लेना चाहिए, परन्तु ऐसा नही लिया जाता । ७ अपर्याप्ता के स्थान स्व-योग्य पर्यायो को जब तक जीव पूर्ण नही करेगा, तब तक ही अपर्याप्ता के स्थान समझना चाहिये ।

शास्त्रो मे जो नारक, भवनपति आदि को जोने की अपेक्षा ही असन्नी कहा गया है, अत वह जीव का तीसरा स्थान लेना विचारणीय प्रतीत होता है ।

समाधान–जीवाभिगम सूत्र के दो जीवो की पडिवत्ति मे, भगवती श ६ उ, ४ श. २८ उ २, पन्नवणा पद २८ उ २ आदि अनेक स्थानो मे नारक व देवो को सन्नी और असन्नी दोनो बताये हैं ।

श. ८ उ २ मे नारक और देवो मे, नारक व देवगतिक मे, नारक व देवो के अपर्याप्ता मे, और नारक व देव भवस्थादि मे जो अज्ञान २ तथा ३ बताये है (तीन अज्ञान की भजना) जिस का कारण असन्नी नारक व देव के अपर्याप्ता मे विभग नही होता, अत दो बताये है । इससे भी वहां नरक व देव मे कुछ देर तक (अपर्याप्ता अवस्था तक) असन्नीपन रहना सिद्ध होता है ।

श १३ उ १ मे सख्याता विस्तार वाले नरकावासो में असन्नी एक, दो, तीन यावत सख्याता उत्पन्न हो सकते हैं, वहा मिल भी सकते है, परन्तु निकलते नही । असख्याता विस्तार

वाले नरकावासो मे असन्नी एक, दो, तीन, यावत् सख्याता और असंख्याता उत्पन्न हो सकते हैं, मिल सकते हैं, परन्तु निकलते नही।

इसी शतक के दूसरे उद्देशे मे देवो का वर्णन है। इन दोनो उद्देशो को देखने से नारक व देवो मे असन्नी का उत्पन्न होना और मिलना स्पष्ट सिद्ध होता है।

नारक और देवो मे असन्नीपन कुछ देर तक रहना शास्त्रकारो ने देखा, अत स्थान-स्थान पर उनमे असन्नी बताये है। एकेद्रिय जीवो मे सन्नीपन नही देखा, अत जीवाभिगम आदि किसी भी सूत्र मे उनमे सन्नीपन नही बताया।

एकेद्रिय मे जाने वाले देवो की उद्वर्तना सन्नीपन से न होकर असन्नीरूप से ही होती है, अत एकेन्द्रिय मे सन्नी कैसे मिले? यह बात श १३ उ. २ से स्पष्ट है।

रही बात यह कि असन्नी जीव, देव और नारक मे असन्नी रूप में ही जाते हैं, तो देव, एकेन्द्रिय में सन्नी रूप नही जाकर असन्नी रूप क्यो जाते हैं? ऐसा भेद होने का क्या कारण है?

गति, जाति, अध्यवसाय, स्वभाव, क्षयोपशमादि अनेक कारणो से अनेक तरह के भेद दिखाई देते हैं, जैसे–देव, एकेन्द्रिय मे व सन्नी तिर्यंच और मनुष्य में ही जाते हैं, शेष बेइन्द्रियादि में नही। नारक, एकेन्द्रिय मे भी नही जाते। पृथ्वीकायादि के जीव, मनुष्य में आकर मोक्ष जा सकते हैं, पन्तु बेइन्द्रियादि के नही। सूक्ष्म निगोदादि के जीव मनुष्य हो सकते है, परन्तु ७

वी नरक, तेउ, वायु, युगलियो के नही। नपुसक ७ वी नरक में जा सकते हैं, परन्तु स्त्री नही। स्त्री, अशुभ उत्कृष्ट आयु न बाध कर शुभ बांध सकती है। सन्नी तिर्यंचो के नरक जाने में भिन्नता है, परन्तु देवो में समानता है। सहस्रार देवो तक के अपर्याप्ता देवो मे कर्म आशीविष लब्धि के परिणाम वाले हो सकते हैं, परतु मन पर्यवादि लब्धि तथा देश-सर्वव्रत्ति के परिणामवाले नहीं। आदि २ अनेक तरह के भेद दृष्टिगत होते हैं, उसी प्रकार यहा भी समझना चाहिए।

जब-जब जीव के मनोविज्ञान के आवरणका क्षयोपशम होता है, तब-तब उस जीव को सन्नी अन्यथा असन्नी बताते हैं।

आमतोर से स्व-योग्य पर्याप्तियो को जब तक जीव पूर्ण नही कर लेता, उसको उसका अपर्याप्ता मानना। परतु अपवाद में इस प्रकार मानना भी आगम सिद्ध है।

उपरोक्त अनेक बातो को सोचते एव आगम पाठो पर दष्टिपात करते पूर्वोक्त ३ भेद ही नारक और देवों में समझ मे आते है।

नारक और देवो में असन्नी का असन्नीपन अल्पकाल तक ही रहता है, अत कोई-कोई आचार्य दो भेद ही मानते हैं, परतु अल्पकाल की गणना करने से तो ३ भेद ही होते है।

८४१ प्रश्न—साधुओं के १२५ अतिचार बतलाये हैं, उनमे से ५ समिति, ३ गुप्ति और २ रात्रि भोजन के, ये अतिचार कौन-कौन से हैं ?

उत्तर–छठे व्रत के दो अतिचार १ दिन-रात्रि भोजन (जो सूर्योदय पहिले लिया हुआ, वासी रखा हुआ, अंधेरे मे और अप्रकाशकारी बर्तन मे इत्यादि आहार दिन को खाता हुआ भी रात्रि भोजन समझना) २ रात-रात्रि भोजन (जो दिन को अधिक मात्रा मे भोजन करे, जिसकी गंध रात्रि को चालू रहे, आहार पानी का उथाला रात्रि को निगल जावे, उदय और अस्त की शका होते हुए भी खावे-पीवे इत्यादि)। तथा प्रकारान्तर से भाव रात्रि-भोजन (रात को खाने की इच्छा परन्तु खा नही सका तथा सूर्य होते हुए भी अनुदय व अस्त समझ के खाया)। ३ द्रव्य और भाव रात्रि-भोजन (मन मे दिन की शका थी और दिन था भी नही, ऐसी दशा मे खाया इत्यादि)।

ईर्यासमिति के ४ अतिचार–(१) द्रव्य से छ. काय के जीवो को दृष्टि से देख कर नही चले (२) क्षेत्र से युग प्रमाण भूमि को देख कर नही चले (३) काल से चले जहा तक देख के नही चले और (४) भाव से शब्दादि ५ और ५ स्वाध्याय ५ मे ध्यान रखता चले। भाषासमिति के दो अतिचार (१) असत्य भाषा (२) मिश्र भाषा। एषणासमिति के ४७ दोष–आहार लाने के ४२ दोष और खाने के ५ एवं ४७ दोष न वर्जे तो ४७ अतिचार। चौथी समिति के दो अतिचार–(१) बिना देखे उपकरणादि को अयतना से लेवे, मोगवे (२) व इसी प्रकार रखे। पाचवी समिति के १० अतिचार–उत्तराध्ययन के २४ वे अध्ययन मे १० बोल वर्ज के परठना बताया, वे न वर्जे तो १० अतिचार।

सरभ, समारम्भ और आरम्भ एवं तीन-तीन अतिचार

या थाहे मिथ्यात्व के अणु होते ही है। अत ४, ५ या ६ का क्षय होने पर अवशेष ३, २ या १ का (दर्शन-मोहनीय का) प्रदेशोदय तो अवश्य रहेगा ही।

क्षायिक वेदक सम्यक्त्व होती है, उपशम वेदक भी होती है, परन्तु क्षायिक उपशम तो जानी नही।

उपशम मे विपाक और प्रदेशोदय दोनो ही रुक जाते है, और क्षयोपशम मे मात्र प्रदेशोदय होता है।

यहा क्षय के साथ उपशम होने को क्षयोपशम और निःकेवल उपशम को उपशम समझना *।

तथा किनारे पर सरीखी है या न्यूनाधिक ?

उत्तर–रत्नप्रभादि के पृथ्वी-पिण्डो की मोटाई बीच मे तथा किनारे पर जीवाभिगम सूत्र के, "**इमाणं भंते! रयणप्पभाए पुढवीए, अंतए मज्झेय सव्वत्थ समा बाहल्लेणं पण्णत्ता। हंता गोयमा! इमाणं रयणप्पभापुढवी अंतए मज्झेय सव्वत्थ समा बाहल्लेए, एवं जाव अहेसत्तमा**" –इस पाठ मे बराबर बताई अर्थात् घनोदधि, घनवाय और तनुवाय की तरह पृथ्वी-पिण्डो की मोटाई कम नही होती गई है।

८४४ प्रश्न–निकाचित मे स्थिति-घात, रस-घात होता है या नही ?

उत्तर–उद्वर्तना, अपवर्तना आदि सभी करणो के अविषयपने कर्मों के स्थापित करने को ही निकाचित कहते हैं। अर्थात् किसी भी करण से जिसमे किंचित् भी फेरफार न हो सकता हो, ऐसे सज्जड कर्म 'निकाचित' कहलाते हैं। अतः निकाचित कर्म मे स्थिति-घात, रस-घात नही होता। सूत्र भगवती शतक एक उद्देशा एक की टीका प्रथम खण्ड के पृ. ६५ मे तथा कम्मपयडि (कर्म प्रकृति) आदि ग्रथो मे भी इसका खुलासा है।

८४५ प्रश्न–क्षयोपशम मे अनन्तानुबंधी का क्षय व दर्शन-त्रिक का उपशम कैसे होता है ?

उत्तर–क्षयोपशम सम्यक्त्व मे ४, ५ या ६ प्रकृति क्षय हो जाने पर दर्शन-मोहनीय कर्म का विपाकोदय नही, परन्तु प्रदेशोदय अवश्य होता है। मिथ्यात्व-मोहनीय आदि तीनो ही प्रकृति, दर्शनमोहनीय कर्म की है। इन तीनो में ही बहुत

या थोडे मिथ्यात्व के अणु होते ही हैं। अत ४, ५ या ६ का क्षय होने पर अवशेष ३, २ या १ का (दर्शन-मोहनीय का) प्रदेशोदय तो अवश्य रहेगा ही।

क्षायिक वेदक सम्यक्त्व होती है, उपशम वेदक भी होती है, परन्तु क्षायिक उपशम तो जानी नही।

उपशम मे विपाक और प्रदेशोदय दोनो ही रुक जाते हैं, और क्षयोपशम मे मात्र प्रदेशोदय होता है।

यहा क्षय के साथ उपशम होने को क्षयोपशम और नि केवल उपशम को उपशम समझना *।

८४६ प्रश्न—क्षायिक-सम्यक्त्ववाला ३-४ भव करता है, और एक गति मे आना, ४ गति मे जाना आदि वर्णन तथा उपश्रेणी करता है, आदि शास्त्र मे कही आया है?

उत्तर—उत्तराध्ययन के २९ वे अध्ययन के प्रथम बोल से स्पष्ट होता है कि उत्कृष्ट दर्शन आराधना करने वाला तीसरा भव उल्लघन नही करता। ऐसी उत्कृष्ट आराधना भी केवल मनुष्य गति मे ही हो सकती है। इससे तथा सूत्र श्री अनुयोगद्वार ६ नाम के अधिकार मे चार सयोगी भंगो की इस "अस्ति च क्षायिक सम्यक्त्व सर्वास्वपि गतिषु, नारक-तिर्यग्देवगतिषु पूर्व प्रतिपन्न स्यैव, मनुष्यगतौतु पूर्व-प्रतिपन्नस्य प्रतिपद्यमानकस्य च तस्यान्यत्र प्रतिपादित-

---

* दूसरे स्थान पर अन्य प्रकृतियो के क्षय के बिना ही नि केवल क्षयोपशम ज्ञानावर्णयादि प्रकृतियो का बताया है, उसका अर्थ दूसरी तरह है, वह नन्दी सूत्रादि की टीका वगैरह में बताया गया है।

स्वादिति" टीका मे-क्षायिक-सम्यक्त्व सभी गतियो मे है और वह मनुष्य गति मे ही प्राप्त होती है-ऐसा बताया है। तथा भगवती शतक १, ३, ८ के टीका व अर्थ मे दर्शन सप्तक क्षय करने के बाद मनुष्य (साधु) किसी भी गति का आयु नही बाधता। पहिले बाधा हो, तो वह बात निराली। निम्न स्थानो के आयु बधने के बाद भी क्षायिक-समकित आ सकती है। परन्तु अन्य आयु-बध के बाद नही।

नरक मे-चौथी नरक तक, तिर्यंच मे स्थलचर युगलिया का, मनुष्य मे अकर्म-भूमियो का और देवगति मे सम्यग्दृष्टि देवो का।

युगलिक आयु-बंध के बाद क्षायिक-समकित आई हो, उस जीव को उस भव सहित चार भव और शेष को ३ भव करने पड़ते हैं। इसका खुलासा चौथे कर्म-ग्रंथ की २५ वीं गाथा के अर्थ व टीका मे है।

सान्निपातिक भाव का जो पंच सयोगिक एक भंग है, वह क्षायिक-सम्यक्त्वी उपशम-श्रेणीवालो मे होना अनुयोगद्वार की इस "**क्षायिकः सम्यग्दृष्टि, सन् य उपशमश्रेणी प्रतिपद्यते तस्यायं भंगकः संभवति नान्यस्य**" टीका व मूल मे बताया है। तथा चौथे कर्म-ग्रथ की इस "**खइए इक्कार**" २५ वी गाथा मे क्षायिक-सम्यक्त्व मे ग्यारह गुणस्थान बतलाए हैं। इन दोनो प्रमाणो से क्षायिक-समकितवाला उपशम-श्रेणी कर सकता है। ऐसा सिद्ध होता है।

८४७ प्रश्न-सिद्धो में साकार और अनाकार उपयोग

की स्थिति ज उ कितनी है व जघन्य-उत्कृष्ट में कितना अन्तर है ?

उत्तर–केवलियो के साकार और अनाकार उपयोग की स्थिति एक-एक समय की प्रज्ञापना (पद १३) के १८ वे पद की टीका मे बताई है। अत सिद्धो के साकार और अनाकार उपयोग की स्थिति भी ज उ के बिना एक-एक समय की ही समझना। केवलियो के उपयोग की स्थिति ज उ नही है। अत अन्तर भी नही है।

छद्मस्थो के साकार और अनाकार उपयोग के स्व-स्व ज उ स्थिति मे विशेषाधिक अन्तर है।

८४८ प्रश्न–जो कम-ग्रथादि मे उदय प्रकृतियो का वर्णन है वो प्रदेश-उदय है, या विपाकोदय है ? एक प्रकृति का एक ही समय विपाक और प्रदेश उदय साथ रह सकता है या नही ?

उत्तर–विपाकोदय के साथ प्रदेशोदय अवश्य होता है। प्रदेशोदय के बिना विपाकोदय किसका होगा ? जीव के साथ बधे हुए कर्म-पुदगलो को ही यहा प्रदेश रूप समझना। उन बधे हुए कर्म-पुद्गलो के बिना कोई भी शुभाशुभ फल देने वाला नही है। अत निकेवल विपाकोदय नही हो सकता, परन्तु क्षयोपशम सम्यक्त्व मे व अन्य प्रकृतियो के सक्रमण मे केवल प्रदेशोदय हो सकता है।

८४९ प्रश्न–हीयमान तथा वर्धमाम परिणाम मे साकार उपयोग होता है या नही ?

उत्तर—हीयमान तथा वर्धमान परिणाम में साकार उपयोग हो सकता है, जैसे—सूक्ष्मसंपराय चारित्र में परिणाम हीयमान तथा वर्धमान दोनो बताये हैं और इसमें एक ही साकार उपयोग बताया है। अत इसमें साकार उपयोगका होना स्पष्ट सिद्ध होता है।

८५० प्रश्न—परमाणु मे जो वर्णादि हैं, उनका परिवर्तन होता है या नहीं ? यदि होता है तो कैसे ? बिना परमाणु भी वर्ण, गंध, रस, स्पर्श रह सकता है ? परमाणु की पर्याय कितनी व कैसे ?

उत्तर—परमाणु मे जो वर्णादि हैं, उनका परिवर्तन होता है। यह बात प्रज्ञापना पद १३ मे लिखी है। अजीव परिणाम में जो वर्णादि का परिणाम बताया है, उससे तथा भगवती के १४ वे शतक के चौथे उद्देशे से स्पष्ट होती है। तथा पाचवे शतक के ७ वे उद्देशे मे वर्णादि की स्थिति व अन्तर मे भी वर्ण-वर्णान्तर, गध-गंधान्तरादि होना एव एक गुण कृष्णादि से अनन्त गुण कृष्णादि होना और अनन्त से एक गुण होना भी स्पष्ट सिद्ध होता है।

वर्ण, गधादि पुद्गलो के गुण हैं, अतः पुद्गलो से भिन्न नही रह सकते।

परमाणु की पर्याय अनन्त गुण कालादि के कारण अनन्त बताई है। तथा अगुरुलघु पर्याय की अपेक्षा भी अनन्त होती है।

८५१ प्रश्न—उत्तराध्ययन सूत्र मे जो कथाएँ हैं, वे शास्त्र की बातो मे कहा तक सहायक हो सकती है ? सगर चक्रवर्ती

की कथा मे लिखा है कि–

चक्रवर्ती पदधारी के एक लाख बरानवे हजार रानिया होती है। कथा मे लिखा कि उनके पुत्र नही था तथा हरिण-गमेषी देवता को स्मरण किया था। उस देवता ने राजा को ६०,००० गोलिया दी। राजा ने उन गोलियो को पटरानी के सुपुर्द कर दी। पटरानी स्वय सभी गोलिया खा गई। फिर वह ६०,००० का गर्भ न समाल सकी। इसलिए हरिणगमेषी देवता ने आ कर पुत्रो को जन्म दिया। इस पर प्रश्न यह है कि पटरानी श्रीदेवी गर्भ धारण नही करती, फिर इस कथा की वास्तविकता क्या है ?

उत्तर–कथाओ की कई बाते शास्त्र से मेल नही खाती। कई बाते शास्त्र से विरुद्ध भी जाती है और कई बाते कल्पित दिखाई देती है। अत कथाओ की जो बात शास्त्र से मेल खाती हो, विरुद्ध न जाती हो, वह मानने योग्य हो सकती है, शेष नही।

सगर नाम के दूसरे चक्रवर्ती की जो कथा उत्तराध्ययन के १८ वे अध्ययन मे है, वह कथा सब प्रतियो मे समान नही है, तथा उस कथा मे अनेक बाते सूत्र विरुद्ध दिखाई देती है, जैसे–एक साथ एक स्त्री के ६० ००० लडके होना शाश्वत भवनो को दण्ड-रत्न से खोद डालना। दण्ड-रत्न खुद एक हजार देवो से अधिष्टित होते हुए भी शाश्वत भवन खोदने और दुनिया को उपद्रवकारी गंगा का प्रवाह लाने आदि विरुद्ध कार्य करना। चक्रवर्ती के हितकारी दण्ड-रत्न के कार्य से

चक्रवर्ती के लिए दुखकारक होने रूप सभी पुत्रो की मृत्यु होना, अनेक रत्न उनके पास होते हुए भी उन उपद्रवकारी देवो को न समझना आदि अनेक बाते इस कथा मे सूत्र विरुद्ध दिखाई देती है। श्रीदेवी के सन्तान होती ही नही है। इस कथा का विशेष भाग अमुक (तीर्थ-यात्रादि) बात की सिद्धि के लिए कल्पित किया हो—ऐसा प्रतीत होता है।

८५७ प्रश्न—दूसरी राजधानी से निकाला हुआ ब्राह्मण-प्रधान, ९ वे चक्रवर्ती के राज्य मे आया और प्रधानपने रहा। वचन मे आकर चक्रवर्ती ने सात दिन का राज्य दे दिया। इसमे शका यह है कि चक्रवर्ती के सेनापति देश साधते हैं, तब यह असगत बात किस प्रकार सगत हो सकती है? विष्णुकुमारजी की कथा कहा तक ठीक है?

उत्तर—नौवे महापद्म चक्रवर्ती जब युवराज थे, तब नमूची को अपना प्रधान बनाया था। सिहबल को जीतने पर उसको वचन दिया। फिर चक्रवर्ती होने के बाद उसने अपना वचन मागा, इत्यादि बाते कथा मे बनाई है। परन्तु इस कथा मे भी उसी बात (तीर्थ-यात्रादि) की पुष्टि के लिए कितनी ही बात कल्पित बताई प्रतीत होती है, क्यो कि चक्रवर्ती के अग-रक्षक दो हजार देव होते हैं। वे खुद उस नमूची से कितने जबरदस्त पराक्रमी थे? वे उस सिहबल को शीघ्रता से जीत सकते थे। खुद के लिए दुखकारक ऐसा वचन उन देवो ने कैसे देने दिया? सभव है कि उनका सेनापति-रत्न आदि भी उनके हाथ नीचे होगे, इत्यादि बाते सोचने से इसमे भी अनेक

बाते कल्पित प्रतीत होती है।

८५३ प्रश्न–औदारिक शरीर वाला उत्कृष्ट रूप से, एक शरीर वैक्रिय कितना बना सकता है ?

उत्तर–मनुष्य के वैक्रिय शरीर की उत्कृष्ट अवगाहना पन्नवणा सूत्र के २१ वे पद मे लक्ष योजन से कुछ अधिक बताई है। यही औदारिक के वैक्रिय शरीर की उत्कृष्ट अवगाहना समझनी चाहिए।

८५४ प्रश्न–अष्ट रूचक-प्रदेश ऐसे माने गये हैं कि जिन पर शुभाशुभ पुदगलो का कोई लेप नही होता। ये प्रदेश कहा है और इन पर लेप किस कारण नही लगता ? इनका हाल कहा और किस सूत्र मे आया है ?

उत्तर–प्रत्येक जीव के आठ-आठ मध्य-प्रदेश होते है। वे मध्यवर्ती प्रदेश, दूसरे प्रदेशो के समान बिछुडते नही। उन आठो मे से तीन-तीन प्रदेशो का परस्पर बन्ध अनादि-अनन्त है। यह बात भगवती श. ८ उ. ९ मे बताई है।

जीव के मध्य-प्रदेश कितने हैं और वे कितने आकाश-प्रदेश मे समाते हैं अर्थात् अवगाहन करते हैं, यह बात भगवती श २५ उ. ४ मे है। उन आठ प्रदेशो को ग्रथकार निर्लेप (कर्म-रहित) मानते हैं। परन्तु मूल-सूत्र मे तो जीव के सभी प्रदेशो पर कर्म-बन्ध माना है। प्रमाण भगवती श ८ उ. ८ का है।

८५५ प्रश्न–कोई पुरुष पानी की प्याऊ लगावे, तो उसे पाप होता है या एकान्त पुण्य ? उसमे कार्य करने वाले अन्य-

मति रहते है।

उत्तर–कूप, वापी, तडाग आदि कराने मे, प्याऊ, दानशाला आदि लगाने के विषय मे एकान्त खंडन व मडनात्मक उत्तर नही देना चाहिए। क्योकि निषेध करने से अनेको की वृत्ति का छेद होता है और मडन करने से सावद्य लगता है। इसलिये ऐसे प्रसग पर साधुओ को मौन रहना श्रेयस्कर बताया है। दीक्षा का विचार होने पर, दीक्षा के पूर्व सभी तीर्थंकर वार्षिक दान देते हैं। राजा प्रदेशी ने श्रावक होने के बाद दानशाला चालू की, तथा ६ प्रकार का पुण्य स्थानाग सूत्र के ६ वे ठाणे मे बताया है। इत्यादि अनेक प्रसगो को देख कर सुश्रावक उस पर विचार कर सकते है। शास्त्रो ने ऐसे कामो मे एकान्त पाप नही बताया है। एकान्त पाप तो अधर्मदान (विषयवासनादि के लिये) देने मे बताया है।

८५६ प्रश्न–वेद तो तीन होते हैं, परन्तु लिग ३ कैसे हो सकते है ? नपुसक का कोई स्वतत्र लिग नही है, वह पुरुषलिग मे गर्भित हो सकता है। मोहोदय की प्रबलता, वेद मे मानी जाती है। प्रज्ञापना पद २२ की टीका मे स्त्री और पुरुष के ७–७ लक्षण बताये, वैसे नपुसक का कोई निश्चित स्वतत्र लक्षण नही है।

उत्तर–वेद की तरह लिग भी तीन हो सकते हैं। कई व्यक्ति चिन्हो से नपुसको को जल्दी पहिचान भी सकते हैं। नपुसक स्त्री और पुरुष दोनो मे ही होते हैं। पुरुषाकृतिरूप नपुसक के लक्षण बृहत्कल्प की दीपिका मे "**महिलासहावो**

सरवण्णभेओ, मेण्ढ महृतं मउता य वाया ससद्दगं मुत्तम- फेणगं च, एयाणी छप्पडगलक्खणाणि" इस प्रकार बताया है। स्थानाग ठा ३ उ. २ (सू २२३) की वृत्ति मे स्त्री आदि तीनो वेदो के लक्षण बताये हैं। जिसमे नपुसक के लक्षण ये है-

"स्तनादि श्मश्रुकेशादि भावाभावसमन्वितम् ।
नपुसकबुधाः प्राहुर्मोहानल सुदीपितम् ॥३॥"

स्त्रियो मे स्त्री के कुछ लक्षणो के अभाव को 'स्त्री नपुसक' और पुरुषों मे पुरुषो के कुछ लक्षणो के अभाव को 'पुरुप-नपुसक' कहते हैं। तथा वही पर आगे तीनो का लक्षण इस प्रकार "तथाऽन्यत्राप्युक्तम्"–स्तनकेशवती स्त्री स्याद्, रोमषः पुरुषः स्मृतः। उभयोरतरयच्च, तदभावे नपुं- सकम् ॥२॥

किसी नपुसक के विशेष चिन्ह, स्त्री से मिलते-जुलते होते हैं और किसी के पुरुष से।

किसी 'स्त्री-नपुसक' के केवल प्रस्रवण–निसरणमात्र छिद्र होता है, परन्तु पूर्ण स्त्री-चिन्ह नही, किसी नपुसक के बादाम की तरह लघु पुरुष-चिन्ह ही होता है, तथा किसी एक नपुमक के (भग और चोल) दोनो ही चिन्ह होते हैं। दोनो चिन्हो का नपुमक तो अपवादरूप कोई विरला ही होता है।

भगवती श ९ उ ३१ के मूल पाठ मे नपुसक और पुरुष- नपुसक एव दो प्रकार के नपुमक दिखाई देते हैं।

सयम वालो मे नपुमक मिले, तो पुरुष-नपुसक ही मिल

मे एक मनुष्य के तीनो वेदो का उदय हो सकता है। पुरुष (द्रव्य) के भाव स्त्री और नपुंसक वेद का भी उदय हो सकता है। क्या यह बात श्वेताम्बर भी मानते है? स्मृति मे हो तो प्रमाण सहित बताने की कृपा कीजिए।

उत्तर—एक जीव के एक भव मे (वि) भाव से (विपाक रूप से) तीनो वेदो का उदय हो सकता है। इस बात को श्वेताम्बर भी मानते हैं। प्रमाण भगवतीसूत्र शतक २ उद्देशक ५ "ज समय इत्थिवेय वेएइ णो त समयं पुरिसवेय वेदेइ, ज समय पुरिसवेयं वेएइ णो त समय इत्थिवेय वेदेइ, इत्थिवेयस्स उदएण नो पुरिसवेयं वेएइ, पुरिस वेयस्स उदएणं नो इत्थिवेय वेएइ........" तथा इसकी टीका —"मिथ्यात्व च एषाम् एवम्—स्त्रीरूपकरणेऽपि तस्य देवस्य पुरुषत्वात् पुरुषवेदस्यैव एकत्र समये उदयः, न स्त्रीवेदस्य वेदपरिवृत्या वा स्त्रीवेदस्ययैव, न पुरुष-वेदस्योदय, परस्परविरुद्धत्वात् इति," तथा स्थानाग ठा. ३ उ १ (सू १२२) और दशाश्रुतस्कन्ध की १० वी दशा मे देवो के पुरुषवेद से स्त्रीवेद का परिवर्तन होना स्पष्ट होता है। तथा बृहत्कल्प के ५ वे भ्र के प्रथम के ४ सूत्र से देव मे स्त्री और देवी मे पुरुषवेद का परिवर्तन होना सिद्ध होता है। +

+ स्थानाग ठा. ३ उ १ (सू १२८) "वेदपुरिसे　" टीका—"पुरुषवेद तदनुभवनप्रधान पुरुषो, वेद पुरुष, सच स्त्रीपुनपुंसक सर्वधिपु त्रिव्वपिलिगपु भवतीति।"

इसी प्रकार मनुष्य, तिर्यंच मे तीनो ही वेद का परिवर्तन समझना चाहिए।

८५६ प्रश्न–यदि वेद परिवर्तन होता है, तो वह किस गुणस्थान तक सभव हो सकता है ? मै अनुमान करता हूँ कि विरुद्ध वेद (पुरुष होते हुए भी स्त्रीपन के भाव) अधिक से अधिक चौथे गुणस्थान तक उदय मे रहता होगा, आगे नही। दिगम्बर साहित्य मे ८ वे गुणस्थान तक ऐसा होना माना, यह समझ मे नही आता। ७ वा गु. अप्रमत्त है, वहा भी ऐसा होना वुद्धिगम्य नही होता। मै मानता हूँ कि छठे गुण० मे भी विरुद्ध वेद का रसोदय नही होता होगा ?

उत्तर–वेद का परिवर्तन सूक्ष्म रूप से तो ८ वे गुणस्थान तक श्वेताम्बरो के दूसरे कर्मग्रन्थ गाथा १८ की टीका व अर्थ से भी झलकता है। जिस प्रकार हास्य, रति, अरति आदि षटक का व क्रोधादि का प्रकट रूप से वहा उदय दिखाई नहीं देता और न उन प्रकृतियो के अनुभव करने वाले को भी पता लगता है। परन्तु सूक्ष्म रूप मे विपाकोदय ज्ञानियो के ज्ञान मे दिखाई देता है। उसी प्रकार वेद परिवर्तन भी सूक्ष्म रूप मे समझ लेना।

८६० वेदोदय, रसोदय के रूप में किस गु. तक होता है और प्रदेशोदय किस गु तक ?

उत्तर–भगवती शतक ६ उ. ३, श. ८ उ. ८ आदि अनेक पाठो से तथा पन्नवणा पद १८ आदि मे व दूसरे कर्मग्रथ की १८ वी गाथा व चौथा कर्मग्रंथ और पंचसग्रह आदि

ग्रथो से रसोदय रूप से वेद का उदय ९ वे गु. के कुछ हिस्से तक होना सिद्ध है।

८६१ प्रश्न–अप्रमत्त गुणस्थान मे वेद का उदय, रसोदय के रूप मे होता है या प्रदेशोदय के रूप मे ?

उत्तर–अप्रमत्त गुणस्थान मे वेद का उदय रसोदय और प्रदेशोदय दोनो रूप में होता है। बिना प्रदेशो के तो रसोदय होता ही नही। जब रसोदय होता है, तो केवल प्रदेशोदय होने में बाधा ही क्या ?

८६२ प्रश्न–स्त्री को वज्रऋषभनाराच संहनन होता है, ऐसा किसी स्थान पर सिद्धान्त के रूप मे लिखा है क्या ?

उत्तर–भरत और ऐरावत क्षेत्र सबधी अवसर्पिणी और उत्सर्पिणी काल के सुषम-सुषम, सुषम, सुषम-दुषम आरे के दो भागो के और अकर्मभूमि क्षेत्र के सभी मनुष्य-मनुष्यणियो के एक वज्रऋषभनाराच सहनन ही, जबूद्वीपपन्नति में बताया है। इसी प्रकार जीवाभिगम में अतरद्वीपो के विषय मे भी बताया है।

विना सुने व सुन कर यावत केवलज्ञान तक पैदा करने वालो का वर्णन भगवती श ९ उ. ३१ में आया है, उनमें से सुन कर केवली होने वालो मे स्त्री-वेद भी आया है। उन सभी मे सहनन तो एक प्रथम ही बताया है। अर्थात् तीनो वेद वाले चरम-शरीरी वज्र-ऋषभ-नाराच सहनन वाले ही होते हैं। अत तीनो ही वेदो मे यह सहनन कायम होता है।

स्त्री का मुक्ति-गमन तो सूत्रो में अनेक स्थानो पर आया है। जैसे स्थानाग (मरुदेवी आदि) समवायाग, भगवती,

ज्ञाताधर्मकथा और अंतगड आदि सूत्रो मे ।

सभी तीर्थंकरो के शासन मे स्त्रिया मोक्ष जाती है, किसी के शासन मे ज्यादा और किसी के शासन मे कम ।

मल्लिनाथ और मरुदेवी, भरत और ऐरावत क्षेत्र के १९ वे तीर्थंकर भी स्वय स्त्री ही थे ।

अनुत्तर विमान मे जाने वाले जीवो मे केवल वज्र-ऋषभ-नाराच सहनन ही भगवती श. २४ उ. २४ मे वताया है और पण्णवणा पद २३ उ २ मे स्त्री, उत्कृष्ट (३३ सागर का) आयु बाँध सकती है, ऐसा बताया है । अत. स्त्री मे वज्र-ऋषभ नाराच संहनन होना सिद्ध है । दूसरे कर्मग्रथ की १८ वी गाथा की टीका व अर्थ मे प्रथम सहनन वाला ही क्षपक-श्रेणी कर सकता है और प्रथम के तीन सहनन वाले उपशम-श्रेणी कर सकते हैं–ऐसा वताया है ।

८६३ प्रश्न–आभ्यन्तर और बाहर अवधि किसे कहते हैं ?

उत्तर–जो अवधिज्ञान, सभी ओर की दिशाओ मे सीमित क्षेत्र को प्रकाशित करता हो और अवधिज्ञान वाले के साथ वह प्रकाशित क्षेत्र व्यवधान रहित सम्बन्धित हो, उसे 'आभ्यन्तर अवधिज्ञान' कहते हैं और उससे भिन्न को बाह्य । अवधिज्ञान दो प्रकार का होता है, अतगत और मध्यगत ।

अतगत अवधि–पर्यंतवर्ती प्रदेशो से किसी एक दिशा की ओर अवधिज्ञान हो अथवा सर्व प्रदेशों मे क्षयोपशम होने पर भी एक या दो ओर ही देखे, उसे 'अन्तगत अवधि'

कहते है ।

मध्यगत अवधि—जब अवधि मे सभी ओर का प्रकाशित क्षेत्र, अवधिवाले के साथ असलग्न हो, उसे 'मध्यगत अवधि' कहते है ।

८६४ प्रश्न—आभ्यन्तर और बाहर अवधि किसे होता है ?

उत्तर—नारक और देव, तो भव-स्वभाव से ही अवधि के मध्यवर्ती होते है (आभ्यन्तर अवाधवाले) बाह्य नही। अर्थात् सभी ओर प्रकाशक और मबधित अवधिवाले होते हैं। परन्तु स्पर्द्धक (**स्पर्द्धक च नामावधिज्ञानप्रभाया गवाक्ष-जालादिद्वारविनिर्गतप्रदीपप्रभाया इव प्रतिनियतो विच्छेद विशेषः तथा चाह जिनभद्रगणि क्षमाश्रमणस्वोपज्ञभाष्य-टीकाया—"स्पर्द्धकमवधिविच्छेद विशेषः" इति, तानि च एकजीवस्यासख्येयानि सख्येयानि च भवन्ति**)। और विछिन्न अवधिवाले नही होते। तिर्यंच पचेन्द्रिय तो भव-स्वभाव से ही अवधि के अन्तर्गत नही होते, किन्तु बाह्य होते है। मनुष्य मे अवधि दानो प्रकार की होती है ।

८६५ प्रश्न—देश और सर्व अवधि किसे कहते हैं तथा किसे कैसा अवधि ज्ञान होता है ?

उत्तर—पन्नवणा के ३३ वे पद के अर्थ मे परम-अवधि को सर्व-अवधि और इससे नीचे की अवधि को देशावधि कहते हैं। मनुष्य मे दानो और शेप मे केवल देशावधि ही होती है।

८६६ प्रश्न–'मैं' शब्द का सविस्तार अर्थ बताइये तथा वह शब्द, आत्मा को सम्बोधित करता है या शरीर को ?

उत्तर–'मैं' शब्द निज आत्मा का संबोधक है, शरीर का नही। निज-आत्मा का भलीभाति बोध होने से ही पर (जीवादि पदार्थों) का ठीक बोध हो सकता है। अपनी अपनी अपेक्षा से सभी जीव "मैं" ही होते हैं। मैं (आत्मा) का स्वरूप आचारागादि शास्त्रो मे खूब विस्तृत रूप मे दिया गया है।

सक्षेप मे आत्मा का स्वरूप–आत्मा अनादि-अनन्त है, किसी ईश्वर आदि की बनाई हुई नही है। आत्मा अविनाशी है, ज्ञान (चेतना) स्वरूप है। कर्म के लेप से उसका संसार परिभ्रमण ८४ लक्ष योनि मे होता है। कर्म-लेप हटाने से विशुद्ध सिद्ध स्वरूप हो जाता है। सिद्ध स्वरूप होने पर वह सिद्ध स्वरूप निरन्तर कायम ही रहता है। सिद्ध होने का उपाय सम्यग्-ज्ञान, दर्शन, चारित्र (व्रत नियम) है।

८६७ प्रश्न–श्री अ भा श्वेताम्बर स्था जैन कॉन्फ्रेन्स के मानद् मत्री श्री आनन्दराजजी सा सुराना द्वारा भाद्रपद पर्युषण सबधी आवश्यक स्पष्टीकरण पूछा गया। खीचन से ४ मई १९५५ को जो उत्तर दिया गया उसका प्रारूप इस प्रकार है,–

जैसा कि आपको ज्ञात है कि अत्र विराजित म. श्री लेखादि प्रकाशनार्थ नही देते हैं। अत आप द्वारा पूछे गये द्वि भाद्रपद पर्युषण सबधी प्रमाण म श्री से जान कर भावांश रूप मे नीचे लिख रहा हूँ।

समवायागजी मे पर्युषण विषयक एक मात्र निम्न पाठ

ही है,–" समणे भगव महावीरे वासाणं सवीसइराए मासे वइक्कते सत्तरिएहिं राइदिएहिं सेसेहि वासावास पज्जोसवेइ ।"

यह शास्त्रीय पाठ यही प्रदर्शित करता है कि एक मास और २० दिन व्यतीत होने पर तथा ७० दिन शेष रहने पर पर्युषण (वासावास पज्जोसवे) मनाना चाहिए ।

इस पाठ मे पहिले एक मास और बीस दिन का तथा वाद मे दिनो की निर्धारित सख्या ७० का उल्लेख है । उत्तरा-ध्ययन, समवायाग आदि सूत्रो से यह सिद्ध होता है कि ६ मास २९ दिन के होते है । इन वर्णित ६ मासो मे श्रावण मास का उल्लेख नही है । अत यह स्वमेव स्पष्ट हुआ कि श्रावण मास ३० दिन का ही होता है । उत्तराध्ययन तथा समवायागजी के तत् सम्बन्धी उद्धरण इस प्रकार है–

उत्तराध्ययन अध्ययन २६–" आषाढ़बहुलपक्खे, भद्दवए कत्तिए य पोसे य । फग्गुण-वइसाहेसु य, बोद्धव्वा, ओमरत्ताओ" ॥१५॥

समवायाग २९–" आषाढे णं मासे एगूणतीसरा-इंदिआइ राइदियग्गेणं पण्णत्ते (एवं चेव) भद्दवए णं मासे कतिए णं मासे पोसे णं मासे फग्गुणे णं मासे वइ-साणे णं मासे ।"

तो एक मास और बीस दिन बीतने पर–इस पद के उल्लेख से स्पष्ट है कि पर्युषण भाद्रपद मे ही प्रति वर्ष होने

चाहिए, श्रावण मास मे नही ।

इसी पद से दिनो का योग ५० (१ मास अर्थात् श्रावण ३० दिन का +२०=५०) स्पष्ट हुआ। तात्पर्य यह हुआ कि एक मास २० दिन (अर्थात् ५० दिन) व्यतीत होने पर ही और ७० दिन शेष रहने पर पर्युषण पर्व का आराधन किया जाय। उल्लिखित सूत्र मे कही पर भी इन समय-वाचक शब्दो के मध्य मे 'वा' अथवा 'आदि' अर्थ-वाचक शब्दो का प्रयोग नही है। इसलिए पर्युषण के समय पूर्व मे ५० दिन व्यतीत होना, तथा बाद मे ७० दिन शेष रहना, ये दोनो बातें नितात आवश्यक है, क्योकि सूत्र मे दोनो समय वाचक पदो का स्पष्ट उल्लेख किया गया है।

ऐसी स्थिति मे ४९ दिन तथा ६८, ६९ आदि दिनों के हिसाब मे तो पर्युषण नही मनाये जाने चाहिए, परन्तु मनाये तो गये ही हैं। सवत् १९८२, २000, २००९ और २010 आदि सवतो मे सवत्सरी के बाद चातुर्मास के ६८ दिन ही शेष रहे थे। कई बार ६९ दिन ही शेष रहते हैं। इसी प्रकार पर्यु-षण प्रारम्भ के पूर्व ४९ दिन कई बार रह जाते हैं।

तो इससे यह ज्ञात हुआ कि पर्युषण के पूर्व ५० दिन से कम दिन व्यतीत होने पर भी और बाद मे ७० दिन से कम दिन रहने पर भी पर्युषण पर्वाराधन किया जाता है, और उन कम दिनो को सूत्र पाठ मे वर्णित दिनो की संख्या और समय के अनुसार मान लिया जाता है।

जैसे हम दिनो की न्यूनता मे पूर्णता की कल्पना कर

लेते है, वैसे ही दिनो की अधिकता मे भी हमे वही मान्यता रखनी चाहिए। दिनो की न्यूनता और अधिकता दोनो मे सम-दृष्टिकोण से विचार करने पर यह उपस्थित विवाद स्वमेव लुप्त हो जायगा।

ऐसी स्थिति मे पर्युषण के पहले या पीछे अधिक मास होने पर उसे गौणता प्रदान कर नगण्य मान लिया जाय और अधिक दिनो का ५० और ७० दिनो मे ही समावेश कर लिया जाय। इस पद्धति से शास्त्रीय बाधा भी नही रहेगी और हम प्रायश्चित्त के भागी भी नही होगे। जब दो भाद्रपद हो, तो सूत्र पाठ मे वर्णित पदो मे सिर्फ एक मास और बीस दिन व्यतीत होने पर, इसी पद मे प्रथम भाद्रपद मे पर्वाराधन की कल्पना करना असगत है। क्योकि उसी सूत्र पाठ मे "७० दिन शेष रहने पर" यह भी उल्लेख है। सूत्र-पाठ मे दोनो तरफ दिनो का समान रूप से महत्त्व बताया गया है। इसी प्रकार पाठ के किसी एक भाग को मान कर, दूसरे को भग करना, प्रायश्चित्त का ही कारण है।

जब कभी अधिक मास आता है, तो चौमासी प्रतिक्रमण मे पच मास होने पर भी चौमासी मिच्छामी दुक्कड (पाप आलोचना) दिया जाता है। जिस प्रकार पंचमासी चौमासे मे मास को गौण किया जाता है, उसी प्रकार सवत्सरी के पहिले या पीछे अधिक मास होने पर उसे गौण समझ लेना चाहिए। यही निरापद मार्ग है।

अधिक मास न होने पर तथा श्रावण या भाद्रपद के

अतिरिक्त अधिक मास होने पर समाज, प्राय बिना मतभेद के भाद्रपद मे ही पर्युपण मनाती है। मतभेद खडा होता है--दो श्रावण या दो भाद्रपद होने पर। लौकिक तथा लोकोत्तर दोनों दृष्टियो से श्रावण दो हाने पर भाद्रपद मे और भाद्रपद अधिक होने पर दूसरे भाद्रपद मे पर्युषण मनाना सगत प्रतीत होता है। निम्न आधारो से इसका विचार किया जाय--

आगमानुसार इस वर्ष दो आषाढ है। ये लौकिक दृष्टि से दो भाद्रपद हैं। इस पर विचार करने से भी दूसरे भाद्रपद मे ही पर्युषण आराधना सगत है--

आगम मास	लौकिक मास
प्रथम आषाढ	आषाढ
द्वितीय अषाढ़	श्रावण
श्रावण	प्रथम भाद्रपद
भाद्रपद	द्वितीय भाद्रपद

इन मासो के आधार से भी लौकिक द्वितीय भाद्रपद ही आगमानुसार भाद्रपद है। अतः द्वितीय भाद्रपद मे ही पर्युषण मनाने चाहिए।

जिन-जन्मादि नक्षत्रो के प्रमाण से भी यही सिद्ध होता है--

भगवान् महावीर, आगमानुसार आषाढ शुक्ला ६ को गर्भ मे पधारे, तव उत्तरा-फाल्गुनी नक्षत्र का योग चद्र के साथ था। वह योग इस वर्ष लौकिक आषाढ शुक्ला ६ को नही है, परन्तु लौकिक श्रावण शुक्ला ५ नव घडी ४८ पल के वाद षष्ठि

को है। इससे यह लौकिक श्रावण आगमानुसार दूसरा आषाढ़ सिद्ध होता है।

२२ वे भगवान् का जन्म श्रावण शुक्ला ५ और दीक्षा श्रावण शुक्ला ६ को चित्रा के योग मे हुई थी। वह चित्रा का योग इस वर्ष लौकिक श्रावण की पचमी-षष्ठी को नही है। अत' लौकिक प्रथम भाद्रपद, आगमानुसार श्रावण सिद्ध होता है।

भगवान् महावीर का गर्भ–परिवर्तन आश्विन कृष्णा १३ को उत्तरा-फाल्गुनी के योग मे हुआ था, वह योग ठीक रूप से इस वर्ष आश्विन कृष्णा १३ को १६ घडी १ पल बाद मे है। यहा पर लौकिक आश्विन और आगम आश्विन दोनो मिल गए हैं।

भगवान महावीर का निर्वाण स्वाति नक्षत्र मे हुआ था, वही स्वाति नक्षत्र इस वर्ष की दीपावली पर भी है।

तात्पर्य यह है कि लौकिक पचाग वालो ने भाद्रपद दो किये हैं, परन्तु आगमानुसार तो दो आषाढ ही है। अत दो आषाढ होने से लौकिक दूसरे भाद्रपद मे ही पर्युषण आते हैं।

इसी प्रकार श्रावण अधिक होने पर श्रावण की जिन-कल्याणक तिथियो मे नक्षत्रो का जो मेल आगमो मे बताया है, वह प्रथम मे न आकर दूसरे श्रावण की तिथियो मे और आषाढ की जिनकल्याणक तिथियो का मेल प्रथम श्रावण मे ठीक रूप से बैठेगा। सवत् १९९९ और २००४ के पचाग देख कर इसका निर्णय किया जा सकता है।

लौकिक प्रमाणो से भी पर्युषण द्वितीय भाद्रपद मे ही

किये जाना चाहिए। जैसे दो आपाढ होने पर भी धार्मिक पर्व-चोमासी की स्थापना दूमरे आषाढ मे ही करते हैं। लौकिक पर्व जैसे रक्षा-बधन, अक्षय-तृतीया, गणेश-चतुर्थी, ऋषि पंचमी आदि भी अधिक मास मे होने पर प्रथम मे न करके, द्वितीय मे ही मनाये जाते हैं।

जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति आदि आगमो के अनुसार दो आषाढ हो, तब युगांत द्वि. आषाढ मे और नूतन युग-प्रारम्भ श्रावण से माना जाता है। इससे स्पष्ट है कि आगमानुसार द्वितीय मास ही 'निजी मास' माना जाता है।

एल. डी. स्वामी कन्नुपिल्लै द्वारा लिखित तथा ग्राट एण्ड कम्पनी रायपुरम्, मद्रास द्वारा प्रकाशित "एन. इण्डियन इफैमेरिस" (सन् ७०० से १९९९ तक) नामक पचाग, तथा ज्योतिषाचार्य गिरजाशकर हरिशकर कृत पंचाग मे तथा अन्य कई पंचागो मे भी दूसरे मास को 'निज माम' बताया गया है।

रात्रिवाहक नक्षत्र जो भाद्रपद की अमावस्या और पूर्णिमा को बताये गये हैं, वे ही नक्षत्र इस वर्ष दूमरे भाद्रपद की अमावस्या और पूर्णिमा को होगे, यह प्रत्यक्ष मे देखा जा सकता है। इमी प्रकार अधिक मास की स्थिति मे, दूसरे मास मे वे नक्षत्र यथा वर्णित स्थिति मे रहेगे।

छायामान को लेकर भी उहापोह किया जाता है, उसका उचित समीक्षण यह है कि छायामान, सूर्य के हिसाब से और पर्व चन्द्र के अनुसार किये जाते हैं। अत छायामान की युक्तियाँ

पर्व निर्णय पर लागू नही पडती। कुछ उदाहरण इसे और भी स्पष्ट कर देगे।

सवत् १९९९ मे लौकिक ज्येष्ठ दो थे, तो भाद्रपद की पूर्णिमा को दिनमान ३० घडी के हो गए थे, तो भी पर्युषण भाद्रपद मे ही मनाये गए थे। छायामान के अनुसार ता वह भाद्रपद पूर्णिमा, आश्विनी पूर्णिमा हो गई थी, किन्तु उसे न मान कर पर्युषण भाद्रपद के ही मनाये गए थे। इसी प्रकार वैशाख, आषाढ आदि अधिक होने पर दिनमान (छायामान) मे अन्तर होता है और पर्युषण भाद्रपद मे ही मनाये जाते हैं, तो फिर श्रावण और भाद्रपद अधिक होने पर विवाद क्यो उठाया जाता है ?

तृतीया, चतुर्थी, अष्टमी, दसमी आदि तिथियो पर भी छायामान की पूर्ति हो जाती है। लेकिन उस दिन चौमासी आदि पर्वाराधन नही किये जाते, क्योकि छायामान सूर्य के अनुसार माना जाता है। पर्वाराधन तो चन्द्रानुसार ही माने जाते हैं। अत पर्युषण दो भाद्र होने पर द्वि भाद्रपद मे और दो श्रावण होने पर भाद्रपद मे ही मनाये जाने चाहिए।

कल्पसूत्र का उल्लेख कर जो द्वितीय श्रावण या प्रथम भाद्रपद मे पर्युषण आराधन सबधी विचार किया जाता है, इस सबध मे तो इतना कथन ही पर्याप्त है कि कल्पसूत्र के कई टीका व भाषाकारो ने तथा 'अभिधान राजेन्द्र' कोषकार ने भी दो श्रावण होने पर भाद्रपद मे और दो भाद्रपद होने पर द्वि-भाद्रपद मे सवत्सरी आराधना का स्पष्टरूपेण उल्लेख किया है।

जो लोग उत्सर्पिणी काल के दूसरे आरे के प्रारम्भ मे सात-सात दिन के सात मेघ के ४६ दिन बतला कर आषाढ चौमासी के ५० वे दिन संवत्सरी कायम करने की युक्ति, द्वि श्रावण व प्रथम भाद्रपद की सवत्सरी के लिये लगाते हैं, तथा कोई ५ मेघ और दो सात-सात दिन के अंतर बतला कर उपरोक्त युक्ति लगाते हैं, परन्तु वह युक्ति भी ठीक नही हैं। सूत्र मे तो सिर्फ (१) पुष्कल संवर्तक (२) घृत (३) खीर (४) अमृत और (५) रस–एव ५ ही मेघ की सात-सात दिन की वृष्टि के ३५ दिन ही बताये हैं। अत. आगमानुसार विचार करने से द्वि श्रावण व प्रथम भाद्रपद की सवत्सरी के लिये उनकी उपरोक्त युक्ति भी असत्य प्रतीत होती है।

कई यह युक्ति भी दिया करते हैं कि धार्मिक कार्य तो पहले ही करना चाहिए। हमारा जीवन ही धार्मिक कार्यमय हो जाना चाहिए। पहले और पीछे के प्रश्न का इससे क्या सबंध ? समाधान है कि जब आगम, हमारे आधार रूप मे है, तो हमे उनके अनुसार चलना चाहिए। पाप व प्रमाद आदि का परित्याग तो सदा ही श्रेयस्कर है। किन्तु पर्वाराधन तो शास्त्रीय मान्यता के अनुसार ही होना चाहिए।

दो 'आषाढ होने पर चौमासी स्थापना द्वि. आषाढ में की जाती है'–ऐसा जो हम करते हैं, वह शास्त्रीय आधार से ही तो करते हैं। अत संवत्सरी के लिये तो अन्य उदाहरण नहीं देने चाहिये। शास्त्रीय आधार को एक ओर रख कर हम धार्मिक कार्यों मे निराधार अवस्था मे कैसे बढ सकेगे ? विना प्रामा-

पर्व निर्णय पर लागू नही पडती । कुछ उदाहरण इसे और भी स्पष्ट कर देगे ।

सवत् १९९९ मे लौकिक ज्येष्ठ दो थे, तो भाद्रपद की पूर्णिमा को दिनमान ३० घडी के हो गए थे, तो भी पर्युषण भाद्रपद मे ही मनाये गए थे । छायामान के अनुसार ता वह भाद्रपद पूर्णिमा, आश्विनी पूर्णिमा हो गई थी, किन्तु उसे न मान कर पर्युषण भाद्रपद के ही मनाये गए थे। इसी प्रकार वैशाख, आषाढ आदि अधिक होने पर दिनमान (छायामान) मे अन्तर होता है और पर्युषण भाद्रपद मे ही मनाये जाते हैं, तो फिर श्रावण और भाद्रपद अधिक होने पर विवाद क्यो उठाया जाता है ?

तृतीया, चतुर्थी, अष्टमी, दसमी आदि तिथियो पर भी छायामान की पूर्ति हो जाती है । लेकिन उस दिन चौमासी आदि पर्वाराधन नही किये जाते, क्योकि छायामान सूर्य के अनुसार माना जाता है । पर्वाराधन तो चन्द्रानुसार ही माने जाते हैं । अत पर्युषण दो भाद्र होने पर द्वि भाद्रपद मे और दो श्रावण होने पर भाद्रपद मे ही मनाये जाने चाहिए ।

कल्पसूत्र का उल्लेख कर जो द्वितीय श्रावण या प्रथम भाद्रपद मे पर्युषण आराधन सबधी विचार किया जाता है, इस सबध मे तो इतना कथन ही पर्याप्त है कि कल्पसूत्र के कई टीका व भाषाकारो ने तथा 'अभिधान राजेन्द्र' कोषकार ने भी दो श्रावण होने पर भाद्रपद मे और दो भाद्रपद होने पर द्वि. भाद्रपद मे सवत्सरी आराधना का स्पष्टरूपेण उल्लेख किया है ।

जो लोग उत्सर्पिणी काल के दूसरे आरे के प्रारम्भ मे सात-सात दिन के सात मेघ के ४९ दिन बतला कर आषाढ चौमासी के ५० वे दिन संवत्सरी कायम करने की युक्ति, द्वि श्रावण व प्रथम भाद्रपद की सवत्सरी के लिये लगाते हैं, तथा कोई ५ मेघ और दो सात-सात दिन के अंतर बतला कर उपरोक्त युक्ति लगाते है, परन्तु वह युक्ति भी ठीक नही हैं। सूत्र मे तो सिर्फ (१) पुष्कल सवर्तक (२) घृत (३) खीर (४) अमृत और (५) रस–एव ५ ही मेघ की सात-सात दिन की वृष्टि के ३५ दिन ही बनाये हैं। अत आगमानुसार विचार करने से द्वि श्रावण व प्रथम भाद्रपद की सवत्सरी के लिये उनकी उपरोक्त युक्ति भी असत्य प्रतीत होती है।

कई यह युक्ति भी दिया करते हैं कि धार्मिक कार्य तो पहले ही करना चाहिए। हमारा जीवन ही धार्मिक कार्यमय हो जाना चाहिए। पहले और पीछे के प्रश्न का इससे क्या सबंध ? समाधान है कि जब आगम, हमारे आधार रूप मे है, तो हमे उनके अनुसार चलना चाहिए। पाप व प्रमाद आदि का परित्याग तो सदा ही श्रेयस्कर है। किन्तु पर्वाराधन तो शास्त्रीय मान्यता के अनुसार ही होना चाहिए।

दो 'आषाढ होने पर चौमासी स्थापना द्वि. आषाढ में की जाती है'–ऐसा जो हम करते हैं, वह शास्त्रीय आधार से ही तो करते हैं। अत सवत्सरी के लिये तो अन्य उदाहरण नहीं देने चाहिये। शास्त्रीय आधार को एक ओर रख कर हम धार्मिक कार्यों मे निराधार अवस्था मे कैसे बढ सकेंगे ? विना प्रामा-

णिक आधार के हमारी सब व्यवस्था ही लडखडा जायगी। अत हमे धार्मिक कार्य की प्राथमिकता का एसा अर्थ नही लगाना चाहिए, जिससे कि हम अपने लक्ष्य से ही च्युत हो जावे। आशा है विद्वद् तथा धर्म-प्रिय सज्जन इसका विचार करेगे। तत्त्व केवलीगम्य है।

शका-जैन सिद्धात शास्त्रो के अनुसार कौन से महिने अधिक मास हो सकते हैं और इसका उल्लेख किस शास्त्र मे है?

समाधान-स्थानाग, समवायाग, जबूद्वीपप्रज्ञप्ति, चद्र-प्रज्ञप्ति, सूर्यप्रज्ञप्ति आदि शास्त्रो से गणित फलावट के अनुसार पौष और आषाढ-ये दो मास अधिक होते हैं।

८६८ प्रश्न-श्री समवायागजी सूत्रमा पर्युषण माटे एम बतावेल छे के एक मास बीस दिवस व्यतीत थया बाद अने ७० दिन बाकी रहे त्यारे सवत्सरी पर्व आवे। आ ऊपर थी एम नक्की थाय छे के ४ मास मा १२० दिवस छे एटले ते चौमा-साना ४ मासमा घटी तिथि नथी। ते हकीकत सत्य छे? अने ते प्रमाणे ज बनतो आवे छे? जो तेमा घटी तिथि आवे, तो शास्त्रनु फ्रमाण बराबर नथी-एम गणाय छे, केम?

उत्तर-निरश होने के कारण प्राय ऋतुमास ही लोक-व्यवहार मे आता है। ऋतुमास की अपेक्षा शास्त्र मे चौमासे के १२० दिन बताये हैं। परन्तु धार्मिक पर्व (चौमासी आदि) चन्द्रमास की अपेक्षा से मनाये जाते हैं। ऋतु और चन्द्र संवत्सर मे लगभग ६ दिन का अतर बताया है। अत चन्द्रमास की अपेक्षा से तिथि घटना सिद्धातानुकूल है। जिस प्रकार पौष और

आषाढ अधिक होने पर फाल्गुन और आषाढी चौमासी प्रतिक्रमण मे 'पचमासी मिच्छामि दुक्कड' न देकर 'चौमासी मिच्छामि दुक्कडं' ही देते हैं और अधिक मास को गौण समझते हैं, उसी प्रकार यहा अवम-रात्रि को भी गौण समझना आगमानुसार है। अतः अवम-रात्रि का होना शास्त्रीय प्रामाणिकता का बाधक नही है।

८६९ प्रश्न-आषाढ मास २९ दिवसनो महिनो छे, श्रावण ३० दिवसनो, अने भाद्रपद २९ दिवसनो, एटले घटि-तिथि, पहिला ५० दिवसमा आवे के पछीना ७० दिवसमा आवे, ते पण जणावसो ?

उत्तर–सवत्सरी के पहिले व पीछे दोनो ओर अवम-रात्रि आ सकती है। इसका विशेष खुलासा समवायाग, चन्द्रप्रज्ञप्ति, सूर्यप्रज्ञप्ति आदि मे है।

८७० प्रश्न–पूज्य महाराज श्रीए जणाव्यु छे के श्री भगवान् महावीर स्वामी गर्भमा पधार्या वगरे नक्षत्रो एक महिना पछी एटले श्रावणमा आवे छे, तो दरेक वर्षे आ नक्षत्रो आषाढमां आवे छे के दर वर्षे फेरफार थाय छे ? ज्यारे चोमासाना ४ मास सिवाय अधिक मास आवे, त्यारे ते नक्षत्रो क्यारे आवे छे ? सं. २००९ मा पण अधिक मास हतो, ते वखते पू. म श्रीए जे नक्षत्रो अने कल्याणक-दिवसो बताव्या ते प्रमाणे ज हतो। अने ते प्रमाणे बीजा तीर्थंकरोना पण कल्याणक, ते ज नक्षत्रमा, ते ज मासमा आवे छे के केम ? के आ वखते संजोगानुसार एम बन्यु छे, ते पण जणाववा कृपा करसोजी।

उत्तर–श्रावण या भाद्रपद अधिक होने पर समाज मे

पहले व पीछे सवत्सरी मनाने संबधी प्रश्न उपस्थित होते हैं। विक्रम स. १९९६ व २००४ मे भी श्रावण अधिक होने से म श्री को उस समय उससे सबधित जिन-जन्मादि नक्षत्र देखने का प्रसग आया था। उन वर्षों मे भी जिन-जन्मादि नक्षत्रो का योग सूत्रानुकूल ही था।

श्रावण, भाद्रपद के अतिरिक्त अधिक मास आने पर तथा अधिक मास न आने पर सवत्सरी सबंधी मतभेद का खास कोई प्रश्न ही उपस्थित नही हुआ। अत तत् सबधी वर्षों मे जिन जन्मादि नक्षत्रो का देखने का कोई प्रसग ही नही आया।

८७१ प्रश्न—जैन शास्त्रोमां कई-कई तिथिनो क्षय थाय तेम बतावेल छे अने ते प्रमाणे अत्यारे क्षय थाय छे के केम? ते पण शास्त्रना मूल पाठ थी जणावसोजी।

उत्तर—सूर्यप्रज्ञप्ति के १२ वे प्राभृत मे तिथि-क्षय सबधी मूल पाठ निम्न प्रकार है—

"तत्थ खलु इमे छ ओमरत्ता पं. तं. पव्वे सत्तमे पव्वे एक्कारसमे पव्वे पन्नरसमे पव्वे एगूणघीसतिमे पव्वे तेवीसतिमे पव्वे।"

इसका विशेष विवरण इसी पाठ की टीका मे है। इसीसे मिलता जुलता पाठ स्यानाग के छट्ठे स्थान मे भी है। लौकिक पनागो मे क्षय-तिथि उपरोक्त से भिन्न भी आती है।

८७२ प्रश्न—पू म श्री जणावे छे के "जब आगम हमारे आधार रूप मे है, तो हमे उसके अनुसार चलना चाहिए।" हूं पण एज मानु छु के आगम अनुसारज बधु थवु जोइए, नही के

लौकिक रीते, अने ते प्रमाणे थाय छे के केम ? ते माटेज ऊपरना प्रश्नो उपस्थित थाय छे, तो ते बाबत आगम आधारथी जणाववा कृपा करशोजी।

उत्तर-आपने लिखा कि "हू पण एज मानु छु के आगम-अनुसारज बधु थवु जोईए. . . ." आपके इस लिखे अनुसार यदि सपूर्ण चतुर्विध सघ सभी प्रवृत्तियों को आगमानुसार करने का दृढ निश्चय करले, तो ऐसा होना असंभव नही है और इसी मे गौरव है।

८७३ प्रश्न-शास्त्रमां क्याय एवो उल्लेख छे के संवत्सरी-पर्व अमुक नक्षत्रमा ज होवु जोईए ? जो संवत्सरी पर्व दरेक वर्षे जुदा-जुदा नक्षत्रो मा आवतु होय तो पछी तीर्थंकर भगवान् ना कल्याणक पण जुदा-जुदा नक्षत्रो मा अत्यारे आवे के केम ? ते पण जणावशोजी।

उत्तर-अमुक नक्षत्र मे सवत्सरी पर्व मनाया-ऐसा कोई भी सूत्र का पाठ मेरे देखने मे नही आया।

८७४ प्रश्न-"जस्स णं कोह-माण-माया-लोभा वोच्छिण्णा भवंति तस्सणं इरियावहिया किरिया कज्जइ, तहेव जाव उस्सुत्तं रीयमाणस्स संपराइया किरिया कज्जई।"

श्री भगवती सूत्र के ७ वे शतक के ७ वे उद्देशे में यह पाठ आया है, इसमे कहा है कि उत्सूत्र (सूत्र विरुद्ध) प्रवृत्ति करने वाले को साम्परायिकी क्रिया लगती है।

प्रश्न यह है कि पहले से लेकर १० वे गुणस्थान तक

एक साम्परायिकी क्रिया लगती है, तो क्या पहले से १० वे गुणस्थान तक के सभी जीव उत्सूत्र प्रवृत्ति करने वाले होते हैं? इस पाठ का आशय क्या है?

उत्तर–कषाय, चारित्रावरणीय (चारित्र-मोहनीय) कर्म की प्रकृति है। यह कषाय, पूर्ण शुद्ध चारित्र की उत्पत्ति मे निरोधक है। कषाय के प्रदेशादय तथा विपाकोदय के सद्भाव मे किसी भी रूप मे पूर्ण शुद्ध चारित्र उत्पन्न नही हो सकता। तात्पर्य यह है कि कषाय का उदय पूर्णरूप से रुकने पर ही यथाख्यात चारित्र होगा और उसे ही पूर्ण शुद्ध चारित्र कहा जायगा। जिसके यह चारित्र होगा, उसके चारित्र-मोहनीय कर्म के उदय का सर्वथा अभाव होगा।

मूल एव उत्तर गुणों के अप्रतिसेवी होते हुए भी मात्र कषाय से ही जो कुशील होते हैं, उन्हे 'कषाय-कुशील' कहते हैं।

कषाय (लोभ) का सूक्ष्म अग भी अनन्त गुण चारित्र-विशुद्धि को रोकता है। वही कषाययुक्त प्रवृत्ति–'उत्सूत्र प्रवृत्ति' बताई है। इन कषायो के (मद, मदतर, मंदतम) कारणो से ही पुलाकादि चार निर्ग्रंथो के तथा सामायिक आदि चार संयम के सयम-स्थान असख्य बताये गये हैं। निर्ग्रंथ, स्नातक और यथाख्यात के सयम-स्थान कषायोदय के अभाव से प्रत्येक का सयम-स्थान एक ही बताया है। इनका सयम-स्थान एक होते हुए भी चारित्र-पर्यव, उन (कषाय युक्तो) से अनन्त गुण अधिक बताये हैं। उन अनन्त गुण अधिक चारित्र-पर्यव को रोकने वाली एक मात्र कषाय ही है।

शुद्ध दृष्टि से सम्पूर्ण चारित्रावरणीय कर्म के उदय-विच्छेद को ही 'निर्ग्रंथ' कहते हैं। उनकी प्रवृत्ति सूत्रानुकूल होती है। जिनके क्रोध, मान, माया और लोभ का अश भी उदय मे रहेगा, तो उनकी एकान्त "आउत्त" प्रवृत्ति नही हो सकेगी। कषाय के कारण अणाउत्त प्रवृत्ति ही उत्सूत्र-प्रवृत्ति मानी गई है।

यहाँ जो वर्णन है, वह कषाय के अश को मुख्य मान कर किया गया है। अश ग्राही नये अश को ग्रहण कर पूर्ण विवेचन करते है।

१४ वे गुणस्थानवर्ती को 'ससारी' कहना, निगोद के जीवो को 'सिद्ध समान' कहना तथा अल्प रजकणमय शक्कर को 'शुद्ध शक्कर' नही मानना आदिवत्। अश मात्र मे कषाय होने पर 'उत्सूत्रता' कही गई है। चारित्र दृष्टि को मुख्य मान कर जब कथन किया गया है, तब उत्तराध्ययन, सूयगडाग, स्थानाग, समवायाग, भगवती, ज्ञाताधर्मकथा आदि अगो मे एवं उववाई आदि उपागो मे मुनियो के गुणो का उत्कृष्ट रूप मे वर्णन किया गया है। वहा कषाययुक्त स्थिति मे मुनिराजो को "अजिणा जिण संकासा"—"संजमेण-तवसा अप्पाणं भावेमाणा विहरति,"—"वयप्पहाणा गुणप्पहाणा करणप्पहाणा चर-णप्पहाणा ...." "अबहिलेस्सा.... सुसामण्णरया दंता इणमेव निग्गयं पावयणं पुरओकाउं विहरति" "रयण-फरंडगसमाणा कुत्तियावणभूया" "वासीचन्दणसमाण-

यह तो स्थूल रूप से वेदोदय का स्वरूप बताया है। अन्यथा ग्रैवेयक देवो के मन-परिचारणा (मनोविकार) भी नही है, तो भी रसोदय रूप वेदोदय माना है। इसी प्रकार तत्काल के गर्भस्थ जीवो मे या तुरन्त के जन्मे हुए मनुष्यादि मे तथा सूक्ष्म एकेन्द्रियादि मे प्रगट इच्छा न होते हुए भी रसोदयरूप वेदोदय माना है। तथा तर्क, सज्ञा, प्रज्ञा, मन और वचन पृथ्वीकायादि जीवो मे न होते हुए भी वे कांक्षा-मोहनीय कर्म वेदते है—ऐसा भगवती श १ उ. मे बताया है। इसी प्रकार उनमे उभयाभिलाषा प्रकट रूप मे न होते हुए भी वे नपुसक वेद का रसोदय वेदते है। अत यह अर्थ सर्वत्र लागू नही होता। "**उदओ विवाग वेयण**"—यह पाठ दूसरे कर्मग्रन्थ का है। 'कर्म रसनु विपाक काले वेदक ते उदय'—यह उसका अर्थ है। खास तो विपाकोदय को ही उदय माना है। केवल प्रदेशोदय, जिस प्रकृति का जिस समय ही हो, उस समय उस प्रकृति को उदय की प्रकृति मे शामिल नही की है। यह उदय प्रकृतियो को सूक्ष्म रूप से देखने से पता लग जायगा। (तीर्थंकर नाम-कर्म का प्रदेशोदय चोथे मे बारहवे गुणस्थान तक माना और रसोदय तो केवल १३-१४ वे गुणस्थान मे ही) अत नोवे गुणस्थान के कुछ हिस्से तक जीवो के रसोदय रूप वेद का उदय मानना ठीक जचता है। जिस प्रकार अप्रमत्त गुणस्थान मे हास्यादि तथा कषायादि का विपाकोदय मंद, मदतर और मंदतम रूप मे माना है, परन्तु प्रकट रूप से तो खुद उनको भी उसका पता लगना मुश्किल है। यह ज्ञानियो ने बताया है, उसी प्रकार

वेद का भी समझना चाहिए।

८७७ प्रश्न–स्थानकवासी मुनिराज "दयापालो" कहते हैं। मूर्तिपूजक पूछते हैं कि दयापालो का क्या अर्थ है ? दयापालो कहना उपदेश रूप है। श्रावक, पौषध मे भी मुनिराज को वंदन करता है तब भी मुनिराज दयापालो ही कहते हैं। पौषध मे तो दया का पालन होता ही है, तो फिर दयापालो कहने का क्या अर्थ ?

उत्तर–स्थानकवासी मुनिराज वंदनकर्त्ता को "दयापालो" कहते हैं, उसका उपदेशात्मक अर्थ ठीक ही है। व्यावहारिक दृष्टि से वदनकर्त्ता को (ध्यान-मौनादि के सिवाय) प्रत्युत्तर देने के लिये किसी न किसी शब्द का प्रयोग करना उचित लगता है। दया (अहिंसा) व्रत, सभी व्रतो का मूल है। गौण रूप से सभी व्रतो का समावेश इसी मे हो जाता है। प्रवृत्ति कार्यों मे सर्वप्रथम स्थान इसी का है। अत. मुनिराज वंदनकर्त्ता को शुद्ध प्रवृत्ति मे प्रेरित करने के लिये "दयापालो" शब्द का प्रयोग करते हैं। अर्थात् वदन करना तो वदन है, परन्तु पूर्ण उद्धार हेतु शुद्ध प्रवृत्ति करना आवश्यक है। अत इस ओर ध्यान आकर्षित करने के लिये सदैव 'दयापालो' शब्द का व्यवहार उचित लगता है।

पौषध मे भी करण, योग और समय की अपेक्षा श्रावक के सपूर्ण दया नही होती। अत उसको भी सपूर्ण दया की ओर लक्षित करने के लिये दयापालो कहना उचित ही लगता है।

'धर्म लाभ' शब्द आशीर्वाद वाचक है अर्थात् वंदन

यह तो स्थूल रूप से वेदोदय का स्वरूप बताया है। अन्यथा ग्रैवेयक देवो के मन परिचारणा (मनोविकार) भी नही है, तो भी रसोदय रूप वेदोदय माना है। इसी प्रकार तत्काल के गर्भस्थ जीवो मे या तुरन्त के जन्मे हुए मनुष्यादि मे तथा सूक्ष्म एकेन्द्रियादि मे प्रगट इच्छा न होते हुए भी रसोदयरूप वेदोदय माना है। तथा तर्क, सज्ञा, प्रज्ञा, मन और वचन पृथ्वीकायादि जीवो मे न होते हुए भी वे काक्षा-मोहनीय कर्म वेदते है-ऐसा भगवती श १ उ. मे बताया है। इसी प्रकार उनमे उभया-भिलाषा प्रकट रूप मे न होते हुए भी वे नपुसक वेद का रसोदय वेदते है। अत यह अर्थ सर्वत्र लागू नही होता। "**उदओ विवाग वेयण**"-यह पाठ दूसरे कर्मग्रन्थ का है। 'कर्म रसनु विपाक काले वेदक ते उदय'-यह उसका अर्थ है। खास तो विपाकोदय को ही उदय माना है। केवल प्रदेशोदय, जिस प्रकृति का जिस समय ही हो, उस समय उस प्रकृति को उदय की प्रकृति मे शामिल नही की है। यह उदय प्रकृतियो को सूक्ष्म रूप से देखने से पता लग जायगा। (तीर्थंकर नाम-कर्म का प्रदेशोदय चौथे से बारहवे गुणस्थान तक माना और रसोदय तो केवल १३-१४ वे गुणस्थान मे ही) अत नौवे गुणस्थान के कुछ हिस्से तक जीवो के रसोदय रूप वेद का उदय मानना ठीक जचता है। जिस प्रकार अप्रमत्त गुणस्थान मे हास्यादि तथा क्रोधादि का विपाकोदय मंद, मदतर और मंदतम रूप से माना है, परन्तु प्रकट रूप से तो खुद उनको भी उसका पता लगना मुश्किल है। यह ज्ञानियो ने बताया है, उसी प्रकार

वेद का भी समझना चाहिए।

८७७ प्रश्न–स्थानकवासी मुनिराज "दयापालो" कहते हैं। मूर्तिपूजक पूछते है कि दयापालो का क्या अर्थ है? दयापालो कहना उपदेश रूप है। श्रावक, पौषध मे भी मुनिराज को वंदन करता है तब भी मुनिराज दयापालो ही कहते है। पौषध में तो दया का पालन होता ही है, तो फिर दयापालो कहने का क्या अर्थ ?

उत्तर–स्थानकवासी मुनिराज वंदनकर्त्ता को "दयापालो" कहते हैं, उसका उपदेशात्मक अर्थ ठीक ही है। व्यावहारिक दृष्टि से वदनकर्त्ता को (ध्यान-मौनादि के सिवाय) प्रत्युत्तर देने के लिये किसी न किसी शब्द का प्रयोग करना उचित लगता है। दया (अहिंसा) व्रत, सभी व्रतो का मूल है। गौण रूप से सभी व्रतो का समावेश इसी मे हो जाता है। प्रवृत्ति कार्यों मे सर्वप्रथम स्थान इसी का है। अत. मुनिराज वदनकर्त्ता को शुद्ध प्रवृत्ति मे प्रेरित करने के लिये "दयापालो" शब्द का प्रयोग करते हैं। अर्थात् वदन करना तो वदन है, परन्तु पूर्ण उद्धार हेतु शुद्ध प्रवृत्ति करना आवश्यक है। अत. इस ओर ध्यान आकर्षित करने के लिये सदैव 'दयापालो' शब्द का व्यवहार उचित लगता है।

पोषध मे भी करण, योग और समय की अपेक्षा श्रावक के सपूर्ण दया नही होती। अत. उसको भी सपूर्ण दया की ओर लक्षित करने के लिये दयापालो कहना उचित ही लगता है।

'धर्म लाभ' शब्द आशीर्वाद वाचक है अर्थात् वंदन

करने से तुम्हे धर्म का लाभ होगा। परन्तु यह शब्द खास अहिंसादि धर्म करने की प्रवृत्ति की ओर प्रेरित नही करता। केवल वदन रूप विनय प्रवृत्ति का ही प्रेरक है। अत अहिसादि प्रवृत्ति मे प्रेरित करने वाले शब्द का उपयोग विशेष उचित लगता है।

८७८ प्रश्न–जीव जो भी कार्य करता है, उसी अनुसार पुण्य तथा पाप कर्म बधता है, परन्तु जीव जो कार्य करता है उसके फल का निर्णय कौन करता है, जिसके अनुसार वह जीव उसी जगह जाकर जन्म लेता है और फल भोगता है ?

उत्तर–जिस प्रकार वैद्य रोगियो को विभिन्न प्रकार की रोगानुकूल दवाइयां देता है और वे दवाइयां अपने-अपने स्वभावानुसार रोगियो पर गर्मी-सर्दी आदि अनेक प्रकार का प्रभाव प्रकट करती हैं। वे दवाइयाँ जड होने के कारण वैद्य आदि किसी के भी हुक्म को नही समझती और न वैद्य उन्हे किसी प्रकार का हुक्म ही देता है। फिर भी वे तो अपने-अपने स्वभावानुसार फल बतलाती है।

तथा विभिन्न प्राणी पथ्या-पथ्य का सेवन करते हैं, उन्हे वस्तुओ के गुण दोषो के अनुरूप स्वत फल मिलते रहते हैं। वस्तुओ को रोगी, निरोगी, सुखी, दुखी आदि बनाने के लिये कोई हुक्म नही देता और न उन वस्तुओ मे जड होने के कारण वैसे बनाने का विचार ही होता है, परन्तु वे अपने स्वभावानुसार रोगी, निरोगी आदि बनाती है।

जैसे कोई व्यक्ति ज्यादा भग लेने से कुछ समय तक

के लिये पागल-सा बन जाता है। भाग जड है। वह बिना भेद भाव के राजा-रंकादि सभी पर बिना प्रेरक के अपना स्वभाव बता देती है। उसी प्रकार जीव के भी कर्म बधते हैं। वे जड हैं और बध होने के बाद उनका सुख या दुख रूप स्वभाव प्रगट हो जाता है। अर्थात् कर्म पुद्गलो के स्वभाव से ही उस कर्म बाधने वाले जीव को सुख-दुख रूप फल मिलते हैं। दूसरा कोई भी फल भुगताने वाला नही है।

८७९ प्रश्न—जब जीव अपना शरीर छोडता है, उस समय वह स्वय निकलता है? अकेला ही दूसरी जगह जाकर जन्म ले लेता है या किसी के द्वारा ले जाया जाता है? यदि ले जाया जाता है, तो किसके द्वारा और उसको कौन भेजता है? और जब वे आते हैं, तब उस जीव को वे दिखलाई देते हैं या नही? यदि जीव अकेला ही चला जाता है तो कैसे चला जाता है?

उत्तर—जीव को भवान्तर मे अपने कर्मो के सिवाय दूसरा कोई नही ले जाता। कर्म युक्त जीव अकेला ही दूसरी जगह जाकर जन्म लेता है। जिस प्रकार भग, शराबादि से पराधीन पागल प्राणी द्वारा अपने आप ही बुरी तरह बकना, भूषण वस्त्रादि फेंकना, जूते आदि पटकना, सिर, हाथ, पैरादि को जोरो से चोट पहुँचाना आदि होता है। उसकी इच्छा दुखी होने की न होते हुए भी वह उस भागादि के परमाणुओ के स्वभाव से बिना किसी की प्रेरणा के अपने आप ही दुखी होता है। इसी प्रकार नरकानुपूर्वी आदि कर्म परमाणुओ के स्वभाव से

ही वह अपने आप नरकादि गति मे चला जाता है। उसको ले जाने वाला और भेजने वाला कोई नही है।

८८० प्रश्न—धूप, दीपक, पुष्प, गध आदि से देवता प्रसन्न होते है क्या और मनोकामना पूरी कर सकते हैं ?

उत्तर—बिना शुभ कर्मोदय के जीव की मनोकामना को पूर्ण करने की शक्ति किसी भी देवादि मे नही है।

८८१ प्रश्न—देवता के नाम से भजन व माला जपने से निर्जरा होती है ?

उत्तर—भवनपत्यादि चारो ही जाति के देवो मे से किसी भी देव के नाम की माला फेरना, खास निर्जरा होने का कोई कारण नही है। अत वास्तविक निर्जरा नही होती।

८८२ प्रश्न—नरक मे प्राणी हैं, उनके नाम की माला व भजन जपने से पाप होता है क्या ?

उत्तर—परमेष्टी का जाप ही खास निर्जरा का कारण है। अन्य नेरयिकादि कोई भी प्राणी, जाप करने योग्य नही है। जाप करने योग्य न होते हुए भी जाप योग्य समझे, तो उसको उलटी श्रद्धा का पाप होता है। उन जीवो मे जो क्षायिक-सम्यक्त्व आदि गुण हो, तो उन गुणो की प्रशसा करना तो लाभ का हेतु है, परन्तु उनका जाप नही करना चाहिए।

८८३ प्रश्न—अभी जो लोगस्स का पाठ पढा जाता है वह कब से शुरू हुआ ? महावीर स्वामी तथा इनके पहले के तीर्थंकरो के समय क्या यही लोगस्स का पाठ पढा जाता था या दूसरा ? उस काल मे पढने का चलन था या नही ?

उत्तर–भरत और ऐरवत क्षेत्र के प्रत्येक उत्सर्पिणी मे चोबीस-चोबीस तीर्थंकर होते हैं। जब पहले तीर्थंकर होते हैं तब उन एक तीर्थंकर का नाम 'लोगस्स' मे गुथन किया जाता है। दूसरे तीर्थंकर होने पर, पहले और दूसरे, दो तीर्थंकरो का नाम उस 'लोगस्स' मे गुथन किया जाता है। एव ३, ४ यावत् २३, २४ तक जितने होगे, उतनो का नाम 'लोगस्स' मे गुंथन किया जाता है। एक ही काल चक्र मे उत्सर्पिणी के तीर्थंकरो के नाम अवसर्पिणी तीर्थंकरो के साथ और अवसर्पिणी के तीर्थंकरो के नाम उत्सर्पिणी के तीर्थंकरो के साथ 'लोगस्स' मे गुथन नही किये जाते। इसी प्रकार एक क्षेत्र के तीर्थंकरो के नाम अन्य क्षेत्र के तीर्थंकरो के साथ 'लोगस्स' मे गुंथन नही किये जाते। महाविदेह क्षेत्र की प्रत्येक विजय मे भिन्न भिन्न एक-एक तीर्थंकर के नाम का भिन्न-भिन्न ही 'लोगस्स' होता है। जिस विजय मे जिस तीर्थंकर के नाम का शासन जब तक चलता है तब तक उन एक के नाम का ही लोगस्स, उस विजय मे रहता है। नवीन शासन होने पर नया लोगस्स, उन शासन वालो के नाम का हो जाता है। महाविदेह की प्रत्येक विजय मे शासन बदलने से लोगस्स भी बदल जाता है।

यहा अभी जो 'लोगस्स' बोला जाता है, वह भगवान् महावीर के शासन स्थापित होते ही जो बना था, वह बोला जाता है। महावीरस्वामी से पहिले जिस समय तक जितने-जितने तीर्थंकर हुए थे, उतने उतने तीर्थंकरो के नामो का 'लोगस्स' बोला जाता था। जैसे—वासुपूज्य तीर्थंकर के शासन

मे १२ तीर्थंकर का और शान्तिनाथ के समय सोलह तीर्थंकर का, इत्यादि रूप से समझ लेना ।

८८४ प्रश्न–मनुष्य को छोड कर तीन गति किस मे पाई जाती है ?

उत्तर–एकात छद्मस्थ गति मे मनुष्य के सिवाय तीन गति पाई जाती है । एकात चारित्र के अलब्धिक तथा मन·पर्यवज्ञान और एकात केवल के अलब्धिक मे भी उपरोक्त ३ गति ही होती है, इत्यादि ।

८८५ प्रश्न–पूज्य श्री अमोलकऋषिजी महाराज द्वारा सपादित व्यवहार सूत्र मे उ ३ पृ ५५ सूत्र १२ मे लिखा है कि–(अ) साध्वी को आचार्यिका, उपाध्यायिका और प्रवर्तिनी बिना नही रहना ।

(ब) उ ७ पृ ११५ सूत्र १९ मे साध्वी को आचार्य, उपाध्याय पद पर स्थापित करने का उल्लेख है ।

यदि यह बात ठीक है, तो साध्वी भी आचार्य, उपाध्याय बन सकती है, फिर परम्परा मे किसी साध्वी को आचार्यादि पद क्यो नही दिया ? अर्थ मे तो भूल नही है ?

उत्तर–व्यवहार सूत्र के ५ वे उ आदि मे साध्वी के प्रवर्तिनी और गणावच्छेदकनी, ऐसी दो पदवियाँ ही बताई है । परन्तु इसी सूत्र के उ. ३, ४ और बृहत्कल्प के चौथे उ आदि में साधु के आचार्यादि सभी पदवियाँ बताई है ।

ऋषिजी महाराज ने जो अर्थ उ ३ पृ ५५ और उ. ७ पृ ११५ पर किया है, वह ठीक नही है । इस पाठ का भावांश

निम्न प्रकार ध्यान मे आया है-

उ. ३ का-नव दीक्षिता, बाल और तरुणावस्था वाली साध्वियों के समूह को आचार्य, उपाध्याय और प्रवर्तिनी बिना नही रहना, परन्तु इन तीनो मे से यदि कोई काल कर जावे तो आचार्य या उपाध्याय के स्थान पर किसी योग्य साधु को आचार्य या उपाध्याय पद और प्रवर्तिनी के स्थान पर किसी योग्य साध्वी को प्रवर्तिनी बना लेनी चाहिए। परन्तु साध्वी को आचार्य, उपाध्याय पद ग्रहण सम्बन्धी वर्णन नही है।

उ. ७ का-३० वर्ष की दीक्षित साध्वी को भी ३ वर्ष के दीक्षित साधु को उपाध्याय पद और ६० वर्ष की दीक्षित साध्वी को भी ५ वर्ष के दीक्षित साधु को आचार्य पद देना कल्पता है। परन्तु साध्वी आचार्य, उपाध्याय पद ग्रहण नहीं कर सकती। अर्थात् साध्वी के लिये ये पद निषिद्ध है। भाष्य-कार ने भी निषेध किया है।

८८६ प्रश्न-नपुंसक-वेद की आगत सभी देवलोक मे मानी गई है। अनुत्तर विमान में से आकर भी नपुमकवेदी हो सकता है। यह कैसे ? वहा तो सभी सम्यग्दृष्टि हैं और सम्यग्-दृष्टि नपुमकवेद नहीं बाध सकते। फिर आगत का प्रश्न कैसे बध बैठ सकता है ?

उत्तर-अनुत्तर विमान मे नपुमक वेद नही बाधते, परन्तु वहा के आये हुए नपुंमकवेद हो सकते हैं। जैसे-भगवान् मल्ली-नाथ ने पिछले (महाबल के) भव मे स्त्री-वेद बांधा, परन्तु अनुत्तर विमान में नही बांधा। इसी प्रकार पहले नपुमकवेद

जिन जीवो से वधा हुआ हो, वे जीव अनुत्तर विमान के आये हुए नपुमक हो सकते हैं। वहा नही बाधते।

८८७ प्रश्न—सूयगडाग मे "साधुओ को किसी गृहस्थ को आशीर्वाद देने की मना की है"। वह किस स्थान पर है?

उत्तर—सूयगडाग के १४ वे अध्ययन की १९ वी गाथा मे आशीर्वाद देने की मना की है।

८८८ प्रश्न—महावल मुनिराज के मायाचार से स्त्री-वेद तथा स्त्री (अंगोपाग) नामकर्म का वध हुआ, तो क्या इनका उदय अनुत्तर विमान के देव होने के बाद, देवपने मे रहते हुए भी उदय मे आगया? क्योकि अबाधाकाल पूर्ण होते ही कर्म उदय मे आ जाते हैं। तब प्रश्न होता है कि वहा पुरुष देव-वेद और स्त्री देव वेद, यो दोनो वेदो का उदय साथ ही हुआ था? वहा पुरुष-वेद तो है ही और अबाधाकाल पूर्ण होने पर स्त्री-वेद भी उदय मे आ जाता है। तो क्या एक समय मे परस्पर विरोधी दोनो वेद भी उदय हो जाते हैं? भले ही मुख्य और गोण रूप मे ही हो। और स्त्री के अंगोपाग नामकर्म का उदय भी वहा अबाधा पूर्ण होते ही होगया था? यह कैसे सम्भव हो सकता है? नामकर्म का वध भी तो महाबलपने ही हुआ होगा? अनुत्तर विमान मे तो वैसे परिणाम भी नही होते होगे? क्योकि वहा तो परिणाम क्लिष्ट नही होते होगे?

उत्तर—स्त्री नामकर्म और गोत्र का बंध अनुत्तर विमान मे तो होता ही नही। "**ततेण से महब्बले अणगारे इमेणं कारणेणं इत्थिनाम गोयं कम्मं निव्वते सु**" यह पाठ ज्ञाता

के ८ वे अध्ययन मे आया है। इस पाठ से स्त्री-नाम-गोत्र वहां बाधा, यह स्पष्ट है। अबाधाकाल पूर्ण होने के बाद रसोदय तो हो या नही भी हो, परन्तु प्रदेशोदय तो होता है। अत स्त्री-नाम गोत्र कर्म का प्रदेशोदय अनुत्तर-विमान के देवो मे होने मे कोई बाधा नही। स्त्री-वेदादि का विपाको (रसो) दय वहा नही हो सकता।

बिना फल दिये ही स्थिति पूर्ण होकर कर्म-पुद्गलो के झडने को प्रदेशोदय कहते है। वहा (अनुत्तर-विमान मे) स्त्री-वेद का प्रदेशोदय ही होता है, रसोदय न होने से वहा वे स्त्री-वेद का अनुभव नही कर सकते। अत अनुभव तो उनके एक पुरुष-वेद का ही होता है। "**उदओ विवाग-वेअण**" इस कर्मग्रथ के वाक्य से भी विपाक काल मे कर्म-रस भोगने को ही खास उदय माना है, केवल प्रदेशोदय को नही। अत एक समय मे दो वेदो का रसोदय कही भी नही होता। इसलिये उनके भी अनुत्तर-विमान मे एक पुरुष-वेद का ही रसोदय हुआ था, दो का नही।

८८९ प्रश्न–प्रत्येक जीव के तीनो वेदो की प्रकृति उदय रूप मे प्रति समय रहती है ? ८ वे गुणस्थान तक तीनो वेद उदय रूप मे थे, जो नौवे मे क्रमश क्षय हुए (क्षपक-श्रेणी वाले के) तो ये रसोदय के रूप मे थे ? व्यक्त या अव्यक्त रूप मे भी।

उत्तर–प्रत्येक जीव के विपाको (रसो) दय तो एक ही वेद का होता है, अधिक का नही। प्रदेशोदय १, २ या ३

का भी हो सकता है। अत एक वेद का तो रसोदय रूप, शेष दो वेदो का प्रदेशोदय रूप, क्षपक-श्रेणी वाले क्रमश क्षय करके सत्ता-विच्छेद करते हैं।

८९० प्रश्न—जड (अजीव) मे एक पारिणामिक भाव ही होता है या उदय भाव भी होता है ?

उत्तर—जड (अजीव) मे एक पारिणामिक भाव ही होता है, उदय भाव नही होता।

८९१ प्रश्न—किसी भी साधु को केवलज्ञान होने के बाद निद्रा आती है या नही ? चाहे तीर्थंकर हो या अन्य।

उत्तर—निद्रा, दर्शनावरणीय कर्म की प्रकृति है। दर्शनावरणीय कर्म संपूर्ण नष्ट होने पर ही केवलज्ञान होता है। अतः निद्रा का कर्म न होने से किसी भी केवली को निद्रा नही आती।

८९२ प्रश्न—सूर्य-ग्रहण का जैन ग्रथो मे क्या महत्व है ? जैनी, ग्रहण मे अन्न जल सेवन कर सकता है या नही ? सूत्र पाठ कर सकते हैं या नही ? क्या यह सत्य है कि जिस-जिस राशि पर ग्रहण का भार रहता है, उसे कष्टो का मुकाबला करना पडता है ? ग्रहण सूर्य को राहु के ग्रसने से होता है या वैज्ञानिको के कथनानुसार पृथ्वी या पहाडो की परछाई के कारण ?

उत्तर—चद्र और सूर्य के विमानो के नीचे पर्व राहु का विमान आने से नीचे वालो को उस विमान का जितना भाग दिखना बंध हो जाता है तथा काला, पीला, लाल आदि रग

वाला दिखाई देता है, उसे 'ग्रहण' कहते हैं। राहु के विमान के कारण ग्रहण होने का वर्णन भगवती आदि सूत्र मे बताया है तथा संग्रहणी सूत्र की ६० वी गाथा मे, कभी केतु के विमान से भी ग्रहण होना बताया है, परन्तु पृथ्वी, पहाडो की परछाई से ग्रहण होना जैन-सिद्धांत नही बताता।

कर्मों के कारण महाग्रहादि की चाल के निमित्त से जीव को सुख-दुःख का होना जीवाभिगम सूत्र के इस पाठ "**रयणि-यरदिणयराणं नक्खत्ताणं महग्गहाणं। चारविसेसेण भवे सुहदुक्खविहि मणुस्साणं**" से स्पष्ट होता है।

ग्रहण के समय सूत्र पाठ की स्वाध्याय करना मना है। उस समय पंच-परमेष्ठि का स्मरण व ध्यान करना विशेष हित-कर है, परन्तु उस समय भोजन करने की मनाई नही बताई है।

८९३ प्रश्न—श्री भगवती श ७ उ २ मे तिर्यञ्च पंचे-न्द्रिय को भी मनुष्य की तरह "सर्व उत्तर गुण प्रत्याख्यानी" लिखा, सो यह कैसे है ? क्या वे उत्तर गुणो मे सर्वत्यागी हो सकते हैं ? फिर उन्हे छठे गुणस्थान मे क्यो नहीं मानना ? ज्ञाता सूत्र के नन्द मणियार के मेढक भव के अंत मे उसने मूलगुण के भी सर्वथा प्रत्याख्यान किये हैं, यह किस प्रकार ?

उत्तर—"अणागय-मइक्कतं" आदि १० भेद जो सर्वोत्तर गुण प्रत्याख्यान के हैं, वे केवल साधु में ही होते हों, ऐसी बात नही। उन दस बोलो के पाठ व अर्थ से स्पष्ट होता है, कि वे साधु और श्रावक दोनों मे पाये जाते हैं। सर्वोत्तर गुण प्रत्याख्यान के १० ही भेद तिर्यंच पंचेन्द्रिय में भी पाये जाते हैं,

अत· सर्वोत्तर गुण प्रत्याख्यानी तिर्यच मे भी मिलते है।

दर्दुर के भव मे सर्व प्राणातिपातादि की निवृत्ति करते हुए भी उनमे देशवृत्ति ही होती है। ऐसा खुलासा वही पर, टीका मे कर दिया है।

श्रावको के लिये भी सथारे की विधि शास्त्र मे इसी प्रकार होने से, वे उसी प्रकार अपनाते हैं। परन्तु तीसरे चौक का क्षयोपशम और चारित्र भाव का अभाव होने से वे सयति नही गिने जाते।

८९४ प्रश्न–"जय जय नन्दा" और "जय जय भद्दा" का क्या अर्थ है ?

उत्तर–जय जय नन्दा का अर्थ–हे आनन्द देने वाले जय हो, जय हो, अर्थात् हे आनन्ददाता ! आपकी जय हो, जय हो। इसी प्रकार जय जय भद्दा–हे कल्याणकारक ! आप की जय हो, जय हो।

८९५ प्रश्न–क्या साधु को विधिपूर्वक नदी उतरने मे भी प्रायश्चित्त आता है ? यदि आता है तो क्यो ? जब शास्त्रकार ने ही नदी उतरने की विधि बताई है, तो फिर प्रायश्चित्त किस बात का ?

उत्तर–यदि साधु विधिपूर्वक नदी उतरता है, तो उसे आज्ञा भग का प्रायश्चित्त तो नही है, परन्तु जीव-विराधना के कारण वह प्रायश्चित्त का भागी बनता है। जैसे आज्ञा एवं विधिपूर्वक भिक्षा, विहार आदि के लिये गमनागमन करते हुए भी साधु प्रायश्चित्त का भागी बनता है। अत उसकी शुद्धि के

लिये प्रायश्चित्त स्वरूप इरियापथिक प्रतिक्रमण करना आगम मे बताया है तथा व्यवहार सूत्र के प्रथम उ. के भाष्य मे भी "आलोयणारिहे" का स्वरूप इसी प्रकार बताया है। "**गमनागमनादिष्ववश्यकर्त्तव्येषु सम्यगुपयुक्तस्या ऽष्ट-भावतया निरतिचारस्य छद्मस्थस्या प्रमत्तस्ययते रालोचना भवतिति........**" अर्थात् गमनागमनादि आवश्यक कर्त्तव्य, छद्मस्थ साधु उपयोगपूर्वक अप्रमत्त भाव से निरतिचार पूर्ण करते हुए को आलोचना प्रायश्चित्त बताया है और उच्च सयमी गोतमादि अणगारो ने भी इसी प्रकार किया है। विधिपूर्वक गमनागमन मे भी विराधना की आशका के कारण प्रायश्चित्त बतलाया है, तो फिर नदी उतरने मे तो प्रत्यक्ष विराधना दिखाई देती है। अत. इसका प्रायश्चित्त क्यो नही ? अर्थात् अवश्य है।

तथा महिने मे ३ और वर्ष मे १० उदक-लेप लगाने से शबल (बडा) दोष की प्राप्ति बताई है, तो फिर एक या दो मे बिल्कुल निर्दोषता कैसे मानी जाय ? अर्थात् छोटा दोष तो इसमे भी लगना साबित होता है।

८९६ प्रश्न–एकेंद्रिय आदि जीवो की विराधना होते हुए भी नदी उतरने का विधान शास्त्र मे क्यो आया ?

उत्तर–मुनि नदी उतरे यह अपवाद मार्ग है। सयम संबधी शिथिलता का निरोध, वैयावृत्य का प्रसग और सयम-व्याघातक उपद्रव आदि ऐसे खास कारण उपस्थित होने पर ही नदी उतरना बताया है, उपदेश हेतु (धर्म प्रचारार्थ) नही।

अतः सर्वोत्तर गुण प्रत्याख्यानी तिर्यंच मे भी मिलते हैं।

दर्दुर के भव मे सर्व प्राणातिपातादि की निवृत्ति करते हुए भी उनमे देशवृत्ति ही होती है। ऐसा खुलासा वही पर, टीका मे कर दिया है।

श्रावको के लिये भी सथारे की विधि शास्त्र मे इस प्रकार होने से, वे उसी प्रकार अपनाते हैं। परन्तु तीसरे चौक क्षयोपशम और चारित्र भाव का अभाव होने से वे सयति न गिने जाते।

८६४ प्रश्न–"जय जय नन्दा" और "जय जय भद्द का क्या अर्थ है?

उत्तर–जय जय नन्दा का अर्थ–हे आनन्द देने जय हो, जय हो, अर्थात् हे आनन्ददाता! आपकी जय हो, हो। इसी प्रकार जय जय भद्दा–हे कल्याणकारक! की जय हो, जय हो।

८६५ प्रश्न–क्या साधु को विधिपूर्वक नदी उतरने भी प्रायश्चित्त आता है? यदि आता है तो क्यो? जब शास्त्र कार ने ही नदी उतरने की विधि बताई है, तो फिर प्रायश्चि किस बात का?

उत्तर–यदि साधु विधिपूर्वक नदी उतरता है, तो उसे आज्ञा भग का प्रायश्चित्त तो नही है, परन्तु जीव-विराधना के कारण वह प्रायश्चित्त का भागी बनता है। जैसे आज्ञा एव विधिपूर्वक भिक्षा, विहार आदि के लिये गमनागमन करते हुए भी साधु प्रायश्चित्त का भागी बनता है। अत उसकी शुद्धि के

लिये प्रायश्चित्त स्वरूप इरियावथिक प्रतिक्रमण करना आगम मे बताया है तथा व्यवहार सूत्र के प्रथम उ. के भाष्य मे भी "आलोयणारिहे" का स्वरूप इसी प्रकार बताया है। "गमनागमनादिष्ववश्यकर्त्तव्येषु सम्यगुपयुक्तस्या ऽदुष्ट-भावतया निरतिचारस्य छद्मस्थस्या प्रमत्तस्ययते रालोचना भवतिति........" अर्थात् गमनागमनादि आवश्यक कर्त्तव्य, छद्मस्थ साधु उपयोगपूर्वक अप्रमत्त भाव से निरतिचार पूर्ण करते हुए को आलोचना प्रायश्चित्त बताया है और उच्च सयमी गौतमादि अणगारो ने भी इसी प्रकार किया है। विधिपूर्वक गमनागमन मे भी विराधना की आशका के कारण प्रायश्चित्त बतलाया है, तो फिर नदी उतरने मे तो प्रत्यक्ष विराधना दिखाई देती है। अत. इसका प्रायश्चित्त क्यो नही ? अर्थात् अवश्य है।

तथा महिने मे ३ और वर्ष मे १० उदक-लेप लगाने से शबल (बडा) दोष की प्राप्ति बताई है, तो फिर एक या दो मे बिल्कुल निर्दोषता कैसे मानी जाय ? अर्थात् छोटा दोष तो इसमे भी लगना साबित होता है।

८९६ प्रश्न–एकेंद्रिय आदि जीवो की विराधना होते हुए भी नदी उतरने का विधान शास्त्र मे क्यो आया ?

उत्तर–मुनि नदी उतरे यह अपवाद मार्ग है। संयम संबधी शिथिलता का निरोध, वैयावृत्य का प्रसग और सयम-व्याघातक उपद्रव आदि ऐसे खास कारण उपस्थित होने पर ही नदी उतरना बताया है, उपदेश हेतु (धर्म प्रचारार्थ) नही।

क्योकि उपदेश, यह तो परोपकार के लिए है । इसमे अपवाद का आश्रय नही लिया जाता । और स्थानाग के ५ वे स्थाने मे महानदी उतरने के कारण बताये हैं, उनमे भी यह कारण नही है, अत उपदेशार्थ नदी नही उतरना चाहिए ।

८९७ प्रश्न—अतकृतदशा, अनुत्तरोपपातिकदशा और प्रश्नव्याकरण सूत्र के अध्ययनो के नाम और जो स्थानाग के १० वे स्थान मे बताये गये इन्ही सूत्रो के अध्ययनो के नाम, परस्पर पूर्णरूप से मिलते नही है, सो क्या कारण है ?

उत्तर—भगवान् महावीर के गणधरो की ९ वाचनाएँ हुई है । स्थानाग कथित नाम अन्य वाचनाओ के हैं, ऐसा टीकाकार का कथन है ।

८९८ प्रश्न—नवनिधि, एकेन्द्रिय व पचेन्द्रिय रत्न शाश्वत हैं या नही ?

उत्तर—जबूद्वीप प्रज्ञप्ति के अत मे जबूद्वीप मे ३०६ निधि तो सदा मिलती है, ऐसा बताया है, अत शाश्वत है । एकेन्द्रिय और पचेन्द्रिय रत्न की उत्कृष्ट सख्या २१० की बताई है । जो कि सात-सात के हिसाब से ३० चक्रवर्ती के २१० ही होते हैं, अत अशाश्वत है । यदि शाश्वत होते तो भी ३४ विजय के हिसाब से २३८ मिलते । तथा चक्रवर्ती के समय रत्नो का उत्पन्न होना जबूद्वीपप्रज्ञप्ति मे अन्य स्थान बताया है ।

८९९ प्रश्न—बीज मे से जब अकुर उत्पन्न होता है, तब वह बीज का जीव ही अकुर रूप मे परिणत होता है या मृत्यु पाकर वही जीव या अन्य नया जीव उसमे उत्पन्न होता है ?

उत्तर–वोये हुए बीज का जीव, मृत्यु पाये विना अकुर रूप परिणत नही होता। मरने के बाद वही तथा अन्य जीव अकुर मे उत्पन्न होता है। पूर्व शरीर त्याग किये विना उसकी अवगाहना नही बढ सकती। तथा सूत्रकृताग के १९ वे अध्ययन के प्रारम्भ मे वनस्पतिपने कोई एक (बीज वाला ही मर के या अन्य) जीव उत्पन्न होकर आहार लेना आदि बताया है। अत वह बीज का जीव उसी भव मे अंकुर रूप उत्पन्न नही होता।

९०० प्रश्न–कइयो का ऐसा मत है कि एक मुनि को एक ही पात्र रखने का शास्त्र मे विधान है। मात्रक रूप पात्र भी आचार्य ने पीछे से रखने का स्थापित किया, सो कैसे ?

उत्तर–यह एक पात्र रखने का विधान एकान्त सभी मुनियो के लिये नही है। शास्त्रो में जहा कही एक पात्र रखने का विधान है, वह जिनकल्पी, प्रतिमाधारी आदि विशिष्ट अभिग्रहधारियो के लिये है, स्थविर-कल्पियो के लिये नही। जैसे–आचाराग के १५ वे अध्ययन मे जो एक पात्र बताया है, उसका खुलासा टीकाकार ने जिनकल्पी के लिये किया है और मूल मे जो "तरुणे जुगव बलवं अप्पायके थिरसंघयणे" आदि विशेषणो मे भी सिद्ध है कि इन विशेषणो युक्त मुनि के अलावा अन्य मुनि ज्यादा रख सकते हैं तथा उपरोक्त 'जुगव' शब्द का अर्थ तीसरे चौथे आरे का जन्मा हुआ होता है। वस्त्र एषणा १४ वें अध्ययन मे भी उपरोक्त विशेषण वाले मुनि को एक ही वस्त्र रखना बताया है और अन्यत्र तीन वस्त्र रखने भी

बताये है। आठवे अध्ययन के चोथे, पाचवे और छट्ठे उ मे एक पात्र बताया, वह भी जिनकल्पी आदि के लिये ही टीकाकार ने कहा है।

स्थानाग (स्थान ३ उ ३ सू. १८२) भगवती (२५-७) और उववाई मे उपकरण अवमोदरी के तीन भेद मे "एगेवत्थे एगेपाए चियत्तोवगरणसाइज्जणया" पाठ आया है। अगर सभी मुनियो के एक ही पात्र का निर्देष होता, तो एक पात्र अवमोदरी मे क्यो आता ? जैसे तीन अखण्ड वस्त्र का कल्प है, तभी एक वस्त्र को अवमोदरी मे लिया है।

श. २ उ ५ मे इन्द्रभूतिजी म ने भिक्षार्थ जाने के लिये "........पडिलेहित्ता भायणाइ वत्थाइं पडिलेहेइ, पडिहित्ता, भायणाइ पमज्जई, पमज्जित्ता भायणाइं उग्गहेइ" (मूलच्छाया-प्रतिलिख्य भाजनानि, वस्त्राणि प्रतिलेखयति, प्रतिलिख्य भाजनानि प्रमार्जयति, प्रमार्ज्य भाजनानि उद्गृण्हाति) इस मूल और छाया दोनो मे ही पात्रो के लिये बहुवचन शब्द होने से तीन पात्र साबित होते हैं और इसी पाठ के टब्बार्थ मे "तीन पात्र खोल भी दिये हैं तथा आगे "भत्तपाणं पडिदसेइ" पाठ है अर्थात् भगवान् को भात और पानी साथ ही दिखाया। इससे भी एक से अधिक पात्र सिद्ध होते हैं, तथा इन्ही के लिये इसी पाठ को भलामण भ श ११ उ. ६, विपाक अध्ययन २, उपाशकदशाअध्ययन १, अतगड के एवताजी के अध्ययन आदि मे

दी गई है और श. १५ मे आनन्दजी, अनगड मे अर्जुनमालीजी, अनुत्तरोववाई मे धन्नाजी आदि महामुनियो के लिये भी इसी पाठ की भलामण आई है।

इत्यादि प्रमाणो को देखते हुए शास्त्रो मे जो अनेक स्थानो पर 'पडिग्गह पत्त' शब्द आये हैं, वे जातिवाचक प्रतीत होते हैं।

दशवैकालिक अध्ययन ४ त्रसकाय की यतना में 'पडिग्गहंसि वा... उंडगंसि वा' ऐसा भिन्न पाठ होने से पात्र के अतिरिक्त 'मात्रक' रखना आचार्य ने पीछे से बताया—यह कथन भी कैसे सगत हो सकता है ?+ तथा "राजेन्द्र कोष" भाग ५ पृ. ४११ मे तो मात्रक मे आहार ग्रहण करना भी बताया है।

९०१ प्रश्न—देव और नारक की १० हजार वर्ष से लेकर ३३ सागर तक की स्थिति है। उनमे जघन्य और उत्कृष्ट के बीच, समय वृद्धि से जितने स्थिति-स्थान हैं, वे सभी स्थान उन जीवो में मिल सकते हैं या नही ?

उत्तर—जघन्य से उत्कृष्ट तक सभी स्थिति-स्थानो के देव मिल सकते हैं। श ११ उ. १२ मे इसका वर्णन है और नारक के स्थिति-स्थानो मे एक समयाधिक निव्वे हजार वर्ष से एक समय कम दस लाख तक के स्थिति-स्थान शून्य हैं, बाकी सब मिल सकते हैं। यह बात भगवती सूत्र श. १ उ. ५ और जीवाभिगम की ३ प्रतिपत्ति की टीका मे प्रथम प्रस्तर की

+ निशीथ उ १३ भाष्य गा. ४५३६ में और उसकी चूर्णि में यह मान्यता असत्य बताई है—डोशी।

उत्कृष्ट ९ हजार वर्ष की और दूसरे की जघन्य १० लाख वर्ष की स्थिति बताई है। अत इनके बीच के स्थान शून्य है।

९०२ प्रश्न—तीर्थंकर आदि को दान देते समय जो स्वर्ण (सोनैयो) की वृष्टि होती है, उनकी सख्या कितनी समझना ?

उत्तर—समवायाग मे तीर्थंकरो के प्रथम भिक्षा के प्रसग पर "**सरीरमेतिओवुट्ठाओ**" अर्थात् पुरुष प्रमाण वृष्टि होना और टब्बार्थ मे १२½ कराड सोनैये बताये है तथा 'सत्तरिसयठाणा' नामक ग्रथ मे द्वार ८० गाथा १६९ मे जघन्य १२½ लाख और उत्कृष्ट १२½ करोड स्वर्ण की वृष्टि, दान के प्रसग पर होनी बताई है।

९०३ प्रश्न—कौन-कौन वासुदेव किस-किस पृथ्वी मे गये ?

उत्तर—अनुक्रम से पहले—सातवी मे, पाच छठी मे, पाचवी, चौथी और तीसरी पृथ्वी मे क्रमश एक-एक समझना—ऐसा समयाग के अतिम अधिकार मे है।

९०४ प्रश्न—चक्रवर्ती खण्ड साधन करने को जाते हैं, तब उनकी सेना एक दिन मे किस योजन से कितनी चलती है ?

उत्तर—भरत (उत्कृष्ट अवगाहना वाले) चक्रवर्ती की सेना, प्रमाण अगुल से एक योजन का क्षेत्र अपनी शक्ति से पार कर विश्राम लेती है और अन्य चक्रवर्तियो की सेना उसी एक योजन के क्षेत्र को देव शक्ति से पार करती है। "अन्येषातु दिव्यशक्त्या इतिवृद्धाः" इस टीका से ऐसा प्रतीत होता है।

९०५ प्रश्न—प्रत्येक चक्रवर्ती के अग-रक्षक देव कितने-कितने होते हैं ?

उत्तर—"जक्ख सहस्स सपरिवुडे" इस जबूद्वीप पन्नति के मूल की "यक्षाणां-देव विशेषाणां सहस्राभ्यां सपरिवृत्तः, चक्रवर्ती शरीरस्य व्यन्तरदेव सहस्रद्वया-धिष्ठितत्वात्" टीका यह है। उपरोक्त टीका व मूल से चक्रवर्ती के अग-रक्षक दो हजार देव प्रमाणित है।

९०६ प्रश्न—चक्रवर्ती जो खण्ड साधनार्थ पोषध युक्त तेले करते हैं, वे तेले, श्रावक के ग्यारहवे व्रत रूप है या नही ?

उत्तर—चक्रवर्ती आदि सासारिक कार्यों के लिये जो पोषध युक्त तेले करते हैं, वे श्रावक के एकादश व्रत रूप नही है। यह जबूद्वीपप्रज्ञप्ति की—"पोषधनामेहाभिमतदेवतासाधनार्थक-व्रतविशेषोऽभिग्रह इति यावत् नत्वेकादशव्रतरूपस्तद्व्रतः सासारिककार्यचिन्तनानौचित्यात्" टीका से स्पष्ट है।

९०७ प्रश्न—आगम मे आक्रोश वचन बोलते हुए "होण-पुणचाउद्दसे" जो पाठ है, उसका क्या अर्थ है ?

उत्तर—इसका अर्थ जबूद्वीपप्रज्ञप्ति की टीका से निम्न प्रकार प्रकट होता है। पूर्ण चतुर्दशा का जन्मा हुआ अत्यन्त भाग्य-शाली होता है, अर्थात् जन्म आश्री चतुर्दशी पवित्र मानी है। पवित्र होते हुए भी आक्रोश वश पुण्य चतुर्दशी (पवित्र चतुर्दशी) को, हीन (अपवित्र) कहा अर्थात् पुण्य चतुर्दशी (पवित्र चतु-

दंशी) हीन-अपूर्ण अर्थात् अन्य तिथी से मिली हुई पूर्ण नही-ऐसा समझना।

९०८ प्रश्न-खण्ड-साधनार्थ जो चक्रवर्ती तेले करते हैं, वे सभी चक्रवर्ती करते है या कोई-कोई ?

उत्तर-तीर्थंकर-चक्रवर्ती को खण्ड-साधने के लिये तेले नही करने पडते, यह बात जबूद्वीपप्रज्ञप्ति की इस "**परम जागरूकपुण्यप्रकृतिकाः सकल्पमात्रेण सिसाधयिषित-सुरसाधनसिद्धिनिश्चय जानाना जिनचक्रीणोऽतिसातोद-यिनः कष्टानुष्ठानऽष्टमाऽऽदौनोपतिष्ठन्ते किन्तु मागध-तीर्थाधिपाऽऽदिःसुरः प्रभूणा हृदिचिन्तितः सन् गृहित-प्राभृतकः सहसैव सेवार्थमभ्युपैति**"-टीका से स्पष्ट होती है। (अर्थात् अत्यन्त अतिशय पुण्य-प्रकृति का उदय होने से सकल्प (विचार) मात्र से ही देव, हर-एक कार्य की सिद्धि करते हैं। तथा परम सातावेदनीय का विपाक होने से कष्ट रूप अष्टम आदि तप नही करते, यह तीर्थंकर चक्रवर्तियो की विशेषता है और अन्य चक्रवर्तियो को तो मागध * तीर्थादि नियमित स्थानो पर अष्टम करने ही पडते है।

९०९ प्रश्न-रोगादि रूप विशेष कारण दशा मे भी आधाकर्मादि दोष युक्त आहारादि का सेवन करना शास्त्र सम्मत है या नही ?

उत्तर-आधाकर्मादि दोष युक्त आहारादि वस्तु का

* मागध-तीर्थकुमारादि देव नागकुमार जाति के है।

आगम में सर्वत्र निषेध है और कारण अवस्था मे भी लेने की आज्ञा नही है। प्रासंगिक शास्त्रीय विषय का संक्षिप्त निम्न वर्णन यही सिद्ध करता है–

आचारांगजी के द्वितीय श्रुतस्कन्ध में यह वर्णन है कि–साधु-साध्वी के लिये बनाया हुआ, खरीदा हुआ आदि दोष युक्त अशनादि ४ और वस्त्र-पात्रादि साधारणतया तथा "पुरिसत्तर-कडं" (दूसरो के सुपुर्द किया हुआ) आदि किसी भी प्रकार का लेना पूर्ण निषिद्ध है।

सूत्रकृतांग सूत्र के अध्ययन ६ गाथा १४ तथा अ ११ गाथा १३, १४, १५ मे भी पूर्ण निषेध किया गया है।

तथा १७ वे १८ वे अध्ययन मे–विशदरूप मे सदोष आहार का खण्डन किया गया है। इसी सूत्र मे उल्लेख करते हुए अध्ययन १ उ ३ गाथा १ के वर्णन से यह सिद्ध है कि–पूतिकर्म को सेवन करने वाला दो पक्षो (गृहस्थ और साधु) का सेवन करता है। तात्पर्य यह है कि वह साधु गृहस्थ तुल्य है। इसी सूत्र के १० वे अध्ययन की ११ वी गाथा मे आधा-कर्मी की कामना (इच्छा) करने का भी निषेध है, तो फिर उसके ग्रहण करने की बात ही कहा रही ?

भगवती श १ उ ६ मे आधाकर्मी भोगने वाले, कर्मो को निबिड करता है और अनादि-अनन्त ससार मे बारम्बार भ्रमण करता है, क्योंकि वह आत्म-धर्म (चारित्र अथवा श्रुत-धर्म) का उल्लघन करता है और उसका उल्लघन करता हुआ

पृथिव्यादि काय का निरनुकपक बनता है। उसी प्रकार श १८ उ १० आदि स्थानो पर भी अनेषणिक आहार को अभक्ष्य कहा है। एव प्रश्नव्याकरण, उत्तराध्ययन, दशवैकालिक आदि सूत्रो मे अनेक स्थानो पर आधाकर्मी आदि दोष युक्त आहारादि के ग्रहण आदि का निषेध किया और कटुफल बताया है। परन्तु सामान्य या विशेष, किसी भी कारण से ग्रहण करने का उल्लेख नही किया गया। इससे स्पष्ट है कि यह (आधाकर्मादि का ग्रहण) शास्त्र सम्मत नही है।

तथापि जो इसको ग्रहण करता है, वह दोष और प्रायश्चित्त का भागी माना गया है। समवायाग और दशाश्रुत-स्कन्ध मे असमाधी और सबल दोष तथा निशीथ मे प्रायश्चित्त वर्णन दृष्टव्य है।

शका-उपरोक्त अनेक स्थानो पर आधाकर्मादि का एकान्त निषेध, कटुफल, प्रायश्चित्त आदि बताया है, वह तो साधा-रणतया उत्सर्ग मार्ग की दृष्टि से प्ररूपित है, परन्तु भगवती श. ८ उ ६ मे अप्रासुक, अनेषणिक आहारादि देने वाले श्रमणोपासक को बहुतर निर्जरा और अल्पतर पाप, मूल पाठ मे बताया है। इसकी टीका मे भी निर्वाह न होने आदि कारणो से अप्रासुकादि देने मे बहुत निर्जरा बताई है और कारण दशा मे दाता व ग्राहक दोनो के लिये हितकर है-ऐसा कहा है।

आधाकर्मी के विषय मे सूत्रकृताग के २१ वे अध्य-यन की ८ वी ९ वी गाथा में सूत्रकार यह प्ररूपित करते है कि-आधाकर्म भोगने वाले के एकान्त रूपेण कर्मबन्ध होता

है या नही होता–ऐसा नही कहना चाहिए । टीकाकार भी इसी का प्रतिपादन करते हुए कहते है कि जो शास्त्रोक्त रीति से आधाकर्म का उपभोग करता है, उसके कर्मबन्ध नही होता । जो इसका उल्लघन करते हुए आधाकर्मादि का उपभोग करता है, वह कर्मबंध का भागी होता है । किन्तु क्षुधा-पीडित साधु द्वारा उस दशा मे उसका उपभोग करना शास्त्र-विरुद्ध नहीं है । इसी प्रकार सभी अनाचारो के विषय मे भी समझना चाहिए ।

समाधान–शंका उठाते हुए उपरोक्त प्रमाण देकर जो आधाकर्मादि दोष युक्त आहारादि के कारण दशा मे ग्रहण करने की स्थापना की है, वह युक्ति युक्त नही है । क्योकि आगम मे ऐसे प्रसगो पर भी अनेक जगह उपरोक्त आहारादि का निषेध पाया जाता है । जैसे–

दशवैकालिक अध्ययन ६ गाथा ६ मे सबालवृद्ध, सरोगी, निरोगी आदि सभी को महाव्रत, पिण्डविशुद्धयादि १८ बोल अखड पालन करना बताया है । यहा रोगी के लिये भी स्पष्ट रूपेण निषेध है ।

आचाराग अध्ययन ८ उ २ मे आधाकर्मादि अशुद्ध आहारादि साधु के न लेने से गृहस्थ कुपित होकर उसको मारे अथवा दूसरो को कहे कि–इसको मारो, पीटो, छेदो, जलावो, लूटो, खोसो, जीव रहित करो इत्यादि संकट उसके द्वारा प्राप्त होने पर भी वह उस सकट को सहन करे । तथा क्षुधा, तृषा से पीडित होने पर भी वैसा आहारादि न लेवे । ऐसे दुःसह्य

आपत्ति के समय मे भी शास्त्रकार ने किसी तरह का अपवाद नही रखा है, तो फिर क्षुधा पीडितादि दशा मे आधाकर्मादि का ग्रहण कैसे मान्य हो सकता है ?

बृहत्कल्प के चोथे उ. मे अचित्त अनेषणिक आहार-पानी आने पर, जिसे छेदापस्थापनीय चारित्र देना है, ऐसा नव दीक्षित साधु हो, तो उसको वह आहार देना और न हो तो परठ देना, परन्तु रोगी और क्षुधादि से पीडित को वह आहार देने का अपवाद नही रखा। तो फिर इच्छापूर्वक दोष युक्त आहारादि ग्रहण करने की बात कैसे मानी जा सकती है ?

भगवती श २५ उ ७ मे प्रतिसेवना के (दोष लगाने के) दस प्रकार बताये है, उनमे से चोथा भेद 'आतुर' अर्थात् क्षुधा तृषा की पीडा से व्याकुल होकर और पाचवां भेद "आपत्ति" है, इसके चार भेद इस प्रकार है,—

(१) द्रव्यापत्ति–प्राशुकादि द्रव्य की अप्राप्ति।
(२) क्षेत्रापत्ति–अटवी की प्राप्ति होने से।
(३) कालापत्ति–दुर्भिक्षादि के समय।
(४) भावापत्ति–रोगादि प्राप्त होने पर।

इन कारणो के वश दोष लगाते है। आगम मे उसको 'दोषी' मानते हैं। यदि क्षुधादि और रोगादि मे सदोष आहारादि का अपवाद होता, तो यहा उसे दोषी क्यो बताते ?

भगवती श ५ उ ६ मे आधाकर्म, क्रितकृत आदि दोष युक्त आहारादि को–मन मे भी निर्दोष समझे और उसको

आलोचना न करे तो उसे विराधक कहा है और टीकाकार ने विपरीत श्रद्धानादि रूप होने से मिथ्यात्वादि की प्राप्ति बताई है। यहा आपत्ति तथा रोगादि कारण से लेने मे निर्दोषता नही बताकर सभी के लिये विराधना (मिथ्यात्वादि की प्राप्ति) बताई है। इस प्रकार अनेक स्थलो पर कारण दशा मे भी आधाकर्मादि का निषेध किया गया है। अत. कारण दशा मे भी लेना सिद्ध नही होता और जो आधाकर्मादि दोष युक्त आहारादि ग्रहण करने की सिद्धि के लिये भगवती और सूत्र-कृताग के प्रमाण दिये, वे सगत नही है। क्योकि श ८ उ ६ मे बहुत निर्जरा और अल्पतर पाप कर्म संबधी जो वर्णन है, वह देने वाले (श्रावक) की अपेक्षा से है। अतः इस पाठ से यहा सदोष आहारादि का जान-बूझ कर लेना साबित नही हो सकता। कारण कि लेने वाले सबधी दोषादि विषयक यहा प्रसंग ही नही है। प्रसग न होते हुए भी उपरोक्त पाठ की टीका मे-सकारण, निष्कारण दशा मे साधु को दोष युक्त लेना बताते हैं। वह मूल पाठ से सगत नही है। तथा टीकाकार तो अप्रासुक का (श. ५ उ. ६ मे की यहा भी अनुवृत्ति लेकर) सचित्त अर्थ लागू करते हैं और सूत्रकृताग के २१ वे अध्ययन की टीका मे इसी प्रकार सभी अनाचारो के विषय मे लिखा है, अर्थात् क्षुधा पीडितादि सकट के समय किसी भी अनाचीर्ण का सेवन किया जा सकता है। इस प्रकार टीकाकार का बताना कहा तक सगत है? क्योकि बृहत्कल्प सूत्र मे अचित्त, अनेषणिक आहार-पानी आ जाने पर उसे बडी दीक्षा देने योग्य दीक्षित के अतिरिक्त

अन्य किसी को न देकर परठने का उल्लेख किया गया है।

और भी शास्त्रकार कहते हैं कि भूल से सचित्त पानी आ जाने पर उसको परठने का व स्थितिवश उसको सपात्र परठने का आचाराग के १५ वे अध्ययन के २ उ मे उल्लेख करते हुए यहा तक बताया है कि परठे हुए सचित जल के भीगे पात्र को स्वाभाविक रूप से न सूखने तक वापरने योग्य नही माना है। इसी प्रकार बृहत्कल्प, दशवैकालिक तथा आचाराग के अन्य स्थलो मे यह बताया गया है कि—अचित्त आहारादि, सचित्त जल, अन्न और रजकणयुक्त अनजान स्थिति मे प्राप्त होगया हो तो नि शक स्थिति न होने तक उसको काम मे लेने का निषेध किया गया है।

ऐसा सूक्ष्म निरूपण जहा प्राप्त है, वहा सचित्त के भोग की कल्पना ही कैसे मान्य की जासकती है ?

यहा दातार के भी बहुतर निर्जरा और अल्पतर पाप के प्रसग मे "**अप्रासुक**" "**अनेषणिक**" का निम्नोक्त शास्त्र सगत अर्थ लागू होता है। जैसे—बालक आदि की इच्छा न होते हुए देना, उधार लाकर देना, ब्राह्मणो के लिये बना हुआ जबतक पुरुषातर कृतादि न हुआ हो वह देना एव मालोहड दोष वाला, दूसरो के लिये ले जाया हुआ, उनकी इजाजत बिना, शय्यातर का आहारादि, खुद दाता के अपनाये बिना, बहुत उज्झित धर्मवाला, जबरन अति मात्रा मे दिया हुआ आहारादि, इस प्रकार का आहार यहा अप्रासुक, अनेषणिक समझना। तभी बहुत्तर निर्जरा का कारण होता है। अन्यथा अप्रासुक (सजीव) और

अनेषणिक (प्राणीघात से तैयार किया हुआ आदि विशेष दोष युक्त) आहारादि देकर दाता अल्पायु का बन्धक और संयम का घातक होता है।

इस विषय मे सूत्रकृताग का प्रमाण देना भी शास्त्र-मर्मज्ञो के लिये शोभास्पद नही है। क्योकि इन गाथाओ मे तो आधाकर्मादि सदोष आहारादि लेने का कोई उल्लेख ही नही है और न वैसी वस्तु लेने सबधी कोई अर्थ ही प्रगट होता है। वहा तो आधाकर्मी भोगने वाले को कर्मबंध होता ही है या नही होता है, ऐसा निश्चय करके एकात भाषा न बोलने का वर्णन है। छद्मस्थता के कारण भोक्ता सबंधी आतरिक ज्ञान न होने से निश्चयकारी भाषा बोलने का निषेध है। क्योकि जिस मुनि के शुद्धि का ध्यान रखते हुए भी अनजान मे आधाकर्मी आहारादि भोगने मे आ गया हो, उसके प्रथम और चरम तीर्थंकर के साधु वर्ग के अतिरिक्त, अन्य तीर्थंकरो के साधुवर्ग मे जिनके लिये आहारादि किया है, उनको छोड कर शेष के और छेदोपस्थापनीय देने योग्य नवदीक्षित को अनेषणिक आहारादि आ जाने पर देने का विधान होने से, उसको दिये जाने पर वह उसको काम मे लेता हो, तो इन सब के कर्म बधन हुए—ऐसा कैसे कहा जा सकता है? ऐसी परिस्थिति मे उनके तत्सबधी कर्मबध नही होने से कर्मबध हुए तथा उपरोक्त मुनियो के अतिरिक्त जो जान कर उपरोक्त प्रकार का आहारादि जिसने भोगा हो, उसके तत्सबधी कर्मबध होने से नही हुए, इस प्रकार बोलना अनाचीर्ण बताया है। अत उपरोक्त गाथाओ से सदोष आहारादि का भोग

सिद्ध नही होता।

उपरोक्त शास्त्रीय विधान के अनुसार किसी भी दशा मे आधाकर्मादि सदोष आहारादि का ग्रहण करना सिद्ध नही होता।

६१० प्रश्न–मागध आदि देवो को साधने के लिये सभी चक्रवर्ती उन पर शर (बाण) फेकते हैं या कोई-कोई ?

उत्तर–तीर्थंकर चक्रवर्ती के तो सर्वत्र खण्ड-साधना शरादि फेंके बिना ही होती है और अन्य चक्रवर्ती (भरत क्षेत्र की अपेक्षा से मागध आदि तीन तीर्थ और चूल हेमवत पर) शर फेंकते हैं (अन्यत्र नही)। यह भाव इस "**इयं च सिंधुदेवी-आसनकम्पनाद्दत्तोपयोगासती स्मृतजातीया स्वतए-वानुकूलाऽऽशयासंजज्ञे तेन शरप्रमोक्षणाऽऽद्यत्रववत-व्यं एव च कर्मचक्रिणां वैताढ्यसुराऽऽदीनां साधनेऽपि जिनचक्रिणां तु सर्वत्रदिग्विजययात्रायां शरप्रमो-क्षणाऽऽदिकमतरेणैव प्रवृति.र्यतस्तत्र तेषां तथैव साध्यसिद्धिरिति,**" टीका से स्पष्ट होता है। अर्थात् सिंधु-देवी का आसन चलने से, अवधि के उपयोग से चक्रवर्ती को जानकर, अनुकूल होकर शरण मे आगई, बाण नही फेंका। इसी प्रकार वैताढ्य के देवादि साधने मे समझना। उपरोक्त ४ स्थानो को छोड कर चक्रवर्ती शर नही फेंकते और जिन-चक्रवर्ती तो दिग्विजय मे किसी स्थान पर वाण नही फेंकते। यह उनके [illegible]ोदय की विशेषता है।

६११ प्रश्न—जीव को सर्वप्रथम समकित किस गति मे प्राप्त हो सकती है ?

उत्तर—चारो मे से किसी भी गति मे प्राप्त हो सकती है। यह बात अनुयोगद्वार मे वर्णित भावो के चार सयोगिक पाच भागो मे से तीसरे भग की इस " **अत्रोदयिकौपशमिक-पारिणामिकभावनिष्पन्नस्तृतीयभंगो गतिचतुष्टचेऽपि सभवति, तथाहि औदयिकीअन्यतरागतिः नारक-तिर्यग्-देवगतिषु प्रथमसम्यक्त्वलाभकाले एव उपशमभावोः भवति मनुष्यगतौतु तत्रोपशमश्रेण्यां चौपशमिकंसम्य-क्त्व क्षायोपशमिकानीन्द्रियाणिपारिणामिकं जीवत्व। मित्येवमय भगकः सर्वाषुगतिषुलभ्यते** " – टीका से स्पष्ट होती है। अर्थात् चार संयोगी का तीसरा भंग चारो गति मे पाता है, उदय तो किसी भी गति का और सर्व प्रथम सम्यक्त्व की प्राप्ति मे उपशमभाव और मनुष्य गति मे तो सर्व प्रथम सम्यक्त्व का लाभ व उपशमश्रेणी मे उपशमभाव होता है। क्षयोपशम इन्द्रियो का, पारिणामिक जीवत्व, इस प्रकार यह भग चारो गति मे मिलता है। उपरोक्त प्रमाण से चारो गति मे सर्वप्रथम सम्यक्त्व प्राप्त होना सिद्ध है, तथा समरादित्य केवली के रास मे भी अग्नि-शर्मा के जीव को सर्वप्रथम समकित अश्व के भव मे प्राप्त होगी– ऐसा बताया है। इत्यादि प्रमाणो से चारो मे मे किसी भी गति मे सर्वप्रथम ममकित प्राप्त हो मकती है, ऐमा सम्भव है।

६१२ प्रश्न—आचाराग अध्ययन १२ उ. ३ मे यह

उल्लेख है कि मार्ग मे चलते हुए साधु को कोई राहगीर यह पूछे कि–"क्या तुमने इधर मनुष्य, पशु (बैल आदि), पक्षी, जल-चर आदि जीवो को देखा ?" तो इसके उत्तर मे मुनि कुछ भी नही कहे यावत् मौन रहे तथा जानते हुए भी मैं नही जानता हूँ–एसा कहे। इस प्रकार क्या साधु, जीव-रक्षार्थ असत्य भाषण कर सकता है ?

उत्तर–"**जाणं वा णो जाणंतिवएज्जा**" इस पाठ का कोई उपरोक्त अर्थ भी करते हैं। परन्तु यह **अर्थ** सगत नही बैठता, क्योकि दशवैकालिक अध्ययन ७ गाथा १ मे "**दो ण भासिज्ज सव्वसो**" अर्थात असत्य तथा मिश्र ये दोनो भाषा सर्वथा न बोले– ऐसा आदेश है। यहा "**सव्वसो**" शब्द से किसी स्थान व कैसे भी संकट मे झूठ नहीं बोलना, तो फिर जीव, रक्षादि कारण मे भी असत्य कैसे बोल सकता है ? तथा इसी सूत्र के छठे अध्ययन की गाथा ११ मे असत्य का निषेध करते हुए "**अपणट्ठा परट्ठा वा**" अर्थात् अपने या दूसरो के लिये असत्य न बोलना, इसमे स्व और पर दोनो के लिये निषेध है, तो फिर परार्थ (जीव-रक्षादि के लिये) भी झूठ कैसे बोल सकता है ?

उपरोक्त प्रमाणो को देखते हुए जीव-रक्षादि निमित्त भी असत्य भाषण, शास्त्र सगत प्रतीत नही होता। अत "**जाण वा-णो जाणतिवएज्जा**"–पाठ का अर्थ–जानता हुआ भी "मैं जानता हू"–ऐसा न कहे, अर्थात् मौन ही रहे। यही अर्थ

संगत है। ऐसा करने पर ही इसी आलावे के शब्दो [राहगीर के पूछने पर उन जीवो के विषय मे-कुछ न कहे, न बतावे-उसके प्रश्न को किसी भी प्रकार स्वीकार न करता हुआ, मौन ही रहे, परन्तु जानता हुआ भी, जानता हूँ, ऐसा न कहे। तात्पर्य यह है कि-जानते हुए भी जानता हूँ, ऐसा न कह कर मौन ही रहे] के साथ मेल ठीक रूप से बैठता है।

इसके अतिरिक्त यही पर चार आलावे आगे और आये हैं। उनमे से तीसरे आलावे मे-"यहा से ग्रामादि कितनी दूर है" और चौथे मे "अमुक ग्राम या नगरादि का कौन-सा मार्ग है ?" इन प्रश्नो के सबध मे भी वही पाठ है। यदि उपरोक्त पाठ का झूठ बोलना अर्थ किया जाय, तो यहा पर जीव-रक्षा संबंधी कोई खास प्रसंग नही है, तो यहा किस प्रसग को लेकर झूठ बोलेगा ? अत साधु का यह कर्त्तव्य है कि गृहस्थ सबधी ऐसे प्रसंगो पर कुछ नही कहे, मौन साधे। इसलिये उस पाठ का झूठ बोलने का अभिप्राय निकालना ठीक नही।+

शका-उपरोक्त पाठ का सीधा अर्थ-"जानते हुए नही जानता हूँ"-ऐसा होते हुए भी यहा उपरोक्त प्रकार का दूसरा अर्थ करना सगत प्रतीत नही होता क्योकि अन्यत्र भी प्रसगवश

+ तथा उदासीनता की दृष्टि से यह अर्थ भी ठीक बैठता है, जैसे-व्यवहार मे किसी बात को जानते हुए भी उसके समर्थक न होने पर "मैं नही जानता"-ऐसा कह दिया करते हैं। इसका तात्पर्य यह होता है कि-इस विषय मे मैं कुछ नही कहता। इसी प्रकार यहा भी उस पथिक को कहे कि-मैं नही जानता, अर्थात् हम साधु हैं। इस विषय मे कुछ नही कहते।

अपवाद रूप मे असत्य बोलने की सिद्धि होती है। जैसे प्रज्ञापना पद ११ मे उपयोग सहित चारो जाति की भाषा बोलते हुए को आराधक बताया है। इस टीका मे "**प्रवचन उड्डाह रक्षणादि निमित्त**" अर्थात् प्रवचन रक्षणार्थ मृषा बोलता हुआ भी आराधक ही होता है" तथा सूत्रकृताग अध्ययन ८ गाथा १९ मे "**सादिय न मुसबुया**" अर्थात माया सहित झूठ नही बोले। इसमे टीकाकार का कथन है कि-परवचनार्थ माया सहित मृषा नही बोलना, परन्तु सयम रक्षार्थ देखे हुए मृगादि पशु के लिये भी कह दे कि मैने नही देखे, इत्यादि बोलने मे दोष नही है। इन उपरोक्त प्रमाणो से तत् प्रसगो पर झूठ बोलना सिद्ध होता है। तो फिर "**जाण वा णो जाणतिवएज्जा**"-पाठ का असत्य बोलने सबधी अर्थ को अनुपयुक्त क्यो बताया जाता है?

समाधान-इन शास्त्रीय पाठो का उपरोक्त प्रकार का अर्थ करते हुए जो अपवाद स्वरूप असत्य बोलना सिद्ध किया, वह सगत नही। क्योकि यह अर्थ आगम से विरुद्ध जाता है। ऐसे प्रसगो पर भी असत्य का प्रयोग करना योग्य नही है। जैसे-पुलाक लब्धि वाला कोई साधु, सघादि प्रयोजन, तप-सयम हेत्वार्थ हिंसा मृषादि आश्रवद्वार सेवन करता है, तो उसे आलोचना नही करने पर विराधक कहा है। यहा प्रवचन उड्डाहादि रक्षा हेतु बोलने पर भी दोषी कहा है। अतः तत् प्रसगो मे भी असत्य-भाषण निषिद्ध है।

तथा भगवती श. २५ उ ७ में दस प्रकार की प्रतिसेवना बताई है। उनमे आपद (द्रव्यादि आपत्ति) और भय (सिंहादि

भय) वश किया हुआ कार्य भी दोष युक्त माना है । प्रवचन हीलना, धर्म व सघादि पर संकट की प्राप्ति, यह भी आपत्ति व भय है । तन्निमित्तहिं मृषादि का आचरण करने वाला दोष का पात्र है । ऐसे प्रसगो पर भी इस प्रकार के शास्त्रीय प्रमाण मिलने से मृषावाद का सर्वथा निषेध ही सिद्ध है । अत टीका-कार का उपरोक्त प्रकार से अर्थ करना युक्ति संगत प्रतीत नही होता ।

उपयोगपूर्वक चारो भाषा बोलते हुए आराधक का अथ निम्न प्रकार समझना चाहिए । साधु को सत्य और व्यव-हार भाषा बोलने का ही विधान है और तद्नुसार इन्ही का लक्ष रखते हुए प्रयोग करते हैं, परन्तु जिसके विषय मे वे प्रयोग करते हैं, वह उनकी दृष्टि मे सत्य होते हुए भी वास्तविकता मे वह विपरीत हो, तो उसे असत्य माना गया है । इस बात को आनन्द श्रावक और गौतम स्वामी का प्रसग स्पष्ट करता है । अर्थात् गौतम स्वामी ने अवधिज्ञान के विषय मे आनन्द को सत्य जान कर कहा, परन्तु निर्णय होने पर वह कथन असत्य निकला । ऐसे छद्मस्थता के कारण अन्य किसी के द्वारा भी उपयोगपूर्वक ऐसा प्रयोग हो जावे और उसको मालूम न पडे तो भी वह आराधक है । मालूम होने पर आलोयणादि प्रायश्चित्त लेता है । अत. यहा इस प्रकार उपयोगपूर्वक चारो भाषा बोलते हुए भी आराधक कहा है । ऐसा ही अर्थ यहा समझना उचित है । इसी प्रकार असत्य व मिश्र मनोयोग के विषय मे भी समझना चाहिए ।

तथा असत्य व मिश्र भाषा का प्रयोग अनायास हो जाने पर भी तत संबंधी विचार न होने से आराधक हो सकता है।

यदि '**आउत**' (उपयाग) का अर्थ 'जान बूझ कर' –ऐसा किया जाय तो "**इच्चेइयाइं चत्तारी भासज्जायाइ आउत्तं भासमाणे आराहए णो विराहए**"–इस शास्त्रीय पक्ति का अर्थ यह हागा कि जान-बूझ के चारो भाषा बोलने वाला आराधक होता है, विराधक नही। इस अर्थ से तो जान-बूझ कर असत्य और मिश्र बोलने वाला आराधक ठहरेगा। इसका तात्पर्य यह होगा कि–अनजान मे असत्य व मिश्र भाषी विराधक हुआ। ऐसा अर्थ करना व्यावहारिक और प्रमाणिक दृष्टि से असगत है। इसलिये '**आउत्त**' शब्द का 'जान-बूझ कर (उपयोग पूर्वक) अर्थ मान्य होते हुए भी इसके तात्पर्य के साथ इसको बैठाना चाहिए। "**आउत्त**" शब्द का तात्पर्य यह है–"जान-बूझ कर अर्थात् साधु मर्यादा (भाषा समिति) के साथ"– ऐसा समझना चाहिए।

अप्रमत्त दशा मे केवल शुभ योग होते हुए भी कर्मग्रन्थ गोमटसारादि मे १२ वे गुणस्थान तक चारो भाषा और मन के योग मानते हैं और जान बूझ कर असत्य व मिश्र का प्रयाग तो अशुभयोग विना हो नही सकता।

अत यहा पर भी छद्मस्थता के कारण वस्तु संबधी अवास्तविकता रह जाती है। इस कारण असत्य व मिश्र मन तथा वचन योग उनमे घटित हो सकते हैं। अप्रमत्त स्थिति मे इसके अतिरिक्त अन्य रूप मे ये घटित नही हो सकते।

और भगवती श १ उ १ के "नहिनामाऽनाभोगः छद्मस्थस्येहकस्यचिन्नास्ति"– इस टीकार्थ से किसी भी छद्मस्थ के अनाभोग नही है, ऐसी बात नही है, अपितु है ही।

सूत्रकृताग के प्रमाण से भी जो असत्य बोलने की सिद्धि की गई है, वह भी संगत नही है, क्योकि "सादियं न मुसं-बूया" का अर्थ माया सहित झूठ नही बोलना किया जायगा, तो इसका विपरीतार्थ यह निकलेगा कि माया रहित झूठ बोलना खुला है? किन्तु साधु तो झूठ का सर्वथा त्यागी होता है। तो फिर उनके लिये यह खुला मार्ग कैसे सगत होगा?

"सादियं न मुसंबूया" इस पद मे सादियं शब्द विशेषण है और मुसं विशेष्य है। इच्छापूर्वक असत्य भाषण मे प्राय माया रहती है। इसी दृष्टि से इस पद मे सादिय विशेषण का प्रयोग किया किया गया है। अत. इसका विपरीत अर्थ निकालना सगत नही, क्योकि यहा के प्रासगिक वर्णन को देखते हुए अपवाद विधि का अवलम्बन लेना उपयुक्त नही है।

वहा टीकाकार ने वचनार्थ माया सहित मृषा बोलने का निषेध बताया है, तो मृगादि के विषय मे पूछने वाले को 'जानते हुए भी नही जानता हूँ'– ऐसे कहने मे क्या बिल्कुल माया नही है? भाव कैसे भी अच्छे क्यो न हों, तो भी वास्त-विकता छिपा कर अन्यथा बोलने मे तत् सबधी मृषा और माया कैसे न होगे? यह समझ मे नही आता।

प्रतिसेवना का दसवा भेद 'वीमसा' (विमर्श) है। यदि

कोई आचार्यादि आलोचना के प्रसग पर शिष्यादि की परीक्षा के लिए जानते हुए भी—"यह मैंने अच्छी तरह नही सुना," आदि वचन की प्रवृत्ति करते हैं, तो उनको भी दोष के भागी माने हैं। इसमे एकान्त शिष्यादि के हित के लिए ही प्रवृत्ति की जाती है, फिर भी वे दोष के भागी गिने जाते हैं। वैसे ही मृगादि के विषय मे वास्तविकता छिपा कर अन्यथा बोलने मे तत् सबधी माया-मृषा होने से दोष के भागी कैसे नही माने जायेंगे ?

इसी प्रकार कोई साधु, केवल अन्य साधु की सेवा के लिये गया हो, तो भी वह गमनागमनादि सबंधी प्रायश्चित्त का भागी बनता है। इसमे एकान्त परहित बुद्धि की अपेक्षा होते हुए भी विराधना की आशका से प्रायश्चित्त बतलाया है, तो फिर मृगादि के लिए जान कर असत्य भाषण मे आगम आज्ञा कैसे हो सकती है ? यह विचारणीय है।

इस प्रकार आगम मे अनेक स्थलो पर असत्य व मिश्र भाषण का निषेध किया है और इनके बोलनेवालो को असमाधी और सबल दोष के भागी माने गए हैं। वे विभिन्न प्रायश्चित्त के भागी बताये गये हैं और संकट के प्रसगो पर असत्य व मिश्र भाषी को भी प्रायश्चित्त किये बिना विराधक माना है, तो फिर किसी भी दशा मे असत्य व मिश्र का प्रयोग शास्त्र सम्मत कैसे माना जा सकता है ?

नोट—उत्तर इस प्रकार ध्यान मे आया है। खास ज्ञानी कहे वही प्रमाण है।

११३ प्रश्न—सूत्रकृताग मे 'दुर्भिक्ष काल मे गीतार्थ

साधु अमूच्छित पणा सु आधाकर्मी आहार करे तो वाधा नथी"--ऐसा टीकाकार का कहना है, सो इसका खुलासा करे ?

उत्तर--हाँ, सूत्रकृताग के २१ वे अध्ययन की टीका मे आधाकर्मी वस्तु सेवन करने की वात वता कर यावत् इसी प्रकार सभी अनाचारो के विषय मे समझना वताया है। परन्तु वह टीका आगमो के मूल-पाठ से मेल न खाकर विरुद्ध जाती है। अत मान्य करने योग्य नही है। आगमो मे आधाकर्मी आहार का सवत्र निषेध ही वताया है। जैसे--आचाराग द्वितीय श्रुत-स्कध, ठाणाग, समवायाग, प्रश्नव्याकरण, उत्तराध्ययन, दशवै-कालिक अध्ययन ३, ६, १० मे निषेध ही वताया है। दशाश्रुत-स्कध मे आधाकर्मी सेवन करने वाले को सवल दोष, निशीथ मे प्रायश्चित्त और सूत्रकृताग के अध्ययन १ उ ३ गाथा मे पूती-कर्म भोगने वाले को दो पक्ष का सेवन करने वाला वताया है, तथा भगवती श. १ उ ९ मे आधाकर्मी भोगने वाला कर्मों को निविड करता है और अनादि अनन्त संसार मे भ्रमण करता है, ऐसा वताया है। श ५ उ ६ मे आधाकर्म, क्रीतकृत आदि दोष युक्त आहारादि को मन में भी निर्दोष समझे और उसकी आलोचना न करे, तो उसको विराधक कहा है और टीकाकार ने विपरीत श्रद्धानादि रूप होने से मिथ्यात्वादि की प्राप्ति वताई है। श १८ उ १० आदि मे अनेषणिक को अभक्ष कहा है। आचाराग अध्ययन ८ उ २ मे आधाकर्मादि अशुद्ध आहारादि न लेने से गृहस्थ कुपित हो कर साधु को मारे तथा दूसरो को कहे कि इसको मारो, पीटो, छेदो, जलाओ,

लूटो, खोसो, जीव रहित करो, इत्यादि सकट मे भी लेना निषिद्ध है। उपरोक्त शास्त्रीय विधानानुसार किसी भी दशा मे आधा-कर्मादि सदोष आहारादि भोगना, सिद्ध नही होता। यह उत्तर सक्षेप मे है। (इसका विशेष खुलासा प्रश्न ९०९ के उत्तर मे देखें)

९१४ प्रश्न—प्रश्नव्याकरण तथा उववाई सूत्र मे श्री तीर्थंकर देव तथा युगलियो के आहार के सबध मे ऐसा कहा है—'**ककग्गहणे कवोयपरिणामे**'—इसका क्या अर्थ होता है ?

उत्तर—'**कंकग्गहणी**'—उनका गुदाशय ककपक्षी के गुदाशय के समान निर्लेप होता है।

'**कवोय परिणामा**'—उनकी जठराग्नि कबूतर की जठराग्नि के समान आहार को शीघ्र पचाने वाली होती है—ऐसा अर्थ समझें।

९१५ प्रश्न—कल्पवृक्ष वनस्पतिकाय मे या पृथ्वीकाय मे ?

उत्तर—कल्पवृक्ष वनस्पतिकाय मे है।

९१६ प्रश्न—तीर्थंकर के जन्म-महोत्सव मे देवता मूलरूप मे आते हैं या वैक्रिय रूप बना कर ? यदि मूल रूप मे आते है, तो जब चार तीर्थंकरो का जन्म होता है, तब मूल रूप मे कहां आते हैं ?

उत्तर—तीर्थंकरो के जन्मोत्सव आदि मे कोई देव मूल रूप मे और कोई वैक्रिय से, इस प्रकार दोनो प्रकार से आ सकते हैं। इस प्रकार आने पर भी उनको चारो जगह सम्मि-लित होने के लिए वैक्रियरूप बनाने पडते हैं। उनके मूल तथा वैक्रिय दोनो प्रकार के रूप सुन्दर एव समान दिखाई देते हैं। अत

कही पर मूल और कही पर वैक्रिय रूप भेजने पर भी उन रूपो मे चर्म-चक्षु द्वारा भिन्नता दिखाई नही देती।

६१७ प्रश्न–असालिया की अवगाहना प्रज्ञापना मे (प्रत्येक योजन कही है) १२ योजन की बताई और उरपरिसर्प समुच्छिम की उत्कृष्ट अवगाहना प्रत्येक योजन की कही है, सो किस तरह मेल बैठता है ?

उत्तर–बहुत करके तो दो से लेकर नौ तक को प्रत्येक कहते हैं। परन्तु कही प्रत्येक की उत्कृष्ट अवगाहना ९९ वे तक भी बताई है। इस प्रत्येक की अपेक्षा से १२ योजन को भी प्रत्येक योजन कह सकते हैं।

६१८ प्रश्न–मिथ्यात्वी के सकाम निर्जरा होती है ? "प्रश्नोत्तर मणीरत्नमाला" मे एक जगह सकाम-निर्जरा होना लिखा है, सो ठीक है क्या ?

उत्तर–भव्यत्व के परिपाक एव समकिताभिमुख होते (अपूर्वकरण व अनिवृत्तिकरण के) समय जीव को कुछ उज्ज्वल बनाने मे सहायक बन जावे, यह बात निराली है। अन्यथा वास्तविक सकाम-निर्जरा मिथ्यात्वी के होने की सम्भव नहीं लगती।

६१९ प्रश्न–किसी व्यक्ति ने किसी पर झूठा कलंक लगाया हो, तो उसका पुन उदय उस गति मे ही होता है अथवा दूसरी गति मे ?

उत्तर–किसी ने झूठा कलक लगाया, उसका उदय उस गति मे तथा अन्य गति मे भी हो सकता है।

६२० प्रश्न–अभवी को जाति स्मरण ज्ञान होता है या नही ? यदि होता है, तो किस को हुआ ?

उत्तर–मेघकुमार को हाथी के भव मे समकित प्राप्ति के पूर्व ही जाति-स्मरण हो गया था। यह ज्ञातासूत्र के प्रथम अध्ययन से स्पष्ट है। जिस प्रकार मिथ्यात्वी को जाति-स्मरण होता है उसी प्रकार अभव्य को भी हो सकता है। नेर-यिक की सुलटी या उलटी अवधि चार कोस से ज्यादा नही होती। उनको पूर्वभव की बात जाति-स्मरण से देखनी पडती है। अत अभव्य जीव का अनेक बार जाति स्मरण होता है। अमुक को हुआ, इस प्रकार नाम निर्देश किसी का ध्यान मे नही, तथा जाति-स्मरण को मतिज्ञान या मतिअज्ञान का भेद समझना।

६२१ प्रश्न–समवायागजी मे स्त्री, पुरुष (भर्तार) को मारे तो महामोहनीय कर्म-बधता है, तो पुरुष, स्त्री को मारे, तो उसके वधता है या नही ?

उत्तर–जैसे सर्पिणी अपने अण्डो के समूह को मारती है, उसी प्रकार भर्तार (पोषक अर्थात् पोषण करने वाले) को, सेनापति (राजा) को और 'प्रशास्तार' अर्थात् प्रधान अथवा धर्म पाठक को जो कोई मारता है, वह महामोहनीय कर्म का उपार्जन करता है। क्योकि इनकी मृत्यु से बहुत जीव दु खी होते हैं। इसलिये वह महामोहनीय कर्म का भागी बनता है। भर्तार का अर्थ अभयदेवसूरी' ने पति नही करके 'पोषक' किया है और वह ठीक लगता है।

६२२ प्रश्न–दसवे व्रत मे कहते हैं–"जितनी भूमि की

मर्यादा रखी हो, उसके उपरान्त स्वेच्छा से पांच आस्रव सेवन का त्याग है," तो उस मर्यादित भूमि में आस्रव सेवन किया जा सकता है क्या ? पौषध का पच्चक्खाण कराते समय भी इस प्रकार कहा जाता है।

उत्तर-प्रतिदिन १४ नियम धारण करने को भी दसवां व्रत कहते हैं उसमें मर्यादित भूमि के उपरान्त के त्याग होता है, और जो उपवास करके पौषध करते हैं एवं दया व संवर करते हैं, इनको "जितनी भूमि की मर्यादा की है, उसके अन्दर तथा बाहर पांच आस्रव सेवन का त्याग"-इस प्रकार कराना चाहिए।

९२३ प्रश्न-चक्रवर्तियों तथा वासुदेवों के कितनी-कितनी स्त्रियां होती हैं ?

उत्तर-प्रश्नव्याकरण और जंबूद्वीप-प्रज्ञप्ति में चक्रवर्ती के ६४ हजार स्त्रियां बताई हैं। ज्ञाताधर्मकथांग में वासुदेव के ३२ हजार 'महिलाएँ' बताई हैं। तथा अन्तकृतदशा और प्रश्न-व्याकरण में १६ हजार देवी बताई है।

यहां वासुदेव के १६ हजार स्त्रियां बड़े राजाओं की कन्याओं की अपेक्षा से बता कर शेष १६ हजार छोटे राजाओं की कन्याओं को नहीं गिनी हो या देवीरूप स्त्रियां १६ हजार और शेष १६ हजार साधारण स्त्रियां गिनी हो-ऐसा सम्भव है।

९२४ प्रश्न-आर्द्रकुमार जिन प्रतिमा देख कर बोध-बीज को प्राप्त हुआ-ऐसा एक जगह देखा है। यह कहां तक ठीक है ?

उत्तर-आर्द्रकुमार के जिन प्रतिमा की बात कथा में है, बात प्रमाणिक नहीं।

६२५ प्रश्न–नवकारसी, रात को १२ बजे से सूर्य उदय तक पालने वाले के होती है या सूर्य उदय से ४८ मिनिट तक पालने वाले के है ?

उत्तर–चोविहार करने वाले, अर्धरात्रि से सुबह तक चोविहार करने वाले और चोविहार न करने वाले, ये सभी नवकारसी कर सकते हैं। सूर्योदय से एक मुहूर्त दिन आने तक के विचारो से यह प्रत्याख्यान किया जाता है। अथवा दूसरा अर्थ निम्न प्रकार सुना है–

पूरा या थोडा चौविहार रखने वाला, सूर्योदय बाद एक नवकार मत्र बोले तब तक के प्रत्याख्यान के विचार को भी 'नमोकारसी' कहते है।

६२६ प्रश्न–स्त्री के १६ शृगार मे से ६, ६, १२ का अर्थ व १५ का मूल पाठ क्या है ?

उत्तर–स्त्री का छठा शृगार '**कुंडल**'–कर्णभूषण, नोवां आवाज वाले–'**नेउर,**' बारहवा बिंदियो की (ललाटादि पर) श्रेणी और पन्द्रहवा '**कर-कगन**' समझना।

६२७ प्रश्न–देवसी और रायसी प्रतिक्रमण आदि की आज्ञा लेते समय वहा कोई साधु-मुनिराज न हो, तो श्री सीमन्धर स्वामी की आज्ञा ले सकता है या नही ?

उत्तर–प्रतिक्रमण की आज्ञा, जिनका शासन हो उनकी लेनी चाहिए। यदि कोई सीमन्धर स्वामीजी की लेवे, तो कोई आपत्ति की बात नही। एक अरिहत की आज्ञा का आराधक सभी अरिहतो की आज्ञा का आराधक होता है। अत सीमन्धर स्वामी

की आज्ञा भी ले सकता है।

शंका-एक अरिहंत का आराधक सभी अरिहंतों का आराधक होता है। परन्तु दूसरा प्रश्न यहां यह है कि पार्श्व-नाथ प्रभु के शिष्य भगवान् महावीर की आज्ञा में आये बिना केवलज्ञान प्राप्त कर सकते हैं या नहीं ? यदि हां, तो फिर उत्तरा-ध्ययन सूत्र के २३ वें अध्याय में महामुनि श्री केशी स्वामी, प्रभु महावीर के पांच महाव्रत क्यों अंगीकार करते हैं ? वास्तव में बात आराधक-विराधक की नहीं, किन्तु शासन संबंधी आज्ञा का प्रश्न है। दूसरी ओर प्रभु महावीर के शासन का निवासी सीमंधर प्रभु से कैसे आज्ञा प्राप्त कर सकता है ? क्योंकि शासन परिवर्तन के साथ काल परिवर्तन भी होता है, भारत की सन्ध्या वहां की प्रातः (उषा) है।

समाधान-एकान्त ऐसी बात नहीं है कि पार्श्वनाथ प्रभु के शिष्य को महावीर की आज्ञा में आये बिना केवलज्ञान नहीं होता। उनको उनका संयोग मिलने पर वे कषायवश पृथक् नहीं रहते, यदि रह जाय, तो केवलज्ञान नहीं होता। यदि सहज स्वाभाविक दूरी आदि के कारण मिलाप न हो सके, तो भिन्न रहते हुए भी केवलज्ञान प्राप्त होने में कोई बाधा नहीं। काल परिवर्तन होने पर भी प्रतिक्रमण की आज्ञा लेने में कोई बाधा प्राप्त नहीं हो सकती। जैसे भरत क्षेत्र का साधु आहार-विहार, राई देवसी प्रतिक्रमण आदि का हिसाब यहां के दिन-रात्रि को ध्यान में रख कर करता है। इसी साधु को यदि कोई देव संहरण करके महाविदेह में ले जावे, तो वही साधु वहां महा-

६२५ प्रश्न–नवकारसी, रात को १२ बजे से सूर्य उदय तक पालने वाले के होती है या सूर्य उदय से ४८ मिनिट तक पालने वाले के है ?

उत्तर–चौविहार करने वाले, अर्धरात्रि से सुबह तक चौविहार करने वाले और चौविहार न करने वाले, ये सभी नवकारसी कर सकते हैं। सूर्योदय से एक मुहूर्त दिन आने तक के विचारो से यह प्रत्याख्यान किया जाता है। अथवा दूसरा अर्थ निम्न प्रकार सुना है–

पूरा या थोडा चौविहार रखने वाला, सूर्योदय बाद एक नवकार मत्र बोले तब तक के प्रत्याख्यान के विचार को भी 'नमोकारसी' कहते है।

६२६ प्रश्न–स्त्री के १६ शृगार मे से ६, ६, १२ का अर्थ व १५ का मूल पाठ क्या है ?

उत्तर–स्त्री का छठा शृगार 'कुडल'–कर्णभूषण, नोवा आवाज वाले–'नेउर,' बारहवा बिंदियो की (ललाटादि पर) श्रेणी और पन्द्रहवा 'कर-कगन' समझना।

६२७ प्रश्न–देवसी और रायसी प्रतिक्रमण आदि की आज्ञा लेते समय वहा कोई साधु-मुनिराज न हो, तो श्री सीमन्धर स्वामी की आज्ञा ले सकता है या नही ?

उत्तर–प्रतिक्रमण की आज्ञा, जिनका शासन हो उनकी लेनी चाहिए। यदि कोई सीमन्धर स्वामीजी की लेवे, तो कोई आपत्ति की बात नही। एक अरिहत की आज्ञा का आराधक सभी अरिहतो की आज्ञा का आराधक होता है। अत सीमन्धर स्वामी

की आज्ञा भी ले सकता है।

शंका—एक अरिहन्त का आराधक सभी अरिहंतो का आराधक होता है। परन्तु दूसरा प्रश्न यहा यह है कि पार्श्वनाथ प्रभु के शिष्य भगवान् महावीर की आज्ञा मे आये बिना केवलज्ञान प्राप्त कर सकते हैं या नही? यदि हा, तो फिर उत्तराध्ययन सूत्र के २३ वे अध्याय मे महामुनि श्री केशी स्वामी, प्रभु महावीर के पाच महाव्रत क्यो अगीकार करते हैं? वास्तव मे बात आराधक-विराधक की नही, किन्तु शासन सबधी आज्ञा का प्रश्न है। दूसरी ओर प्रभु महावीर के शासन का निवासी सीमधर प्रभु से कैसे आज्ञा प्राप्त कर सकता है? क्योकि शासन परिवर्तन के साथ काल परिवर्तन भी होता है, भारत की सन्ध्या वहा की प्रात (उषा) है।

समाधान—एकान्त ऐसी बात नही है कि पार्श्वनाथ प्रभु के शिष्य को महावीर की आज्ञा मे आये बिना केवलज्ञान नही होता। उनको उनका संयोग मिलने पर वे कषायवश पृथक् नही रहते, यदि रह जाय, तो केवलज्ञान नहीं होता। यदि सहज स्वाभाविक दूरी आदि के कारण मिलाप न हो सके, तो भिन्न रहते हुए भी केवलज्ञान प्राप्त होने मे कोई बाधा नही। काल परिवर्तन होने पर भी प्रतिक्रमण की आज्ञा लेने मे कोई बाधा प्राप्त नही हो सकती। जैसे भरत क्षेत्र का साधु आहार-विहार, राई-देवसी प्रतिक्रमण आदि का हिसाब यहा के दिन-रात्रि को ध्यान मे रख कर करता है। इसी साधु को यदि कोई देव संहरण करके महाविदेह में ले जावे, तो वही साधु वहां महा-

का नही, अर्थात सूक्ष्म अनन्तकाय के शरीर तो दिखाई ही नहीं देते और वादर अनन्तकाय (आलू आदि) का जो छोटे से छोटा टुकडा दिखाई देता है, उसमे असख्य औदारिक शरीर और प्रत्येक औदारिक शरीर मे अनन्त जीव होते हैं। तेजस् और कार्मण शरीर तो सभी जीवो के अलग-अलग हैं।

अनन्त जीवो का एक औदारिक शरीर होने से प्रत्येक जीव के स्वतत्र रूप से पूरा-पूरा औदारिक न होते हुए भी अंश रूप से तो औदारिक शरीर सभी के होता ही है। जितने जीव एक औदारिक शरीर मे होते हैं, उतने सभी जीव, उस शरीर के हिस्सेदार होने से सभी के औदारिक शरीर माना जाता है। अत औदारिक का अश होते हुए भी उन एक-एक जीव के तीन-तीन शरीर गिनना चाहिए।

९३० प्रश्न—जमीकद का साग लेने मे मुनिराज की व्यवहार दृष्टि से शोभा नही रहती। कई गृहस्थ कहते हैं कि हम भी जमीकन्द काम मे नही लेते, तद मुनिराज क्यो वहरते हैं? यदि इस दृष्टि मे कोई जिज्ञासु मुनिराज कहे कि—"विगय काम मे ले लेना, परन्तु जमीकन्द का साग नही लेना," तो इसमे क्या आपत्ति है? एक मुनि पाच विगय छोडता है और एक मुनि जमीकन्द को छोडता है, तो जैन सिद्धात की दृष्टि से विशेष महत्त्व किसका है?

उत्तर—"कदे मूले य सच्चित्ते"—इस पद से कद-मूलादि सचित्त ग्रहण करना साधु के लिए सर्वथा निषिद्ध है, सूठ, हल्दी की तरह अचित्त का नही। जहा लोकोपवाद का

कारण दिखाई देता हो, तो वहा अपवाद करने वालो को सम-झाना तथा अचित्त (कद-मूलादि के साग) को भी त्याग देना चाहिए। विगय तथा अनन्तकाय के साग, इन दोनो मे से जिस साधु को जो वस्तु अधिक प्रिय हो, उसी को भावपूर्वक छोडने से अधिक लाभ होगा, यह स्वभाविक बात है। साधारणतया साग से भी विगय का त्याग करना अधिक कठिन लगता है।

६३१ प्रश्न—कोई श्रावक उचित परिस्थिति एव आवश्य-कता को देख कर मुनि को सदोष आहार देता है, तो उसे पुण्य, पाप या निर्जरा होती है ? हमारी परम्परा तो कहती है कि सदोप आहार का दाता, गर्भ मे कट-कट कर मरता है। दूसरी ओर भगवती सूत्र मे (श ८ उद्देशक ६) ऐसे दाता के लिये अल्प पाप और बहुत निर्जरा का पाठ है। फिर परम्परा व शास्त्र टकरायेगे नही ? इस परम्परा का निर्माण क्यो हुआ ? क्या कोई शास्त्रीय पाठ उसका समर्थन करता है ? यदि हा, तो उसका सविवरण उल्लेख करे ?

उत्तर—भगवती श ५ उ ६ मे तथा स्थानाग ठा ३ उ १ मे अप्रासुक, अनेपणीय आहारादि 'श्रमण, माहण' को देने मे जीवो के अल्प आयुष्य कर्म का बध होना बताया है।

साधु के लिए आधाकर्मादि दोप युक्त आहारादि वस्तु का आगम मे सर्वत्र निषेध है, कारण अवस्था मे भी लेने की आज्ञा नही है। (विशेष खुलासा प्रश्न ६०६ मे देखें)।

६३२ प्रश्न—कृष्ण लेश्या मे जीव के भेद कितने और

उत्तर—कृष्ण लेश्या मे जीव के ४५९ भेद इस प्रकार हैं—पाचवी, छठी और सातवी, इन तीन नरको के पर्याप्ता और अपर्याप्ता, ये ६ भेद नरक के। तिर्यञ्च के ४८, मनुष्य के ३०३ और देवो के १०२ (पच्चीस भवनपति—असुरकुमारादि १० भवनपति और १५ परमाधार्मिक। छब्बीस वाणव्यन्तर—पिशाचादि१६ वाणव्यन्तर और १० जृंभक कुल ५१ के पर्याप्ता और अपर्याप्ता)। इस प्रकार कुल ४५९ भेद हुए+।

९३३ प्रश्न—नील लेश्या मे जीव के कितने और कौन-कौन-से भेद हैं ?

उत्तर—नील लेश्या मे भी ४५९ भेद हैं जिसमे तीसरी, चौथी और पाचवी नरक के पर्याप्ता और अपर्याप्ता एवं ६ भेद नरक के। शेष सब भेद कृष्ण लेश्या के अनुसार समझना चाहिए+।

८३४ प्रश्न—कापोत लेश्या मे जीव के कितने और कौन-कौन से भेद हैं ?

उत्तर—कापोत लेश्या मे भी ४५९ भेद हैं। जिसमे पहली, दूसरी और तीसरी नरक के पर्याप्ता और अपर्याप्ता, एव ६ भेद नरक के, शेष सब भेद कृष्ण लेश्या के अनुसार समझना चाहिए+।

+ भगवती श ३ उ ७ मे परमाधार्मिक देवो की और १४ वें श के ८ वें उद्देशे मे जृंभक देवो की स्थिति एक पल्योपम की बताई है। उस एक पल्योपम की स्थिति की अपेक्षा से तो परमाधार्मिक और जृंभक देवो मे एक तेजो लेश्या ही होती है। और (कृष्णादि तीन) नहीं। परन्तु

९३५ प्रश्न–तेजो लेश्या मे जीव के कितने और कौन-कौन से भेद हैं ?

उत्तर–तेजो लेश्या मे ३४३ भेद हैं। वे इस प्रकार हैं–बादर पृथ्वी, अप् और वनस्पतिकाय के अपर्याप्ता और सन्नी तिर्यञ्च के १० एव १३ भेद तियञ्च के, १०१ सन्नी मनुष्य के पर्याप्ता और अपर्याप्ता एव २०२ मनुष्य के, २५ भवनपति, २६ वाणव्यन्तर, १० ज्योतिषी, पहला, दूसरा देवलोक और पहला किल्विषी, इन ६४ देवो के पर्याप्ता और अपर्याप्ता, इस प्रकार १२८ भेद देवो के, कुल ३४३ भेद हुए।

९३६ प्रश्न–पद्म लेशी मे जीव के कितने और कौन-कौन से भेद है ?

उत्तर–पद्मलेशी मे ६६ भेद हैं। वे इस प्रकार हैं–१० सन्नी तिर्यञ्च के, ३० कर्मभूमि मनुष्य के, दूसरा किल्विषी, तीसरा, चौथा और पाचवां देवलोक तथा ९ लाकातिक, इन १३ देवो के पर्याप्ता और अपर्याप्ता एव २६ भेद हुए। कुल ६६।

९३७ प्रश्न–वैक्रिय-शरीर मे जीव के भेद कितने और कौन-कौन से हैं ?

उत्तर–वैक्रिय शरीर मे जीव के २३३ भेद हैं। वे इस प्रकार हैं–नरक के १४, बादर वायुकाय १ और ५ सन्नी तिर्यंच, इन ६ के पर्याप्ता, १५ कर्मभूमि मनुष्य के पर्याप्ता और १९८ देवता के–ये सब २३३ भेद है।

९३८ प्रश्न—दो कोस से दूर आहार नही ले जाने का नियम है, इसके पीछे कौन-सा रहस्य है ? क्या भूमि-परिवर्तन से वह आहार सदोष हो गया ?

आहार के विषय मे प्रथम प्रहर और चतुर्थ प्रहर की मर्यादा का क्या उद्देश्य है ? प्रथम प्रहर की वस्तु चतुर्थ प्रहर मे सचित्त हो गई ? यदि ऐसा हो तो गृहस्थ के घर मे रहने पर जीव नही आये और पात्र मे कैसे आ गये ? औषधी आदि चतुर्थ प्रहर मे गृहस्थ की आज्ञा ले कर ली जाती है। यदि आहार भी आज्ञा लेकर उपयोग मे लिया जाय तो क्या हानि होगी ?

उत्तर—साधु परिग्रह का पूर्ण त्यागी होता है। उस त्याग की सुरक्षा के लिये प्रभु ने अनेक मर्यादाएँ बतलाई है। उनमे यह भी बताया है कि दो कोस उपरान्त आहार, औषध आदि नही ले जाना और तीन प्रहर* उपरान्त रखना भी नही।

ये मर्यादाएँ क्षेत्र, काल सबधी सग्रह-वृद्धि की रोधक होने से अपरिग्रह व्रत की पोषक है। ये मर्यादाएँ टूटने से ५ वे महाव्रत का भंग और प्रभु-आज्ञा का उल्लघन होता है। प्रश्न कथित दोनो बातो की खास रुकावट मे जीवोत्पत्त्यादि के कारण न समझ कर पूर्व-कथित कारण समझें।

औषध आदि को चौथे प्रहर मे गृहस्थादि की आज्ञा ले कर काम मे लेना, यह भी प्रमाद (शिथिलता) है, फिर आहार आज्ञा लेकर कैसे काम मे लिया जाय ?

---

* अत्यावश्यक कारण से चौथे प्रहर मे काम लेना बृहत्कल्प के ५ वें उद्देशे मे बताया है।

शास्त्रानुसार औषधादि भी तीन प्रहर ही रखना, फिर आवश्यकता हो, तो द्वितीयादि प्रहर मे ले आना, परन्तु आज्ञा नही पलटाना, यही हितकर है।

प्रश्न–६३६ सुनते हैं कि पार्श्वनाथ भगवान के शासन मे कोई गहस्थ, किसी साधु के उद्देश्य से भोजन बनाता है और जिस साधु को लक्ष्य करके बनाया है, उसे ज्ञान हो जाय, तो वह न ले, किंतु दूसरे साधु ले, तो उन्हे औद्दशिक दोष नही लगता। क्या यह शास्त्र सम्मत है ? यदि हां, तो फिर भगवान् महावीर ने अपने साधुओ को औद्देशिक आहार के लिए क्यो निषेध किया ?

उत्तर–प्रत्येक उत्सर्पिणी-अवसर्पिणी के प्रथम तथा चरम तीर्थंकरो के साधु क्रमश ऋजुजड तथा वक्रजड होने के कारण मध्यम २२ तीर्थंकरो के तथा महाविदेह के साधुओ की अपेक्षा से इनका कल्प कुछ विशेष रूप मे भिन्न बताया है। तद्नुसार पार्श्वनाथ भगवान के साधुओ के कल्प मे औद्दशिक आहारादि बद नही होता, परन्तु महावीर भ के साधुओ के कल्प मे वह बद होता है। औद्दशिक आहारादि की रुकावट करना, नही करना आदि सब कल्प-व्यवस्था साधुओ के भावो की परिस्थिति को देख कर ही तीर्थंकरो ने उनके योग्यतानुसार की है। अत तद्नुसार वर्ताव करना ही श्रेयस्कर है।

प्रश्न–६४० चौविहारी मुनि सन्ध्या प्रतिक्रमण मे और अन्य साधु प्रतिदिन रात्रि प्रतिक्रमण मे यदि "गोयरग्ग चरिया" का पाठ न बोले तो क्या हानि है ? वहा आहार ही नही है, तो फिर आलोचना किसकी ?

उत्तर—चौविहारी मुनि अन्य साधु के लिए गोचरी जा सकता है तथा दिन या रात्रि मे गोचरी सम्बन्धी स्वप्न आया हो और अन्य कोई खान-पान गोचरी सम्बन्धी सकल्पादि उत्पन्न हुए हो, इत्यादि कारणो से "**गोयरग्ग चरिया**" का पाठ बोलना ही ठीक है। यह भी बात है कि जिस प्रकार संथारा न होते हुए भी प्रतिक्रमण का क्रम सभी का समान रखने, साधारण बुद्धि वालो का झझट मे न पडने व भाव-विशुद्धि रखने इत्यादि कारणो से सलेखना आदि का पाठ बोलना जरूरी है, उसी प्रकार '**गोयरग्ग चरिया**' आदि का पाठ भी बोलना जरूरी है।

९४१ प्रश्न—जीव अपर्याप्त अवस्था मे मरता है या नही ? अपर्याप्त अवस्था की स्थिति कितनी ? एक-एक पर्याप्ति के बाधने मे उसे कितना समय लगता है ?

उत्तर—जीव अपर्याप्त अवस्था मे मरता है, परन्तु इन्द्रिय पर्याप्ति पूर्ण हुए पहले नही। अपर्याप्त अवस्था की स्थिति अन्तर्मुहूर्त की होती है। कई आहार पर्याप्ति बाधने मे १७६ आवलिका लगना कहते हैं, परन्तु आगमानुसार तो एक समय ही लगता है। शेष पर्याप्ति बाधने का समय बत्तीस-बत्तीस आवलिका कहते हैं, परन्तु आगमानुसार असख्यात समय का अन्तर्मुहूर्त एक एक पर्याप्ति बाधने मे लगता है। क्योंकि आहार-पर्याप्ति के अतिरिक्त शेष पर्याप्ति बाधने का समय सब जीवो के समान नही होता। सभी पर्याप्ति बाधने का समय मिलाने पर भी अन्तर्मुहूर्त ही होता है। जितनी पर्याप्ति बाधनी हों, उतनी पर्याप्ति साथ ही शुरू करता है।

९४२ प्रश्न–सचित्त महास्कन्ध क्या है ? उसकी लम्बाई, चौडाई और स्थिति कितनी है ?

उत्तर–केवली-समुद्घात मे आठ समय लगते हैं, जिसमे से चौथे समय मे केवली समुद्घात वाले जीवो के प्रदेश सपूर्ण लोक-व्यापी हो जाते हैं। अत सचित्त महास्कन्ध की लम्बाई-चौडाई सम्पूर्ण लोक जितनी और स्थिति एक समय की है। क्यो कि चौथे समय के पहिले और पीछे उनके प्रदेश सम्पूर्ण लोक व्यापी नही होते। अत बडे से बडा सचित्त महास्कन्ध वही है।

प्रश्न ९८३–प्रसूति होने पर क्या असज्झाय मानी जाय ? यदि हाँ, तो वह कितने दिन तक और कितने घरो के अन्तर तक मानी जाय ? क्या उसके लिए शास्त्रीय प्रमाण भी है ?

उत्तर–पुत्री जन्म की आठ दिन और पुत्र-जन्म की सात दिन की सौ हाथ दूरी तक असज्झाय स्थानाग स्थाना १० की टीका व अर्थ मे बताई है। राज मार्ग बीच मे न हो, तो ७ घर तक प्रसूति की असज्झाय मानना–ऐसा वृद्धो का कथन है।

९८४ प्रश्न–असन्नी तिर्यंच पचेद्रिय, जघन्य अवगाहना अगुल के असख्यातवे भाग वाले की, जघन्य उत्कृष्ट स्थिति कितनी ?

उत्तर–अगुल के असख्यातवे भाग की अवगाहना वाले असन्नी तिर्यंच पचेद्रिय की जघन्य स्थिति अतर्मुहूर्त और उत्कृष्ट क्रोड पूर्व की होती है। यह बात भ श २८ वे मे स्पष्ट है।

६४५ प्रश्न—असन्नी तिर्यंच पचेन्द्रिय करोड पूर्व के आयुष्य वाले की जघन्य-उत्कृष्ट अवगाहना कितनी ?

उत्तर—करोड पूर्व के आयुष्य वाले असन्नी तिर्यंच पचेन्द्रिय की अवगाहना जघन्य अगुल के असख्यातवे भाग और उत्कृष्ट एक हजार योजन की है। यह भी २४ वे शतक से स्पष्ट है।

६४६ प्रश्न—प्रत्येक वनस्पति की ज० अंगुल के असख्यातवे भाग वाले की ज० उ० स्थिति कितनी ?

उत्तर—अगुल के असंख्यातवे भाग अवगाहना वाले प्रत्येक वनस्पति की स्थिति ज० अन्तर्मुहूर्त उ० १० हजार वर्ष की भी २४ वे शतक से स्पष्ट है।

६४७ प्रश्न—जिस वनस्पति की उ० अवगाहना १००० योजन झाझेरी है, उसकी ज० स्थिति कितनी ?

उत्तर—एक हजार योजन झाझेरी अवगाहना वाले वनस्पतिकाय की मध्यम व उ स्थिति हो सकती है, जघन्य नही। यह खुलासा २४ वे शतक से मिलता है। परतु हजार योजन झाझेरी अवगाहना वाले की ज० स्थिति कितनी होती है यह ध्यान मे नही।

६४८ प्रश्न—जीव के ३ भेद—गुणस्थान ३, योग ३, उपयोग ३ और लेश्या ३ कहा पर पावे ?

उत्तर—अनाकार उपयोगी काययोगी शाश्वत दृष्टि वाले नारक मे।

६४९ प्रश्न—जीव के १ गुणस्थान, १ योग, १ उपयोग,

और १ लेश्या कहा पर पावे ।

उत्तर–लोक प्रमाण अवगाहना वाले साकार उपयोगी मे । अर्थात् साकार उपयोगी सचित्त महास्कन्ध मे ।

६५० प्रश्न–क्रियावादी मनुष्य और तिर्यंच, क्रियावादी रहता हुआ आयुष्य बाधे तो कौनसी गति का ?

उत्तर–वह आयुष्य तो केवल देवगति का ही बाध सकते है । देवगति मे भी एक वैमानिक का ही । इसका स्पष्टीकरण भ श. ३० आदि मे है ।

६५१ प्रश्न–आकाश मे पानी के जमते गर्भ की स्थिति चलती है । जघन्य स्थिति एक समय की उ ६ महीने की, यह स्थिति किनकी ?

उत्तर–कालान्तर मे पानी बरसने हेतु रूप जिन पुद्गलो का परिणमन हुआ हो उसे 'उदक-गर्भ' कहते है। वे पुद्गल उस रूप मे एक समय से लेकर ६ महिने तक रह सकते हैं । अतः यह स्थिति उस रूप मे रहे हुए पुद्गल की समझना ।

६५२ प्रश्न–७६ वे समवायाग मे–छठी पृथ्वी के मध्य भाग से छठी घनोदधि का नीचे का चरमात ७६ हजार योजन दूर बताया है । हिसाब करने से ७८ हजार योजन ही होते हैं, यह अन्तर क्यो है ?

उत्तर–इसीपब्भारा पृथ्वी समेत ८ पृथ्वी भी सूत्रो मे बताई है । इसिपब्भारा पृथ्वी से गिनने से जो पाचवी नरक है वह छठी पृथ्वी हो जाती है । पाचवी नरक के पृथ्वी पिंड की मोटाई एक लाख १८ हजार योजन की है । इसके मध्य भाग

मे इसकी घनोदधि का नीचे का चरमात बराबर बैठ जाता है, इस प्रकार सुना है। तथा टीकाकार ने भी "**पञ्चमी माश्रित्येदं सूत्रमवसेय**" इस प्रकार कहा है।

९५३ प्रश्न–एक भव मे तथा अनेक भव मे गुणस्थान कितनी वार आवे और जावे ?

उत्तर–एक भव मे गुणस्थानक–१, ३, ४ और ५ वा ज. १ उ. प्रत्येक हजार वार, दूसरा और ग्यारहवा ज. १ उ २ वार, ६ और ७ वा ज. १ उ प्रत्येक सौ वार, ८, ९ और १० वा ज १ उ ४ वार आ सकता है। १२, १३ और १४ वां ज. उ. के विना एक भव मे ही और एक वार ही आ सकता है, अनेक भव मे नही।

अनेक भव मे गुणस्थानक–१, ३, ४ और ५ वा ज. २ उ. असख्यात वार, दूसरा ज २ वार उ ५ वार, ६ और ७ वा ज २ उ प्रत्येक हजार वार ८, ९ और १० वा ज. २ उ ९ वार ११ वा ज २ वार उ ४ वार आ सकते हैं।

९५४ प्रश्न–८ आत्मा मे रूपी कितनी और अरूपी कितनी ?

उत्तर–आठ आत्मा मे से कषाय और योग–ये दो रूपी और शेष ६ अरूपी है।

९५५ प्रश्न–प्रत्येक गुणस्थान मे क्रमश॰ ज० उ० कितने उत्पन्न होते हैं ?

उत्तर–पहले मे ५ वे गुणस्थान तक एक समय मे नवीन जीव ज १ उ असख्यात, ६, ७ वे गुणस्थान मे ज. १ उ. प्रत्येक

हजार, ८, ९, १० वे गुणस्थान मे ज १ उ १६२, ११ वे गुण-स्थान ज १ उ ५४, १२, १३ वे गुणस्थान मे ज. १ उ० १०८।

९५६ प्रश्न—प्रत्येक गुणस्थान मे समय-समय पर कितने जीव पूर्वप्रतिपन्न पावे ?

उत्तर—पहले गु० मे ज० उ० अनन्त जीव पावे, २, ३ मे ज० १ उ० पल्योपम के असख्यातवे भाग के समय जितने असख्यात जीव मिल सकते हैं। ४, ५ वे मे ज० उ० पल्योपम के असख्यातवे भाग के समय जितने, ६ मे ज० उ० प्रत्येक हजार करोड, ७ वे मे ज० १ उ० प्रत्येक सो करोड तथा कोई ७ वे मे ज० उ० प्रत्येक सो करोड कहते हैं। ८ वे से १२ वे तक ज० १ उ० प्रत्येक सो, १३ वे मे ज० उ० प्रत्येक करोड, १४ वे मे ज० १ उ० प्रत्येक सो।

९५७ प्रश्न—अभवी मे २८ लब्धियो मे से कितनी लब्धियाँ पाती है ? क्रमश नाम निर्देशित करने की कृपा करे।

उत्तर—२८ लब्धियो के नाम—१ आमोसहि २ विप्पो-सहि ३ खेलासहि ४ जल्लोसहि ५ सव्वोसहि ६ सभिन्नश्रोत ७ अवधि (सुल्टी और उल्टी दोनो) ८ ऋजुमति ९ विपुलमति १० चारण (जघाचारण और विद्याचारण) ११ आसीविष १२ केवली १३ गणधर १४ पूर्वधर १५ अरिहत १६ चक्रवर्ती १७ बलदेव १८ वासुदेव १९ खीरमधु-सप्पि-आसव २० कोठबुद्धि २१ पदानुसारणी २२ बीजबुद्धि २३ तेजो-लेश्या २४ आहारक २५ शीतलेश्या २६ वैक्रिय २७ अक्षीण महाणसी और २८ पुलाक।

इन २८ लब्धियो मे से ६, ८, ९, १०, १२, १३, १४, १५, १६, १७, १८, २४ और २८ वी–ये १३ लब्धियां अभव्य मे नही हो सकती, शेष १५ होती है।

९५८ प्रश्न–भगवान् पार्श्वनाथ के साधु तो दोष लगे तब प्रतिक्रमण करे और महाविदेह के साधु को कालोकाल प्रति-क्रमण करना अनिवार्य है। भगवान् पार्श्वनाथ के साधु, महावीर प्रभु के समय मे भगवान् पार्श्वनाथ के नियम पाले, तो क्या उनकी मोक्ष नही होती ? केशीस्वामी ने गौतमस्वामी से पाच महाव्रत ग्रहण कर उनके नियम का पालन किया। भारत-वर्ष का रहने वाला, भारतवर्ष के कानून का पालन न करे और विदेश के नियम का पालन करे, तो कर सकता है क्या ?

उत्तर–बीच के २२ और महाविदेह के तीर्थंकरो के समय मे सरल और बुद्धिमान् जीव होते हैं, तथा प्रथम तीर्थंकर के समय मे ऋजुजड और चरम तीर्थंकर के समय मे वक्रजड जीव होते हैं। प्रभु ने उनकी योग्यता के कारण नियमो मे भिन्नता रखी है। अत जिनके शासन मे जैसे-जैसे नियम होते हैं, वैसे ही पालन करने चाहिए। भगवान् पार्श्वनाथ के शिष्य, भगवान् महावीर के शासन के नियम शासन मे आने के बाद पालन करते हैं, पहले नही। अतः आपका उदाहरण लागू नही होता।

९५९ प्रश्न–ज्ञानावरणीय आदि कर्मों के संबंध मे उद-यादि भावो की प्राप्ति किस प्रकार समझी जाय ?

उत्तर–इसका चार्ट इस प्रकार है–

मे है। जो उत्कृष्ट अवगाहना के १०८ सिद्ध हुए, यह बात अच्छेरे की है। १० अच्छेरे स्था० के १० वे स्थान मे बताये हैं। अच्छरे अनन्तकाल से होते हैं। बाकी साधारण रूप से तो उ. अवगाहना के दो से अधिक सिद्ध नही होते।

९६२ प्रश्न–पांच स्थावर मृषावाद की क्रिया किस प्रकार करते हैं ?

उत्तर–बोलने की शक्ति का अभाव है, परन्तु वे मृषा॰ वाद के त्यागी नही है। अत अव्रत की अपेक्षा उन्हे मृषावाद आदि सभी क्रियाएँ लगती है।

९६३ प्रश्न–सामायिक, छेदोपस्थापनीय और परिहार-विशुद्धि मे एक वर्द्धमान परिणाम है, तो फिर पडिवाई क्यो होते हैं ? हीयमान परिणाम बिना गिर कर असंयम मे कैसे आते हैं ?

उत्तर–सामायिकादि तीनो चारित्रो मे हीयमान, वर्द्धमान और अवस्थित एवं तीनो परिणाम, भगवती श. २५ उ. ७ मे बताये हैं।

९६४ प्रश्न–स्थानाग ठा ४ मे लोकपालो के नाम हैं, सो भवनपति के २० इन्द्र हैं और प्रत्येक इन्द्र के ४–४ लोक॰ पाल बताये हैं। असुरकुमार के दो इन्द्र हैं, उनके लोकपाल ८ समझना या चार ? चार नाम बता कर वापिस दुबारा चार नाम वे ही बताये हैं, सो लोकपाल २ इन्द्रो के ८ समझना या चार ? इसी प्रकार आगे नागकुमार आदि के भी कैसे समझें ?

उत्तर–भवनपति के २० और वैमानिक के १० एवं

३० इन्द्रो मे से प्रत्येक इन्द्र के ४-४ लोकपाल हैं। असुर-कुमार के दो इन्द्रो के आठ लोकपाल हैं। दोनो इन्द्रो के लोकपालो के नाम वे ही हैं। इसी प्रकार आगे भी समझना चाहिए।

९६५ प्रश्न—स्थानाग ठा ४ उ ३ मे औदारिक के विना चार शरीर को जीव स्पर्शते हैं, सो यह कैसे समझे ?

उत्तर—औदारिक शरीर तो जीव रहित भी दिखाई देता है, किन्तु शेष चार शरीर, जीव विना (नि केवल शरीर) ठहर नही सकते और न जीव-शून्य शरीर दिखाई देते हैं।

९६६ प्रश्न—स्थानाग ठा ४ उ. ३ मे ४ पैताला चले हैं वे, भी "सपक्खो सपडिदिसि" है, तो पहिला देवलोक के उडु नामक विमान को कैसे समझे ? वह किस लोक की सीमा मे है ?

उत्तर—उडु नामक विमान पहले प्रतर के मध्य मे है और वह पहले देवलोक का गिना जाता है। क्योकि १३ ही प्रतर के इन्द्रक (मध्य) विमान पहले देवलोक के हैं।

९६७ प्रश्न—खुड्डिया मोयपडिमा, महल्लिया मोय-पडिमा, जवमज्झ-चन्दपडिमा, वइर-मज्झ-चन्द-पडिमा—ये किस तरह होती है ? इनमे तपस्या कैसे की जाती है ?

उत्तर—दोनो ही मोय पडिमा मार्गशीर्ष या आपाढ मे धारण कर सकते हैं। ग्रामादि के बाहर एकात मे धारण करते हैं। भोजन करके धारण करे, तो ६ उपवास मे और बिना

भोजन किये अंगीकार करे, तो ७ उपवास मे छोटी, और ७ तथा ८ उपवास मे बडी मोयपडिमा पूरी होती है। इन दो पडिमाओ मे मोय (पासवण) ग्रहण करने की विधि है।

जव और वज्रमध्य-चद्र-पडिमा प्रत्येक महीने की होती है। एक महीने तक शरीर को उपसर्गों से नही बचाते।

जव-मध्य चन्द्र पडिमा शुक्ल पक्ष की एकम से शुरू करते हैं और अमावस्या को पूरी हो जाती है। एकम को एक, द्वितीया को २, यावत् पूर्णिमा को पन्द्रह दत्ती भोजन व पानी की ले सकते हैं, फिर कृष्ण एकम को १४ यावत् चतुर्दशी को १ और अमावस्या को उपवास करके समाप्त कर देते हैं।

वज्रमध्य भी इसी प्रकार, परन्तु कृष्णपक्ष की एकम को शुरू करते है। एकम को पन्द्रह, द्वितीया को चौदह, यावत् अमावस्या को १, शुक्ल पक्ष की एकम को २, द्वितीया को ३ यावत् चतुर्दशी को १५ और पूर्णिमा का उपवास। इस प्रकार सक्षेप मे बताई है। अधिक विस्तार व्यवहार सूत्र मे है। इन पडिमाओ के नाम तो स्थानाग मे भी आते हैं।

६६८ प्रश्न-"तासिणं मणिपेढियाण उवरि चत्तारी जिणपडिमाओ जिणुस्सेहप्पमाणमित्ताओ संपलियंकनिसन्नाओ थूभाहि मूहीओ संनिखित्ताओ चिट्ठंति तं जहा-१ उसभा, २ वद्धमाणा, ३ चंदाणणा, ४ वारिसेणा।"

(ब) एत्थण अट्ठसयं जिणपडिमाण जिणुस्सेहप्पमाणमित्ताणं संनिखित्तं संचिट्ठइ।"

यहा पर जिन-प्रतिमा का क्या अर्थ होना चाहिए ?

उत्तर–निम्नोक्त प्रमाणो से तीर्थंकर प्रतिमा प्रतीत नही होती–

(१) भगवान् के शरीर का वर्णन मस्तक की ओर से किया गया है और प्रतिमाओ का पैर की ओर से किया गया है। अन्य सरागियो की शारीरिक सुन्दरता का वर्णन पैर की ओर से आता है। जैसे युगलिकादि का।

भगवान् के शरीर वर्णन में "स्तन" वर्णन नही है, परन्तु प्रतिमा के स्तन बताये हैं। एव १००८ लक्षण प्रतिमा के वर्णन मे नही है, परन्तु भगवान् के वर्णन मे है।

२ "जिणुस्सेहपमाणमेत्ताओ–" इसका अर्थ टीकाकार ने ५०० धनुष का स्वीकार किया है, सो तीर्थंकर की अवगाहना तो भिन्न-भिन्न प्रकार की होती है। यहाँ एक समान बताई है तथा प्रतिमा अनेक होते हुए भी नाम चार यही आते हैं, अन्य तीर्थंकरो के नही।

(३) यहा जिन-प्रतिमाओ के आगे–नाग, भूत, यक्ष और कुण्डधारक प्रतिमाएँ बताई हैं, सो तीर्थंकरो की होती, तो उनके आगे गणधर, साधु आदि की प्रतिमा बताते। तथा उन प्रतिमा के आगे कलश, भृगार, आरिसा, स्थाल, रत्नकरडक, आभरण, सरसव, मोरपीछ आदि वस्तुओ का वर्णन है। ये प्रतिमाए अगर वीतरागियो की होती, तो त्यागियो के उपकरण बताते, विलासियो के नही। अत सरागियो की होना सभवित है।

स्थानाग स्था ३ उ ४ मे तो तीन प्रकार के 'जिन

बताये है, परन्तु कोषो मे जिन के अनेक अर्थ बताए है। यहा जिन का अर्थ कामदेव की प्रतिमा सुनने मे आया है। कदाचित् वह 'हेमीनाम माला +' आदि मे मिल सकता है।

६६६ प्रश्न-"**एत्थण वइरमएसु गोलवट्टसमुग्गएसु बहवे जिणसकहाओ सनिखित्ताओ चिट्ठति।**"

यहा कहा गया है कि-यहा पर वज्रमय गोलवृत समुद्गको मे जिन की बहुत-सी हड्डियाँ रखी हुई है।

यहा यह शका है कि देवलोक मे जिन की हड्डियां-जो कि औदारिक शरीर की है, वे कैसे रह सकती है ? देवलाक मे कोई भी औदारिक शरीर की वस्तु नही जा सकती। फिर '**जिनसकहाओ**' का क्या अर्थ करना चाहिए ?

उत्तर-देवलोक मे रत्न आदि अनेक औदारिक वस्तुएँ है ही। तथा यहा से भी मिट्टी, पानी, पुष्पादि अनेक वस्तुएँ इन्द्रादि के महोत्सव मे देव ले जाते हैं और जंबूद्वीप प्रज्ञप्ति मे भगवान् ऋषभदेव की दाढादि अवयव इन्द्रादि देव ले जाकर समुद्गको मे रखने का वर्णन आया है। महापुरुषो की अस्थि मगल रूप समझ कर ले जाते हैं, अत औदारिक की वस्तु वहा जाने मे व रहने मे भी बाधा प्रतीत नही होती, परन्तु

+ 'शब्द रत्न महोदधि' कोष भाग १ पृ ८४० मे 'जिन' शब्द के अर्थ क्रमश -" जैन तीर्थंकर,' बुद्ध, कामदेव, विष्णु " तथा- " अत्यत वृद्ध ,ज्ञानी, विजयशील "-किये हैं। इस कोष के सग्राहक पन्यास- मजी श्री मुक्तिविजयजी है, प्रकाशक-मन्त्री श्री विजयनीति सूरि वाचना- लय गाधीरोड, अहमदाबाद है-डोशी।

सभी अधिकारी देवो के पास, यहा से ले जाई हुई तीर्थंकरो की दाढादि अस्थियें मिल नही सकती । क्योकि चन्द्र, सूर्य व विजयादि देव असंख्य हैं । अत वे अस्थियां सभी के हिस्से मे नही आ सकती और ८ वे शतकानुसार वे अस्थियाँ सख्याता काल से अधिक रह नही सकती । इसलिये समुद्गको मे हड्डियो जैसी आकृति वाले अन्य शाश्वत पुद्गल होना सभवित है और वे उनको पूजनीय समझते हैं, तथा वहा मैथुन क्रिया नही करते आदि वर्णन १९ वे शतक के ५ वे उ. मे बताया है ।

उपरोक्त कथन से सभी अधिकारी देवो के यहा शाश्वत पुद्गल तो होना सभवित ही है और किन्ही देवो को जिन की हड्डिया प्राप्त होती है, वे कुछ काल ठहरती है ।

९७० प्रश्न–'**धूव दाऊणं जिणवराणं**'–यह पाठ आया है । देवलोक मे बादर अग्नि की संभावना नही, फिर धूप देना कैसे सगत होगा ?

उत्तर–मनुष्य क्षेत्र के बाहर तो बादर अग्नि का स्व-स्थान है ही नही, अत. हो नही सकती, परन्तु जिस प्रकार परमाधामी देव अग्नि जैसे अचित्त विकुर्वित पुद्गलो से नारक को दु ख देते हैं, तथा श ६ उ ५ तमस्काय मे देव-असुरादि विद्युत् करते हैं, वैसे ही यहा अचित्त विकुर्वित पुदगलो से धूप-कार्य होना संभवित है । तथा अन्य-अन्य पुद्गलो के पारस्परिक संयोग से दहन धूम्रादि क्रिया हो सकती है । जैसे–सोडा, लिमलेट, फ्रुटसाल्ट, चूना, कास्टिक सोडा आदि पानी के संयोग से भाप, तथा जैसे–तेजाब, कास्टिक सोडा आदि से वस्त्र

चमडी आदि जल जाती है। वैसे ही वहा पुद्गलो के संयोग मे धूप-कार्य भी होना शक्य है।

९७१ प्रश्न–प्रत्येक व्यक्ति की भावनाएँ भिन्न-भिन्न क्यो रहती है ? मिलती-जुलती या एक समान क्यो नही रहती ?

उत्तर–मोहनीय कर्म के कारण जीव मे लालसाएँ उत्पन्न होती है। लालसाओ से चचलता और चचलता से व्यक्ति की भावनाएँ भिन्न-भिन्न प्रकार की होती रहती है। मोह हटने से भिन्नता हट सकती है, अन्यथा नही।

९७२ प्रश्न–शहरो मे प्रेम, शुद्ध आचार-विचार रखना चाहते हुए भी मनुष्य उससे दूर क्यो रहता है ?

उत्तर–शहरो मे शुद्ध आचार-विचार के विपरीत साधन वहुत दृष्टिगोचर होते रहते हैं। उन विपरीत साधनो का अधिक परिचय ही मोह मे सहयोगी बन कर हृदय पर बुरा असर डालता है। जिससे उन अनेक वस्तुओ की प्राप्ति का मूल परिग्रह प्राप्त करने की लालसाएँ उत्पन्न होती है। फिर वे लालसाएँ शुभाचार-विचार को ठहरने नही देती।

९७३ प्रश्न–सत्य इतना कटु क्यो है ?

उत्तर–जैसे ज्वर के जोर से स्वाद बिगडा हुआ होता है, उसको जीवन निर्वाह कारक भोजन-पानादि वस्तुएँ व औषधादि खराब लगती है और अपथ्य एव रोगवर्धक वस्तुएँ अच्छी एव स्वादिष्ट लगती है, वैसे ही कर्म-रोग के प्रभाव से सत्य प्रवृत्तियां कटु लगती है। ऐसा होते हुए भी समझदार व्यक्ति अहित कारक स्वादिष्ट वस्तु को छोड कर हितकारी कटु सेवन करता है, तो

धीरे-धीरे रोग शान्त होकर निरोग हो जाता है। वैसे ही धर्मात्मा जीव, रुचि न होते हुए भी जबरन् ही सत्य का सेवन करता है। वह धीरे-धीरे कर्म-रोग से रहित होता है।

९७४ प्रश्न—रेशम की उत्पत्ति कीड़ो से होती है। ऐसी स्थिति मे भगवान् ने तीन प्रकार के कपडो मे रेशमी कपड़ो का उपयोग क्यो फरमाया ?

उत्तर—दूसरा वस्त्र मिलते हुए रेशमी वस्त्र लेने की मनाई है।

९७५ प्रश्न—"**कैवन्नाजी तणो सौभाग होइजो**"—ऐसा कहा जाता है। परन्तु उनके ४ विवाहित तथा ४ दूसरी, कुल आठ स्त्रिया थी। वे ऐसे व्यभिचारी थे, तो उनकी गिनती पुण्यवान जीवो मे क्यो हुई ? कैवन्नाजी देवलोक मे गये या और कही ?

उत्तर—प्रथम तो कैवन्नाजी की दान कथा की है। पूर्व-भव मे शालीभद्रजी की तरह इन्होंने भी दान दिया। पुण्य के प्रभाव से धनाढ्य सेठ के घर जन्म लिया। ये पहले तो विषय-वासना मे समझते भी नही थे, जिससे अपनी स्त्री से भी निर्लेप रहते थे। इनको जबरन् विषयी लोगो की सगती मे डाल कर विषय-वासना का परिचय कराया। वास्तव मे इन्होंने किसी की इज्जत लेने का विचार भी नही किया, परन्तु इनको अनायास ही सुलभ संयोग पुण्य के प्रभाव से मिलता गया। यावत् आनन्दपूर्वक राज्य-ऋद्धि का अनुभव कर भोग त्यागी बन देवगति मे जाने का सम्भव है।

९७६ प्रश्न–गाय पवित्र और अहिंसक पशु मानी जाती है। परन्तु इसके चमडे को अपवित्र मानते हैं। दूसरी ओर सिंह, बाघादि हिंसक पशुओ के चमडे को पवित्र मानते हैं, इसका क्या कारण ?

उत्तर–चर्म सबधी विचार तो लोगो ने अपने मनमाने ढग से बना लिये हैं। वास्तव मे सिंह-बाघादि का चर्म पवित्र नही है। कम मिलने के कारण लोगो ने उसकी कीमत बढा दी है और कीमत अधिक होने से किसी विशेष व्यक्ति को ही प्राप्त होता है। इत्यादि कारणो से लोगो ने पवित्र मान लिया है। परन्तु सूखे घास (डाभ) जितनी पवित्रता भी कीसी चमडे मे ग्रंथकारो ने नही मानी है।

९७७ प्रश्न–सूत्रो मे दो आषाढ तथा दो पोष कहा बताये हैं ?

उत्तर–सूर्यप्रज्ञप्ति, चन्द्रप्रज्ञप्ति, जबूद्वीपप्रज्ञप्ति आदि सूत्रो मे चन्द्रादि सवत्सर व मासो का वर्णन दिया है। उस गणित के अनुसार प्रत्येक युग के मध्य मे पोष और अन्त मे आषाढ ही बढता है। अर्थात् ३० सूर्यमास मे ३१ चन्द्रमास बनते हैं, अत उस गणित से उपरोक्त अधिक मास ही होते हैं।

९७८ प्रश्न–आपकी दृष्टि से मूल-गुण और उत्तर-गुण शब्दो के अर्थ और इन दोनो की सर्व-सम्मत व्याख्याएँ क्या हो सकती है ?

उत्तर–खास गुणो को मूल-गुण और उसके अश रूप

गुण को उत्तर गुण कहते है। क्योकि साधुओ के छ (पाच महाव्रत तथा रात्रि भोजन त्याग रूप व्रत) व्रत बताये है। उन्ही के विशेष भेद करके श्रावको के बारह व्रत बताये हैं। अत. उन्ही के अश को उत्तर गुण समझना चाहिए।

६७६ प्रश्न–मूलगुण और उत्तरगुण अन्योन्याश्रित है या स्वतत्र रूप से भी स्थायी व सफलता पूर्वक दोनो मे से एक का पालन किया जा सकता है ? यदि किया जा सकता है, तो किसका और कैसे ?

उत्तर–महाव्रतो के बिना साधु हो ही नही सकता। अत' साधु के तो मूलगुण बिना उत्तरगुण नही समझना, परन्तु श्रावक, मूल व उत्तर दोनो मे से किसी एक का भी स्वतत्र रूप से पालन कर सकते है। इसकी सिद्धि के लिये निम्न प्रमाण दृष्टव्य हैं–

(१) भगवती शतक १७ उद्देशक २ "जस्सण एग-पाणाए वि दण्डे निक्खित्ते से ण णो एगतवाले त्ति वत्तव्व सिया"–इसकी टीका–"एकप्राणिन्यपि येन दण्डपरिहार-वृत्तोऽसौ नैकातेन वाल. किं तर्हि ? वालपंडितो विर-त्यशसद्भावेन मिश्रत्वात्तस्य।" इस उपरोक्त पाठ व टीका मे एक भी प्राणी के हनन का जिसने त्याग किया है, उसको वृत्ति अश के सद्भाव से बालपण्डित अर्थात् श्रावक कहा है। यहा आशिक अर्थात् केवल उत्तरगुण रूप प्रत्याख्यान होने पर भी उसको देशवृत्ति माना है।

२ भगवती शतक ७ उ २ की निम्न टीका मे आचार्य

अभयदेवसूरि ने मूलगुण बिना उत्तरगुण होना बताया है।
"देशविरतेषु पुनर्मूलगुणवद्भ्यो भिन्ना अप्युत्तरगुणिनो लभ्यन्ते।"

(३) सटीक–धर्मसग्रह, पचाशक, प्रवचनसारोद्धार आदि मे प्रत्येक व्रत अर्थात् बारह मे से कोई भी व्रत स्वतत्र रूप से या सम्मिलित रूप से ग्रहण करने का स्पष्ट वर्णन है। असयोगिक द्विक-त्रिक यावत् बारह सयोगो तक अनेक भग तथा करण योग की अपेक्षा से करोडो भग बताये हैं। अत मूल बिना उत्तर और उत्तर बिना मूल व कोई भी व्रत स्वतत्र रूप से, आदि से, मध्य से, अंत से तथा सर्व ही एव किसी प्रकार से धारण कर सकते हैं। उपरोक्त प्रमाणो से मूल-गुण के बिना भी उत्तर गुण का पालन कर सकता है। अत श्रावक के पालन मे अन्योन्याश्रित का एकात नियम नही है।

९८० प्रश्न–मूलगुणो और उत्तरगुणो का परस्पर संबंध है या नही ? यदि है, तो कौन से मूलगुणो के साथ किस उत्तर गुण का संबध है ? यदि सबध नही है, तो क्यो ?

उत्तर–उत्तरगुण, मूलगुणो के अंश रूप होने से उनसे सबधित है ही। सभी उत्तरगुण अपेक्षाकृत सभी मूलगुणो से सबधित हो सकते हैं, किन्तु पालन मे एक दूसरे की एकान्त आवश्यकता नही होती। अत इस अपेक्षा से सबधित नही भी होते हैं।

९८१ प्रश्न–" दिग्व्रतमनर्थदडव्रतं च भोगोपभोग-

परिमाण अनुबृहणाद्गुणाना माख्यान्ति गुणव्रतान्यार्य"– आचार्य समन्तभद्र की इस उक्ति से तो यही जाना जा सकता है कि जो अणुव्रतो के गुणो में वृद्धि करे, विशेषता पैदा करे, वे गुण व्रत हैं। इससे यही ध्वनित होता है कि ५ अणुव्रतो के लिये बिना गुणव्रत के किस में विशेपता पैदा करेगे ? आपकी इस विपय मे क्या राय है ?

उत्तर–आचार्य समन्तभद्र की व्याख्या किसी अपेक्षा से मानने मे कोई आपत्ति नही, परतु एकान्त रूप से नही समझनी चाहिए। क्यो कि अनेक शास्त्रीय स्थलो पर दिशिव्रतादि सातो व्रतो को ही शिक्षाव्रत वताये है। ऐसे स्थलो पर गुण वृद्धि की व्याख्या कैसे घटित होगी ? तथा समन्तभद्र की उपरोक्त उक्ति मे 'अणुव्रत' का निर्देश नही है और आत्मिक गुणो की वृद्धि तो उत्तरगुण धारण करने से भी अवश्य होती है।

९८२ प्रश्न–'**परिधय इव नगराणि व्रतानि किलपालयति शीलानि**' आचार्य अमृतचद्र के इस कथन के वारे मे आपकी क्या सम्मति है ? क्या बिना नगर के ही पहले परिधि खीची जायगी ? या नगर वनने के वाद, उसकी विशेष रक्षा के हेतु परिधि की आवश्यकता होगी ? मूलगुणो के अभाव में केवल उत्तरगणो को ग्रहण करने का निरर्थकता के विषय मे आचार्यो की क्या धारणाएँ रही है ?

उत्तर–आचार्य अमृतचद्र की सदृष्टातिक व्याख्या भी किसी अपेक्षा से ही ठीक समझी जा सकती है, क्योकि दृष्टान्त

प्राय एक-देशीय होते हैं। जैसे व्यवहार समकित के ६७ बोलो मे धर्म रूप नगर के समकित रूप प्रकोट (परिधि) बताया है। यहा देश व सर्व व्रत्ति धर्म रूप नगर न होने वाले के भी समकित रूप परिधि मानी है। अर्थात् व्रत रूप नगर बिना बनाये ही पहिले परिधि खीच लेता है। अत यह उदाहरण सर्वांगी न समझनी चाहिए।

९८३ प्रश्न–क्या हिसा, झूठ, चोरी, व्यभिचार और परिग्रह के त्याग की भावना जाग्रत हुए बिना, किसी व्यक्ति का केवल उत्तरगुणो का पालन वास्तविक रूप से सार्थक कहा जा सकता है? क्या उत्तरगुणो के पालन करने मे मूलगुणो की उपेक्षा की जा सकती है?

उत्तर–हिसादि पाप त्याग की भावना जाग्रत हुए बिना तो किसी भी मूल व उत्तरगुण का पालन वास्तविक रूप से सार्थक नही कहा जा सकता। रही बात पालन की, सो कोई मूल, कोई उत्तर और कोई उभय रूप गुणो का शक्यानुसार पालन करते हैं। इन सभी को वास्तविक ही समझना। क्यो कि उत्तरगुण पालक के मूलगुण की अपेक्षा (आकाक्षा) बनी रहती है, उपेक्षा नही। उपेक्षा तो उनके मूलगुणो की तो क्या, मुनि विरति की भी नही रहती। कारणवश वर्त्तमान मे पालन करने मे असमर्थ है। अत केवल उत्तरगुण का पालन भी वास्तविक ही समझना।

९८४ प्रश्न–क्या यह धारणा सही है कि मूलगुण के पालन किये बिना ही केवल उत्तरगुणो के पालन से मुनि तो

नही कहला सकता, परन्तु व्रतधारी श्रावक कहला सकता है ? या साधु तो नही पर व्रतधारी श्रावक रह सकता है ? भावनात्मक दृष्टि से साधु के लिये मूलगुणो की अनुपेक्षा और व्रतधारी श्रावक के लिये उनकी उपेक्षा करने का क्या कारण है ? एव साधु और श्रावक मे साधना की दृष्टि से ऐसा भेद मानना क्या उचित होगा ?

उत्तर–केवल उत्तर गुण का पालक भी व्रतधारी श्रावक कहला सकता है। यह धारणा सही है।

६८५ प्रश्न–भगवती सूत्र श. ७ उ. २ के पाठ **"सव्वथोवा जीवा मूलगुणपच्चक्खाणी उत्तरगुण पच्चक्खाणी असंखेज्जगुणा, अपच्चक्खाणी अणंतगुणा"** का वास्तविक अभिप्राय क्या लिया जाना चाहिये ? प्राणियो के प्रत्याख्यान-अप्रत्याख्यान की दृष्टि से अल्प-बहुत्व (न्युनाधिक्य) के अतिरिक्त क्या यह अभिप्राय भी घोषित होता है कि मूलगुणो के बिना भी केवल उत्तरगुणो का पालन करने वाला रह सकता है और वह पचम गुणस्थानवर्ती श्रावक या पष्ठ गुणस्थानवर्ती महाव्रती साधु माना जा सकता है ?

उक्त पाठ में उत्तरगुणियो को असख्यातगुणे अधिक बतलाए गये हैं। उसका यह अभिप्राय क्यों नही लिया जाय कि सब मे कम केवल मूलगुणो का पालन करनेवाले हैं और उनसे असख्यात गुणे अधिक मूलगुणो सहित उत्तरगुणो के पालन करनेवाले हैं ? अन्यथा चतुर्विध संघ की वैयावृत्य तपस्या के रूप में तथा महाव्रती मुनि को सूझता आहारादि

देकर अतिथिसविभाग व्रत के रूप मे उत्तरगुणो का पालन करते हुए श्रेणिक नृप व श्री कृष्णजी को अविरति, अपच्चक्खाणी चतुर्थ गुणस्थानवर्ती ही क्यो कहा गया ? क्या मूलगुणो का अभाव ही इस कथन का कारण नही है ?

उत्तर–मूलगुण के अतिरिक्त केवल उत्तरगुण वाले लिये बिना, यह अल्प-बहुत्व बराबर घटित नही होता । क्योकि–'**मूल-गुणपच्चक्खाणी**' का पाठ होने से मूलगुण प्रत्याख्यानो मे सभी मूलगुणियो का समावेश है, अर्थात् उत्तर सहित मूल वाले भी अलग नही रह सकते और ऐसे ही उत्तरगुणी मे सभी (मूल सहित तथा केवल) उत्तरगुणी समझने चाहिए । उत्तर-गुणो मे मूल सहित उत्तरगुणी ही लेने से मूलगुणी से उत्तर-गुणी कम होते हैं । अत मूल बिना भी केवल उत्तरगुणी होना मानने पर उत्तरगुणी असख्याते बन सकते हैं, तथा आचार्य अभय देव ने इसी पाठ की टीका मे श्रावक के मूल बिना भी उत्तरगुण होने का स्पष्ट निर्देश किया है ।

वैयावृत्य, दानादि करते हुए भी देशविरति के भाव एव देशविरति को ग्रहण किये बिना पचम गुणस्थानवर्ती नही कहे जा सकते । अत श्रेणिक, कृष्णजी के बारे मे भी यही समझना चाहिए ।

९८६ प्रश्न–प्राचीन आचार्यों के विचारानुसार व्रती श्रावक होने मे पहले सम्यक्त्वी होना आवश्यक है और सम्यक्त्वी होने से पहिले मार्गानुसारी के ३५ गुणो के अनुसार न्याय-सम्प न्नता, पाप-भीरुता, अगर्हित कार्य प्रवृत्ति, दीर्घदर्शिता, धर्मार्थ काम-

साधन आदि गुणो का होना आवश्यक माना गया है। ऐसी दशा मे हजारो मजदूरो का शोषण करने वाला मिल मालिक या ब्लैक-मार्केट आदि अन्यायपूर्ण साधनो से धन कमाने वाला व्यापारी, क्या एक वनस्पति का त्याग कर देने मात्र से व्रती श्रावक की कोटि मे गिना जा सकता है ?

वर्तमान युग के एक सम्यक्त्वधारी, वधिक, शोषक, अन्यायी व्यापारी या रिश्वतखोर के क्रूर हृदय मे क्या अनर्थ-दण्ड विरमण व्रत या सामायिक व्रत के प्रति निष्ठा रह सकती है ? क्या आप उसे केवल सामायिक आदि क्रियाएँ कर लेने से पचम गुणस्थानवर्ती श्रावक मान लेंगे ?

भी श्रावक माना जाता है, वैसे ही भाव से सामायिक, हरी त्याग आदि करने वाले को देश विरति क्यो न समझा जाय ? पाचवे गुणस्थान के असख्य स्थान और करोड भांगे हैं, उनमे से जैसे उनके भाव व त्याग होगे, उसी श्रेणी का श्रावक गिना जायगा। अपने त्याग के अतिरिक्त जितना आरम्भ-समारम्भादि करेगा उसका पाप तो उसको लगेगा ही, परन्तु देश-विरति की कोटि मे नही गिनना, यह आगम सम्मत नही है।

प्रश्न ६८७–"**एयारिसे पंचकुसीलसवुडे**" (उत्तराध्ययन सूत्र) "**हिंसानृतस्तेयाब्रह्मपरिग्रहेभ्यो विरतिर्व्रतम्**" (तत्वार्थ सूत्र) **हिसानृतचौर्येभ्योमैथुनसेवापरिग्रहाभ्या च। पापप्रणालिकाभ्यो विरतिः सज्ञस्य-चारित्र**" (रत्नकरण्ड श्रावकाचार) इत्यादि शास्त्रो और धर्मग्रथो के पाठानुसार हिंसादि ५ महापापो से विरत होने वाले को व्रती, चारित्री, विरत या सव्रत कहा गया है, अत इन ५ पापो मे लगे रहने वाले को अविरत, असव्रत आदि कहा जायगा और इन्ही ५ पापो से अंशत विरत और अशत अविरत होने वाले को विरताविरत, चारिताचरित्ते, धम्माधम्मे या सवुडासवुडे कहा जायगा। ऐसी दशा मे इन ५ पापो से सर्व प्रथम देशत विरत हुए विना अर्थात् देश मूलगुणो के ग्रहण किये बिना सिर्फ उत्तरगुणो का पालन करने वाला विरता-विरत श्रेणी मे कैसे कहा जा सके ?

उत्तर–इसमे भी हिंसादि के अशत त्यागी को देश-विरत माना है । वाला भी हिंसादि का अशत

क्षयोपशम समकित मे है ?

समाधान–क्षयोपशम सम्यक्त्व एक भव मे उत्कृष्ट प्रत्येक हजार वार आती है आदि, आपका कहना ठीक है । वेदक समकित को क्षयोपशम सम्यक्त्व मे गिनते है अर्थात सातो भागे क्षयोपशम सम्यक्त्व के गिने जाते हैं । इस प्रकार गिनने से कोई वाधा पैदा नही होती और बोल भी बराबर बैठता है ।

९९१ प्रश्न–सम्यक्त्व-मोहनीय प्रकृति किस तरह समझना ? तत्त्व-चर्चा मे शकादि उत्पन्न हो, क्या वह सम्यक्त्व मोहनीय का कारण नही ? यदि है, तो फिर विपाकोदय क्यो नही ? सम्यक्त्व-मोहनीय का उदय ७ वे गुणस्थान तक कर्मग्रंथ मानता है और क्षयोपशम मे इसकी नियमा होना सम्भव है । प्रदेशोदय का अनुभव कैसे हो सकता है ? अत विपाकोदय मे क्या वाधा है ?

उत्तर–तत्त्वचर्चा मे जो शकादि उत्पन्न होती है, वह समकित मोहनीय है और उसमे समकित मोहनीय का विपाकोदय होता है । यह विपाकोदय पहिले बताये हुए सात भागो मे से प्रथम के ३ भागो को छोड कर शेष ४ भागो मे होता है ।

"सागारो व उत्तेसिज्जइ"-इस पाठ से पाया जा
साकार उपयोग मे ही जाते हैं। शेष चारो गति मे जाने वा
जीवो का मरण साकार व अनाकार-दोनो मे से किसी उपयोग मे
हो सकता है। यह बात भगवती श. १३ उ. १, २ मे तथा ठाणा
२-४ से स्पष्ट है।

६६३ प्रश्न-विपाक सूत्र का अध्ययन नंदीजी व विपाक मे २० आया और समवायाग ५५ वां मे ११० अध्ययन कैसे ? क्या यह विरोध नही ?

उत्तर-जिस प्रकार विपाक सूत्र के २० अध्ययन नन्दी व विपाक सूत्र मे बताये हैं, उसी प्रकार समवायाग सूत्र मे १२ अगो के वर्णन के अन्तर्गत विपाक के वर्णन मे २० अध्ययन ही विपाक सूत्र के बताये है।

भगवान् महावीर के ९ वाचनाएँ हुई थी, जिसमे किसी अन्य वाचना के अधिक अध्ययन हो सकते है।

गणधर तो १२ ही अगो का निर्माण भगवान् को केवल-ज्ञान होने के बाद शीघ्र ही कर देते है। ५५ वे समवायाग मे भगवान् महावीर ने पुण्य व पापफल-विपाक के जो पचपन पचपन फरमाये, सो तो वह भगवान् महावीर के जीवन की

अतिम रात्रि थी, अत उन २० अध्ययनो से यह ११० भिन्न हैं। वे २० अध्ययन तो मृगालोढादि का स्वरूप देख कर गौतम-स्वामी के पूछने पर भगवान् ने अपनी आयु के मध्य मे व भिन्न-भिन्न ग्रामो मे पूछे तथा बताये हैं +।

पुण्य व पाप फल के विपाक की कथा तो अनेक (अगणित) हैं, उनमे से जैसा कहने का प्रसग देखते है वही तथा उतनी ही फरमाते हैं, इसमे कोई विरोध की बात ही नही।

९९४ प्रश्न—तीर्थङ्कर की मोजूदगी मे पाचो पद मिलते हैं या नही ?

उत्तर—तीर्थंकर को केवलज्ञान होकर शासन चालू होने के बाद तीर्थंकर की मोजूदगी तक ४ पद तो वहा मिलते हैं, क्योकि जो गणधरादि होते है, वे आचार्य और उपाध्याय रूप होते हैं और समझे भी जाते है और सिद्ध, सिद्ध क्षेत्र मे मिलते ही हैं। इस प्रकार पाचो पद अवश्य मिलते हैं।

९९५ प्रश्न—सलीलावती विजय तथा समुद्र एक-एक हजार योजन गहरे हैं, तो फिर विजय की नदियें समुद्र मे कैसे मिलती हैं ? अर्द्ध पुष्कर द्वीप की नदियें किसमे मिलती है ?

जिस प्रकार भूमिगत रास्ते बद पानी आज भी इस प्रकार ‾U‾ जाता दिखाई देता है, उसी प्रकार तथा सीधा भूमिगत रास्ते सलिलावती विजय की नदियो का पानी सीतोदा नदी के नीचे के भाग मे या समुद्र मे सीधा जा सकता है।

+ ये ११० अध्ययन तो अतिम रात्रि मे एव एक ही ग्राम मे कहे। अत स्पष्ट रूप से भिन्न है।

९९६ प्रश्न-मरण के दो भेद समोहिया और असमो-हिया आये हैं। उसमें आत्म-प्रदेश किस प्रकार निकलते हैं? इसका विशेष खुलासा व मरण का स्वरूप फरमावें।

उत्तर-मरने वाला जीव जिस स्थान हो, उस स्थान से लेकर जहा उत्पन्न होगा, वहाँ तक मोटाई व चौडाई यहा के शरीर जितनी, उसके जीव-प्रदेशो की ऐसी लाइन समोहिया मरण मे हो जाती है। असमोहिया मरण मे सब प्रदेश एक साथ निकल जाते हैं। दूर जाना हो, तो रास्ते मे उन प्रदेशो का आकार, यहा के शरीर की लम्बाई-चौडाई व मोटाई जितना रहता है। बिलकुल समीप जाना हो, तो बात निराली।

९९७ प्रश्न-अरिहत भगवान् के १२ गुण हैं, जिनमे देवकृत भी शामिल है, सो कैसे?

उत्तर-तीर्थंकर नाम-कर्म के प्रभाव से देव प्रातिहार्य बनाते हैं। यह उन तीर्थंकरो की शुभ प्रकृति का ही प्रभाव है, देवो का नही। सभी केवलियो का ज्ञान समान होते हुए भी

१००१ प्रश्न–जघन्य १, २, ३ यावत् उत्कृष्ट सख्याते जीव उत्पन्न होते हैं, उसमे जघन्य, उत्कृष्ट और ओघिक के कितने-कितने गम्मे होते हैं ?

उत्तर–जघन्य १, २, ३ उत्कृष्ट सख्याते जीव उत्पन्न होते हैं, उनके ९५० गम्मे हैं, जिसमे ओघिक के ३२६, जघन्य के ३०५ और उत्कृष्ट के ३१९ गम्मे है।

१००२ प्रश्न–जघन्य १, २, ३ यावत् उत्कृष्ट असख्याते जीव उत्पन्न होते हैं, उसमे जघन्य, उत्कृष्ट और ओघिक के कितने-कितने गम्मे होते है ?

उत्तर–जघन्य १, २, ३ उत्कृष्ट असंख्याते जीव उत्पन्न होते हैं, उनके १७५५ गम्मे है, जिसमे ओघिक के ५८७, जघन्य के ५६० और उत्कृष्ट के ६०८ गम्मे हैं।

१००३ प्रश्न–मनुष्य मे औदारिक के दण्डको मे जीव आते हैं, उसके ८४ गम्मे लिये हैं, तो सख्याते और असख्याते जीव कितने गम्मो मे उत्पन्न होवे, तथा सख्याते और असख्याते के कौन-कौन से गम्मे है–९ गम्मो मे से ?

उत्तर–मनुष्य मे औदारिक के दण्डको से जीव आते हैं, उसके ८४ गम्मे लिये हैं, जिसमे पृथ्वीकाय के जीव मनुष्य में तीसरे, छठे और नौवे गम्मे मे संख्याते तक उत्पन्न हो सकते हैं, एव अप्, वनस्पति, बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चौरेन्द्रिय, असन्नी और सन्नी तिर्यंच पचेद्रिय, यह मनुष्य मे उपरोक्त तीन-तीन गम्मे गिनने से २४ गम्मे हुए। असन्नी मनुष्य केवल एक तीसरे गम्मे मे ही संख्याते तक समझना, एवं २५ गम्मे हुए और सन्नी

मनुष्य, मनुष्य के नो ही गम्मो मे सख्याता तक ही उत्पन्न होते हैं, एव ३४ गम्मो मे सख्याता तक और शेष ५० गम्मो मे असख्याते उत्पन्न हो सकते है ।

नाट–शास्त्रकार औघिक गम्मो को कही भी नही तोडते है । अत उपरोक्त प्रश्नो के उत्तर मे गम्मो की सख्या तदनुसार ही बताई है और थोकडे वाले दूसरी प्रकार कहते हैं सो ज्ञात रहे ।

१००४ प्रश्न–सज्ञी-मनुष्य पहली नरक मे जावे, उसके १० नाणत्ते बताये, जिसमे जघन्य के ३ गम्मो मे ८ नाणत्ते बताये और समुद्घात की धारणा किसी की तीन की व किसी की पाँच की है, क्योकि जघन्य अवगाहना प्रत्येक अंगुल मानी है, उसमे तेजस् की व वैक्रिय-समुद्घात पा सकती है ?

उत्तर–सज्ञी मनुष्य पहली नरक मे जावे, उसके ८ नाणत्ते बताये है, जिसमे से जघन्य ३ गम्मो मे ५ नाणत्ते है । उसकी प्रत्येक अगुल की अवगाहना होते हुए भी वैक्रिय और तेजस्-समुद्घात युक्त ५ समुद्घात भगवती के मूल-पाठ मे बताये है ।

१००५ प्रश्न–असज्ञी तिर्यंच पहली नरक मे जावे, तो सख्याते जावे या असख्याते ?

उत्तर–असज्ञी तिर्यंच पचेन्द्रिय पहली नरक मे एक समय मे असख्याते जा सकते है । भ. श २४ उ. १ तथा श. १३ उ १ मे इसका खुलासा बताया है ।

१००६ प्रश्न–अगुल के असख्यातवे भाग की अवगाहना

वाला, तिर्यंच नरक मे नही जाता, परन्तु नरक मे जाने वाले तिर्यंच की ऋद्धि है—ऐसा "शीघ्र बोध" मे है, सो कैसे ?

उत्तर—अगुल के असंख्यातवे भागवाला तिर्यंच नरक मे जा सकता है—ऐसा भ. श २४ आदि से स्पष्ट है। यदि "शीघ्र बोध" मे निषेध भी किया हो, तो वह निषेध करना ठीक नही—ऐसा समझना चाहिये।

१००७ प्रश्न—ढाई द्वीप बाहर वर्षा होवे या नही ? स्थल-चरादि क्या खाते हैं ?

उत्तर—देवादि बरसा दे, तो बात निराली, परन्तु स्वाभाविक वृष्टि मनुष्य-क्षेत्र के बाहर नहीं होती। जैसे—यहाँ पद्मद्रह आदि मे पानी उत्पन्न होता है, वैसे वहा (मनुष्य क्षेत्र के बाहर) भी पृथ्वी के अनेक स्थानो पर पानी उत्पन्न होता है। उन सजल स्थानो मे वनस्पति भी उत्पन्न होती है, ऐसी सभावना है। उस पानी व वनस्पति आदि से स्थलचरादि तिर्यंचो का निर्वाह होना सम्भव है।

१००८ प्रश्न—ज्योतिषियो का उद्योत १०० योजन ऊँचा और १८०० योजन नीचा आया है, तो क्या शनिश्चर के तारे का प्रकाश भी ऊंचा १०० योजन होता है और चन्द्रमा समभूमि से ८८० योजन और सलिलावती विजय समभूमि से १००० योजन ऊँची है, तो चन्द्रमा का प्रकाश पूरी विजय मे पडता है या नही ?

उत्तर—ऊँचे लोक मे काल-द्रव्य नही होता, ऐसा शास्त्रो मे खुलासा है। अत शनिश्चर के तारे का प्रकाश ऊँचा उस

विमान की ध्वजा पताका तक ही समझना, अधिक नही। चन्द्रमा का प्रकाश सम्पूर्ण सलीलावती विजय मे समझना अर्थात् चन्द्रमा का प्रकाश भी ऊँचा-नीचा मिलाकर १९०० योजन समझना चाहिये ।

१००९ प्रश्न–वेदनीय कर्म की उदीरणा प्रथम से षष्टम गु तक अवश्य होती है या नही ? पुलाक-निग्रंथ मे उदीरणा, आयुष्य-वेदनीय छोड कर के छ कर्मों की मानी है, तो क्या पुलाक मे केवल एक ७ वां गु ही सभव है ? उदीरणा का पूरा खुलासा सूत्रो मे कहा मिलता है ? शेष नियठो मे भी कितने-कितने गु सभव है ? पुलाक-लब्धि मात्र शक्ति को कहते हैं अथवा लब्धि के प्रयोग करने को ? लब्धि-प्रयोग से इतना भयकर विनाश करने पर भी क्या निग्रंथ रह सकता है ? लब्धि का प्रयोग क्या अप्रमत्त अवस्था मे होता है ?

उत्तर–पहिले गु. से छठे गु. तक वेदनीय-कर्म की उदीरणा होना अवश्य सभव है, क्योकि पहिले से छठे गु तक, तीसरे गु को छोड कर ७ तथा ८ कर्मों की उदीरणा बताई है। यदि वेदनीय-कर्म उदीरणा की आवश्यकता न होती, तो ७, ८ तथा ६ कर्मों की उदीरणा बताते, परन्तु ऐसा नही बताया। अत वेदनीय की उदीरणा अवश्य सभव है। इस उदीरणा आदि को देखने से पुलाक मे एक सातवा गु. ही मालूम होता है। कई पन्नो व पुस्तको मे दो गु भी पुलाक मे बताये। खास ज्ञानी जाने। उदीरणा का वर्णन कर्मग्रथादि ग्रथो मे है, परन्तु सूत्रो मे देखने मे नही आया।

बकुश और प्रतिसेवना मे छठा और सातवा ये २ गु.

हैं। कषायकुशील मे छठे से १० वे तक पाच गु हैं। निर्ग्रंथ मे ११ वाँ और १२ वा-ये दो गु. हैं। स्नातक मे १३ वा और १४ वा-ये दो गु. हैं।

लब्धि की शक्ति मात्र को ही पुलाक कहते, तो पुलाक-स्थिति अन्तर्मुहूर्त की ही न होकर अधिक होती-ऐसा सभव है। अत यहा किसी खास कारणवश लब्धि आदि काम मे लाने का विचारादि करने से वह पुलाक कहलाता है-ऐसा समझना। इसमे कुछ समय का चारित्र नष्ट होता है, परतु उनके भाव आलोचनादि द्वारा शुद्ध होने के हो, और वे तुरत ही उन अविशुद्ध भावो की आलोचनादि कर के उस चारित्र को पुनः साध लें (विशुद्ध बना ले) तो वे कषाय-कुशील हो जाते हैं। यदि तुरत न संभले, तो वे असयमी बन जाते है। पुलाकपन मे काल नही करते। अत यहा असयमी बनने का अर्थ सयम से गिर कर असयमी हो जाते हैं-ऐसा समझना।

शका-भगवती श. ३५ वा मे एकेन्द्रिय मे वेदनीय आयुष्य की उदीरणा होवे और नही भी होवे-ऐसा मूल मे आया है। सो यह किस प्रकार है?

समाधान-गुणस्थान-द्वार आदि से छठे गु तक वेद-नीय-कर्म की उदीरणा 'अवश्य संभव है'-ऐसा जो पहिले मैंने कहा, वह ठीक नही। भगवती की तरफ लक्ष्य न देने से यह भूल हो गई है। वेदनीय-कर्म उदीरणा की छठे गु. तक नियमा नही-यह धीगडमलजी सा. का कहना ठीक है, जो भगवती के ११ वे तथा ३५ वे आदि शतकी से स्पष्ट होता

है तथा इन प्रमाणो से पुलाक मे छठा गु. होने मे कोई बाधा नही दिखाई देती।

१०१० प्रश्न—क्या छठे गु. के चारित्र-पर्यव सातवे गु. के चारित्र-पर्यवो से भी अधिक हो सकते है ? क्योकि जीव छठे गु मे आने के पहले ही सातवा फरसता है और छठे में उत्कृष्ट कुछ न्यून क्रोड पूर्व तक रह सकता है, तो क्या इतने वर्षों की पर्याय अनुभव से भी नवदीक्षित का स्थान विशेष होता है ?

उत्तर—हां, किसी एक सप्तम गुणस्थानवर्ती जीव के चारित्र-पर्यवो से छठे गुणस्थानवर्ती जीव के चारित्र-पर्यव अधिक भी हो सकते हैं।

छठे गु में देशोन पूर्वकोटी तक रहने का तो कहते ही हैं, परन्तु भगवती श ३ उ. ३ के पाठ की टीका मे टीकाकार कहते है कि प्रमत्त, अप्रमत्त गु. को जीव अन्तर्मुहूर्त मे बदल देता है। इस प्रकार दोनो मे से प्रत्येक में अन्तर्मुहूर्त रहते रहते देशोन पूर्वकोटी तक रह सकते हैं—ऐसा भी कहते है। सातवे गु के अन्तर्मुहूर्त से छठे गु. का अन्तर्मुहूर्त बडा है।

१०११ प्रश्न—मनुष्य तथा तिर्यंच पचेन्द्रिय के वैक्रिय शरीर की स्थिति भगवती श. ८ उ. ९ मे वायुकाय की तरह अन्तर्मुहूर्त की बताई, तथा जीवाभिगम सूत्र मे मनुष्य की वैक्रिय की स्थिति ४ मुहूर्त की बताई, सो क्या कारण है ?

उत्तर—इस विषय मे निम्न गाथा उल्लेखनीय है—

"भिन्नमुहूत्तो नरएसु, होति तिरियमणुएसु चत्तारि।
(देवेसु) अद्धमासो, उक्कोस विउव्वणा भणिया" ॥२॥

कल्पातीत ही होते है। जो केवली होते हैं, वे या तो दोनों (स्थित और अस्थित) कल्प के पालने वालो मे से या तीर्थंकर (कल्पातीत) मे से होते है। अत स्नातक में तीन कल्प गिने गये है। केवली होने पर भी वे अचेल, औद्देशिक, शय्यातर-पिंडादि कई कल्प पालते है। जैसे-प्रभु के लिये बना हुआ कोलापाक लाने का प्रभु ने निषेध किया था, अर्थात् कल्पातीत होने पर भी वे अपने केवलज्ञान के द्वारा कई मर्यादाएं पालना आवश्यक समझते हैं। सूत्र की मर्यादा उनको बाध्य नही करती, परन्तु कल्पातीत के लिये जो मर्यादा पालना केवलज्ञान मे आवश्यक समझते है, उनका वे बराबर पालन करते हैं, तथा कई व्यावहारिक मर्यादाएँ छद्मस्थो के हित के लिये भी वे आवश्यक समझकर पालन करते हैं। अत कल्पातीत होते हुए भी कई वाह्य मर्यादाओ के पालकादि कारणो से उनमे शेष दो कल्प भी गिनने का सभव है।

१०१४ प्रश्न-असोच्चा केवली, प्रतिपाती समदृष्टि ही होता है क्या? और केवल-पर्याय मे कितना काल रह सकते हैं? अनादि काल का मिथ्यादृष्टि भी अन्तर्मुहूर्त मे मोक्ष जा सकता है?

उत्तर-प्रतिपाती सम्यग्दृष्टि और अनादि मिथ्यात्वी दोनो ही प्रकार के जीव, समकित प्राप्त कर असोच्चा केवली हो, शीघ्र ही मोक्ष पा सकते हैं। अर्थात् अनादि मिथ्यात्वी प्रथम समकित प्राप्त कर अन्तर्मुहूर्त मे भी मोक्ष जा सकते हैं। असोच्चा केवलियों का आयु अल्प हो, तो वे उसी लिंग से मोक्ष

उववाई सूत्र। तापसो को क्रिया आदि के आराधक होते हुए भी परलोक के आराधक नही बताये। इसी प्रकार क्रिया के आराधक हो सकते हैं। इस भागे का अर्थ टीका मे दूसरी प्रकार किया है।

प्राप्त हुए ज्ञानादि को नही पाले या प्राप्त ही नही हुए हो, उसको विराधक कहते हैं।

दूसरे भागो मे टीका व टब्बाकारो ने अविरत सम्यग्‌दृष्टि बताये है। चारित्र प्राप्ति के अभाव को भी विराधना ऊपर बताई है, तदनुसार यहा चारित्र अप्राप्ति रूप तीसरे भागे की विराधना समझना। चौथे भागे मे ज्ञानादि तीन की ही अप्राप्ति रूप विराधना समझना और प्राप्त हुए बिना आराधना हो नही सकती, अत यहा आराधना के अभाव मे विराधना बताई है।

१०१६ प्रश्न—सातवे से बारहवे गु शुभयोग पडुच्चय माना है, तो फिर वहा बोल-चाल मे असत्य तथा मिश्र मन-वचन के योग कहते हैं, सो कैसे ?

उत्तर—भगवती—श उ १ की "नहिनामाऽनाभोगः छद्मस्यस्येहकस्य"

इस टीका मे किसी छद्मस्थ के आनाभोग नही है—ऐसी बात नही, अपितु है ही। इस प्रकार अनाभोग से तथा छद्मस्थता के कारण कोई वस्तु सम्बन्धी अवास्तविकता रह जाने से असत्य व मिश्र मन तथा वचन योग उनमे घटित हो सकते हैं। अप्रमत्त मे इसके अतिरिक्त अन्य रूप से घटित नही हो सकते।

उववाई सूत्र। तापसो को क्रिया आदि के आराधक होते हुए भी परलोक के आराधक नही बताये। इसी प्रकार क्रिया के आराधक हो सकते हैं। इस भागे का अर्थ टीका मे दूसरी प्रकार किया है।

प्राप्त हुए ज्ञानादि को नही पाले या प्राप्त ही नही हुए हो, उसको विराधक कहते है।

दूसरे भागो मे टीका व टब्बाकारो ने अविरत सम्यग्‌दृष्टि बताये है। चारित्र प्राप्ति के अभाव को भी विराधना ऊपर बताई है, तदनुसार यहा चारित्र अप्राप्ति रूप तीसरे भागे की विराधना समझना। चौथे भागे मे ज्ञानादि तीन की ही अप्राप्ति रूप विराधना समझना और प्राप्त हुए बिना आराधना हो नही सकती, अत यहा आराधना के अभाव मे विराधना बताई है।

१०१६ प्रश्न—सातवे से बारहवे गु. शुभयोग पडुच्चय माना है, तो फिर वहा बोल-चाल मे असत्य तथा मिश्र मन-वचन के योग कहते हैं, सो कैसे ?

उत्तर—भगवती—श. उ १ की "नहिनामाऽनाभोगः छद्मस्थस्येहकस्य"

इस टीका से किसी छद्‌मस्थ के आनाभोग नही है—ऐसी बात नही, अपितु है ही। इस प्रकार अनाभोग से तथा छद्मस्थता के कारण कोई वस्तु सम्बन्धी अवास्तविकता रह जाने मे असत्य व मिश्र मन तथा वचन योग उनमे घटित हो सकते हैं। अप्रमत्त मे इसके अतिरिक्त अन्य रूप से घटित नही हो सकते।

१०१७ प्रश्न—सकाम और अकाम-निर्जरा किसे कहते हैं और इसका विशेष खुलासा कहा है ?

उत्तर—कर्म-क्षय (आत्म-विशुद्धि-निर्जरा) की अभिलाषा से जो निर्जरा करते है (होती है) उसे 'सकाम' और दूसरी को 'अकाम-निर्जरा' कहते हैं। भव्यत्व के परिपाक एव समकिताभिमुख होते (अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण के) समय जीव को कुछ उज्ज्वल बनाने मे सहायक बन जावे, यह बात निराली है, अन्यथा वास्तविक सकाम-निर्जरा मिथ्यात्वी के होने का सभव नही। वास्तविक सकाम-निर्जरा चौथे से १४ वे गु तक होती है। इसका विशेष खुलासा कही होगा, मेरे देखने मे नही आया।

१०१८ प्रश्न—शुक्लपक्षी समदृष्टि का ससार-परित होना अनुक्रम से मानते हैं, इसका क्या प्रमाण ? शुक्लपक्षी का काल यदि नियत अर्द्धपुदगल-परावर्त्तन ही है, तो फिर ससार-परित करते समय कौनसा ससार घटाता है ? और ऐसी मान्यता भी है कि समकित प्राप्ति के साथ ही शुक्ल-पक्षी होता है व ससार-परित्त मिथ्यात्व अवस्था मे भी कर सकता है, सो कैसे ?

उत्तर—भगवती श १३ तथा २६ एव दशाश्रुतस्कध के छठे अध्ययन की टीका आदि मे स्पष्ट है कि जिस जीव के अर्द्धपुद्गल-परावर्त्तन मे किंचित् भी न्यून संसार रह जाता है, तब से वह शुक्ल-पाक्षिक गिना जाता है।

कृष्ण-पाक्षिक का शुक्ल-पाक्षिक होता है, तब मिथ्यात्व

अवस्था मे ही होता है। किसी जीव को तो शुक्ल-पाक्षिक होते ही शीघ्र समकित प्राप्त हो जाती है और किसी को विलब से। विलब मे भी किसी को एक भव बाद, किसी को दो भव बाद यावत् किसी को अतिम भव मे प्राप्त हो सकती है, परतु होगी शुक्ल-पाक्षिक होने के बाद ही। जिस जीव को शुक्ल पाक्षिक होने के बाद जल्दी समकित आगई होगी, वह जीव तो प्रतिपाती होकर अवश्य अनन्तकाय मे जावेगा। ऐसी दशावाले का संसार परित नही हुआ समझना। असख्य काल से अधिक संसार-परित वाला ससार मे नही रहता और अनन्तकाय मे नही जाता। अत यह ससार-परित समकित प्राप्ति के बाद ही होता है। समकित वाले के तो अनन्त ससार भी शेष माना जा सकता है, परन्तु परित वाले के नही। इस अपेक्षा से ससार घटना बताया है। भ श. ३ उ. १ मे सनत्कुमार इद्र, भव सिद्धिक है, इत्यादि १२ बोल की पृच्छा मे समदृष्टि के बाद ही परित-ससारी का वर्णन आया है। इससे स्पष्ट है कि समकित प्राप्ति के बाद ही परित ससारी होता है, पहिले नही।

श २३ मे आयुकर्म आश्री कृष्ण-पाक्षिक के भग बताये हैं, तथा मिथ्यादृष्टि व अज्ञानी के भागो को देखने से स्पष्ट पता चलता है कि मिथ्यात्वी, समदृष्टि होकर उसी भव मे मोक्ष जा सकता है, परन्तु कृष्ण-पाक्षिक का शुक्ल-पाक्षिक होकर उसी भव मे नही जा सकता। अत शुक्ल-पाक्षिक पहिले ही होता है।

१०१९ प्रश्न—पन्ना मे साधु नदी उतरे, तो उसका

प्रायश्चित्त किस सूत्र मे चला है ?

उत्तर–नदी उतरने के नाम से स्वतत्र प्रायश्चित्त वर्णन तो मेरे देखने मे नही आया, परन्तु नदी उतरने से अप्‌काय, वनस्पतिकाय और बेइन्द्रिय आदि त्रसकाय की जो विराधना होती है, उसका प्रायश्चित्त अवश्य करना ही चाहिये। यत्नापूर्वक गोचरी गये हुए साधु के–"**पाणक्कमणे, बीयक्कमणे**" आदि हुआ हो, ऐसा ध्यान मे न होते हुए भी ईर्यावही पडिक्कमण प्रायश्चित्त रूप मे करते हैं। अर्थात् गौतमादि गणधर जैसे सावधानी रखने वाले महापुरुष भी दृश्य विराधना ध्यान मे न होते हुए भी ईर्यावही प्रतिक्रमण–प्रायश्चित्तरूप मे करके मिच्छामी दुक्कडं देते हैं, तो फिर नदी उतरने मे तो अवश्य विराधना दिखाई देती है, इसमे प्रायश्चित्त कैसे नही ? अर्थात् है ही।

एक महीने मे ३ और वर्ष मे १० उदकलेप लगाने मे शबल-दोष होना बताया है। महीने मे २ और वर्ष मे ६ लगाने से शबल दोष तो नही, परतु दोष तो है ही। जब दोष है, तो प्रायश्चित्त भी अवश्य है ही। जैसे गोचरी की प्रभु-आज्ञा होते हुए भी ईर्यावही पडिक्कमण रूप तथा मिच्छामि दुक्कड रूप दड है, वैसे ही आवश्यकता से विधि अनुसार नदी उतरते भी
तिकाय आदि की विराधना का 'निशीथ' मे
समझना चाहिए।

अन्य अनेक बातो के प्रायश्चित्त का

निषिद्ध माना जाय, तो '**कोलुण पडियाए**' पद की सार्थकता नही रहती। वह पद व्यर्थ होता है और तब सूत्र का रूप "**जे भिक्खु अन्नयर तसपाणजाइ**" आदि रूप मे होना चाहिये था।

दूसरी बात यह है कि यदि अनुकपा (दया) भाव से त्रस प्राणी को बाधने खोलने का निषेध अभिष्ट होता, तब तो त्रस प्राणी से बेइन्द्रिय आदि प्राणियो का भी ग्रहण होना चाहिए था, किन्तु भाष्यकार को यह अभिष्ट नही है। उन्होने स्पष्ट रूप से तर्णक (बछडा) आदि का ग्रहण किया है।

यदि त्रस-प्राण से बेइन्द्रिय आदि का ग्रहण इष्ट होता, तो भिक्षु अपने जलपात्र आदि मे पडकर मूर्छित हुई मक्खी आदि को कपडे मे बाधकर क्यो रखते और मूर्च्छा दूर होकर ठीक होने पर उसे क्यो छोडते? आखिर मक्खी भी तो त्रस-प्राणी है। यहा अनुकपा निमित्त से बाधने का प्रायश्चित्त लेना होगा, जो कि शास्त्र सम्मत नही है। इसी प्रकार विक्षिप्त-चित्त आदि स्थिति मे अपने साथी साधु को भी भिक्षु बाधता है तथा अच्छा होने पर छोडता है। इसमे किसी प्रकार का प्रायश्चित्त नही कहा गया है। यदि अनुकपा निमित्त से बाधने-छोडने का प्रायश्चित्त होता, तो यहा भी प्रायश्चित्त ग्रहण की परंपरा होती। मूलपाठ पर गहराई से विचार करे, तो क्या मूज के रस्से, काष्ठपाश चर्मपाश आदि साधु अपने पास रखता है? यह स्पष्ट है कि ये वस्तुएँ साधु के पास नही होती। ये वस्तुएँ तो गृहस्थ के घर पर ही पशु आदि बाधने के लिए हुआ करती

है। अतएव शय्यातर के यहा दीन-वृत्ति से साधु, पशु आदि को बाधे या खोले नही। यह इस सूत्र का स्पष्ट अर्थ है और इसी भाव का भाष्यकार ने निदर्शन किया है।

निशीथ सूत्र मे आए हुए 'कोलुण' शब्द का अर्थ कलुण भाव—करुण भाव है, अनुकंपा नही। अनुकपा और करुण भाव भिन्न-भिन्न अर्थ वाचक हैं, समानार्थक नही। यही कारण है कि स्थानाग सूत्र मे अनुकपा और कारुणिक दान को पृथक् पृथक् मानकर १० प्रकार के दान बताये हैं। यदि अनुकपा और कारुण्य एक ही होते, तो उनका पृथक्-पृथक् निर्देश नही किया जाता। अत जहा स्वार्थ-बुद्धि एव मोह-बुद्धि हो, वह करुण भाव का स्थान है और जहा निरपेक्ष पर दुख निवारण रूप दया का भाव हो, वह अनुकंपा स्थान है। उक्त विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि निशीथ सूत्र का कोलुण शब्द करुण भाव मे है, अनुकपा भाव मे नही।

अनुकपा भाव से तो जैन-धर्म की सभी परम्पराओ में, विक्षिप्तचित्त भिक्षु आदि को बाधने एव खोलने की परपरा प्रचलित है। उसमे कोई दोप नही माना जाता, न कोई प्राय-श्चित्त ही लिया जाता है। इसी भाव को स्पष्ट करते हुए भाष्यकार ने उक्त सूत्रो का उपसहार करते हुए स्पष्ट लिखा है कि यदि शय्यातर के यहा भी बछडे आदि खुले हुए भाग कर अग्नि मे, जल मे तथा गर्त्तादि मे गिरकर मरने की स्थिति मे हो, तो उनको अनुकपा भाव से बाधा जा सकता है। इसी प्रकार यदि गाढ-बधन के कारण रस्सी में उलझ कर कोई पशु आदि

तडप रहा हो या मर रहा हो अथवा अग्नि मे जलने की स्थिति मे हो, तो बधे हुए को खोला भी जा सकता है।

१०२१ प्रश्न—श्री केवली भगवान् सिद्ध-शिला स्थित सभी सिद्धो की आदि देख व बता सकते है या नही ?

उत्तर—भगवती श. ८ उ. २ मे तथा नदी आदि सूत्रो मे बताया है कि केवली भगवान् सर्व द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव जानते एव देखते हैं। कोई भी द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव केवलियो से अनजाना व अनदेखा नही रहता है। जब किंचित् पर्याय मात्र भी जानना-देखना शेष नही रह जाता है, तभी वे सर्वज्ञ-सर्वदर्शी माने जाते हैं। अत इससे स्पष्ट है कि केवली, सभी सिद्धो की भूत, भविष्य आदि सभी पर्याय देखते हैं, परतु समय आदि की गुजाइश इतनी न होने से बता नही सकते।

१०२२ प्रश्न—पुद्गल-परमाणुओ का परिवर्तन पर्याय रूप मे ही होता है या मूल रूप से ? जैसे पृथ्वीकाय का पुद्गल अप्काय व वनस्पतिकाय का हो सकता है ? धातु का पुद्गल काष्ठादि हो सकता है ? सोने का पुद्गल चादी या लोहा रूप मे हो सकता है या मूल मे ही रहता है ? यदि परिवर्तन होता है, तो अनन्तकाल मे या अल्पकाल मे ?

उत्तर—जो पुद्गल अभी पृथ्वीकायपने मे हैं, वे ही पुद्गल कालान्तर मे अप, तेउ, वायु, वनस्पति और त्रसकायपने हो जाते हैं एव सभी काय के पुद्गल परस्पर रूप में समझ लेना चाहिए। धातु के पुद्गल अन्य धातु रूप तथा काष्ठादि रूप बन जाते हैं। अनन्तकाल मे तो सभी पुद्गलो का सभी प्रकार का रूप

बन ही जाता है, परन्तु रहेगे तो पुद्गल के पुद्गल ही । उनकी धर्मास्तिकायादि अन्य वस्तुएँ नही बनेगी ।

१०२३ प्रश्न–श्री ठाणागजी सूत्र के ५ वे ठाणे मे पाच कारण से पाँच महानदियो मे "**उत्तरित्तए वा संतरित्तए वा णाइक्कमइ**"–ऐसा पाठ है, जिसमे दिखाये हुए पाच कारणो से उतरता हुआ साधु, भगवान् की आज्ञा का उल्लघन नही करे, ऐसा फरमाने का क्या रहस्य है ? अर्थात् पाच कारणो से उतरता हुआ साधु आज्ञा मे है या नही ? उन पाच कारणो से उतरते हुए साधुओ को प्रायश्चित्त आता है या नही ? यदि आता है, तो किस प्रकार और क्या प्रायश्चित्त आता है ? प्रमाण सहित लिखावे ?

उत्तर–'**नाइक्कमइ**' का अर्थ अमुक-अमुक कारणों से अमुक-अमुक काम करते हुए साधु-साध्वी, आज्ञा का उल्लघन नही करते । अर्थात् वे आज्ञा मे ही गिने जाते हैं, बाहर नही । इस प्रकार सूत्रोक्त कारणो से उन नदियो मे उतरना पडे, तो उतरने वाला साधु आज्ञा मे है । आज्ञा मे होते हुए भी उतरने वाले को जीव-विराधना का प्रायश्चित्त लेना पडता है । जैसे–विहार, गोचरी, स्थडिल जाना आदि भगवान की आज्ञा मे है तथापि '**इरियावही पडिक्कम**' के मिच्छामि दुक्कड देते हैं । मिच्छामि दुक्कड भी दस मे से एक प्रायश्चित्त है, तथा एकेन्द्रियादि अमुक जीव की विराधना हुई, ऐसा मालूम होने पर उपवास १, २, ३, ४, ५, आदि प्रायश्चित्त साम्प्रदायिक नियमानुसार लिया जाता है । नदी के पानी मे भी फूलण, बेइन्द्रियादि जीव होते हैं और पानी स्वयं अप्काय है ही । उन जीवो

की विराधना तो अवश्य होती है। निशीथ सूत्र मे ऐसी विराधना का चौमासी प्रायश्चित्त बताया है। अल्प तथा अधिक विराधना का प्रसग देखकर आचार्यादि बेले, तेले आदि का जो भी प्रायश्चित्त देते हैं, वह लेना उचित है।

१०२४ प्रश्न—बहुत काल की साध्वीजी, अल्पकाल के साधुजी म को वदना-नमस्कार करती है? अल्पकाल का दीक्षित साधु, बहुत काल की सयम-पर्याय वाली साध्वीजी को नमस्कार नही करता, इसमे चारित्र-पर्याय को मुख्य नही मान कर, पुरुष स्त्री-पर्याय को विशेष माना है, सो क्या कारण?

उत्तर—भगवान् की दृष्टि मे चारित्र-पर्याय का बहुत ऊँचा स्थान है—"**णमोलोए सव्वसाहुणं**" इस पद से भाववदन तो सभी साध्वियो को भी सभी साधुओ का हो जाना बताया है। वास्तविक साध्वी तो इस वदन मे से बाहर कोई नही रहती। 'पुरुषज्येष्ठ कल्प' बता कर भगवान् ने जो साध्वियो को व्यावहारिक बाह्य विधि वंदन साधु नही करना, ऐसा जो बताया है, वह भी साध्वियो के हित के लिये ही है। यदि कोई यह सोचेगा कि साधु का साध्वियो को वदन करने मे उनका क्या अहित होता होगा? तो सोचना चाहिये कि कुछ प्रकृति-तुच्छतादि मे मान की प्राप्ति होती है। उस मान से सयम-हानि इत्यादि पुष्ट कारणो मे साध्वी को साधु द्वारा व्यावहारिक बाह्य विधि-वदन, आचार्य-उपाध्यायादि पदवियाँ प्रदान करने का निषेध किया है। जैसे—अन्यलिंग तथा गृहस्थलिंग मे कोई केवली हो, तो भी उन केवलियो को व्यावहारिक बाह्य

विधि-वंदन करने की, चारो सघो को अन्य केवली आज्ञा नही देते। उस लिंग मे मोक्ष जाने पर भी देव निर्वाण-महोत्सव आदि नही करते तथा वे अन्य-लिंगादि केवली भी स्वयं उस लिंग मे रहते हुए व्याख्यानादि देना, शिष्य बनाना, इत्यादि प्रवृत्तियां, लोकहित के लिये ही रोकते हैं। वे जानते हैं कि लोग उनके विशुद्ध भावो को नही देख सकेगे। उनकी वाह्य-क्रिया से ही केवलज्ञान हुआ समझलेगे और स्वय उनके वाह्य उलटे मार्ग की प्रवृत्तियाँ, प्ररूपणादि करने लग जायेगे। अत वे उपरोक्त प्रवृत्तियां रोकते हैं। इसी प्रकार साध्वियो के हित के लिये ही भगवान् ने यह व्यावहारिक बाह्य विधि-वदन रोका, ऐसा सम्भव है। आर्य-संस्कृति से भी यह नियम ठीक मालूम होता है।

१०२५ प्रश्न--कारण-दशा मे पाच कारणो से साध्वी का स्पर्श करते हुए भी साधु को प्रायश्चित्त आता है ? यदि आता हो, तो सप्रमाण खुलासा लिखावे ?

उत्तर--निर्मल विचार रखते हुए, सूत्रोक्त कारणो से साधु-साध्वियो का परस्पर सघट्टा हो गया हो, परन्तु जीव विराधना का कोई कारण न बना हो, तो उस सघट्टे का कोई खास प्रायश्चित्त नही है। यदि जीव विराधना हुई हो, तो उसका यथायोग्य प्रायश्चित्त लेना चाहिये।

१०२६ प्रश्न--८४ लाख जीवयोनियो का उल्लेख किस आगम मे है ? पृथ्वीकाय के मूल भेद ५० मान कर वर्णादि से गुणा करके सात लाख की सख्या पूरी की जाती है, किन्तु मूल भेद ५० कौन से हैं ? ५० के नाम किस सूत्र मे हैं ? स्थल निर्देश करे।

उत्तर–८४ वे समवायाग मे **"चोरासीइ जोणिप्पमुह सयसहस्सा पण्णत्ता"** यह पाठ है। इसकी टीका मे पृथ्वी आदि की भिन्न-भिन्न योनि सख्या आदि का वर्णन है। तथा प्रज्ञापना प्रथम पद मे पृथ्वी आदि के भेदो मे **"तत्थण जेते पज्जत्तग्गा एएसिं वन्नादेसेणं, गधा दे. रसा दे. फासा दे. महस्सगसोविहाणाई सखेज्जाइं जोणिप्पमुहसयसहस्साइ"** ऐसा पाठ है। इस पाठ से सख्या पूर्ति के मार्ग का दिग्दर्शन होता है। तद्नुसार वही पर टीका मे भी कुछ वर्णन है और प्रवचनसारोद्धार के १५१ वे द्वार मे ६८२–८३ और ८४ गाथा मे भी इस विषयक वर्णन है। पृथ्वीकाय के मूलभेद ५० नही किन्तु ३५० मानते हैं। इनका नाम निर्देश तो देखने मे नही आया, परन्तु उपरोक्त प्रमाणो के आधार से पृथ्वी आदि के सामान्य भेद १ लाख के पीछे ५० मान कर फिर वर्णादि के साथ (२ हजार) गुणा करने से कथित सख्या होती है। इस अपेक्षा से लाख के पिछे ५० लेते हैं।

१०२७ प्रश्न–नदी सूत्र मे चन्द्रपन्नति और सूर्यपन्नति का उत्कालिक कहा है, किन्तु ठाणाग अध्ययन ३ उ. १ मे तीन पन्नति कालिक कही गई हैं, जिसमे चन्द्र-सूर्यपन्नति भी है ?

ही तीनो प्रज्ञप्तियाँ कालिक मे ली है। कदाचित् जबूद्वीपप्रज्ञप्ति के बदले सूर्यप्रज्ञप्ति लिखने मे आगई हो। अन्य विशेष प्रमाण इसके लिये ध्यान मे नही है।

१०२८ प्रश्न—गर्दतायतुषित देवो का परिवार भगवती श ६ उ. ५ मे सात हजार है और ७७ वे समवायाग मे ७७ हजार देवो का परिवार लिखा है, इसकी सगति किस प्रकार होगी ?

उत्तर—गर्दतोय तुषित देवो का जो ७ हजार का परिवार भगवती मे बताया है, यह खास निजीय परिवार की अपेक्षा से सभवित है और समवयाग मे जो ७७ हजार का परिवार है, वह सामानिक, आत्मरक्षक, परिषदादि सभी को मिला कर समझना चाहिये, क्योकि ज्ञाता अध्ययन ८ मे लोकातिक देवो के सामानिक परिषदादि और इनके देवो का भी वर्णन है। अत समवायाग मे वर्णित सख्या की भी सगति बैठती है।

१०२९ प्रश्न—जलचर की १२॥ लाख कुलकोडी जीवाभिगम प्रति० ३ सूत्र ९७ मे कही है, किन्तु जीवाभिगम प्रति० ३ सूत्र १८८ मे स्वयभूरमण मे १२॥ लाख कुलकोडी केवल मत्स्यजाति की ही कही है, इसकी सगति किस प्रकार होगी ?

उत्तर—सूत्र १८८ मे मत्स्यो की जो १२॥ लाख कुल-कोडी बताई है, सो यहा मत्स्य शब्द से जलचर जाति का ग्रहण समझना चाहिये। जैसे प्रज्ञापना पद ६ सूत्र १२९ मे "**मच्छा-मणुयायसत्तमि पुढवि,**" यहा मत्स्य शब्द से सभी जलचरो का ग्रहण होता है, वैसे ही उपरोक्त सूत्र मे आये हुए मत्स्य

शब्द से जलचर जाति का ग्रहण समझना चाहिये। तथा जलचर के मत्स्यो की आकृति आदि से अनेक भेद है। अन्य जलचरो की और इनकी परस्पर आकृत्यादि मिलने से अन्य जलचरो के कुलो का इनमे अंतर्भाव हो सकता है। इस अपेक्षा से भी मत्स्य शब्द से जलचर की कुलकोडी की सगति बैठ सकती है।

१०३० प्रश्न–पन्नवणा के स्थानपद ज्योतिषी वर्णन मे ग्रहो की अणिका का उल्लेख है, किन्तु ठाणाग अध्ययन ७ मे केवल भवनपति, वाणव्यंतर और वैमानिको की सेना आदि का ही उल्लेख है, ज्योतिषियो की सेना का नही। ठाणाग की तरह ज्योतिषियो की अणिका का नाम निर्देशपूर्वक पाठ किस अग मे है?

उत्तर–स्थानाग मे तो भवनपति और वैमानिको की अणिकाओ का वर्णन है, व्यतर और ज्योतिषी की अणिकाओ का नही, अर्थात् वाणव्यतरो की अणिका का भी स्थानाग मे उल्लेख नही है। भगवती श १० उ० ५ मे चारो जाति के देवो की अग्रमहिषियो आदि के वर्णन में अणिकाओ का उल्लेख है। कही खुला पाठ व कही भलामण है, तथा श ३ उ १ से भी यह बात स्पष्ट होती है। प्रज्ञापना (स्थानपद) के अतिरिक्त सूर्यप्रज्ञप्ति आदि मे भी ज्योतिषियो की अणिकाओ का वर्णन है।

१०३१ प्रश्न–पाच महाव्रतो के १७८२ तणावे किस प्रकार होते हैं? तथा ३३ चोब कोन-कोनसी है, उनके नाम निर्देश करे?

उत्तर–सयम रूपी तबू सात (पाच महाव्रत के पाँच,

रात्रि भोजन के त्याग रूप और छ काय की यत्ना रूप एवं सात) बडी चोब और ३३ छोटी चोब (पहले महाव्रत की चार "सुहुमं वा, बायरं वा, तसं वा, थावरं वा" दूसरे की ४ 'कोहा वा, लोहा वा, भया वा, हासा वा," तीसरे की ६ "अप्पं वा, बहुं वा, अणुं वा, थूलं वा, चित्तमंतं वा, अचित्तमत वा," चौथे की ३ "दिव्व वा, माणुसं वा, तिरिक्खजोणियं वा," पाचवे की ६ "अप्पं वा आदि ६" छठे की ४ "असणं वा, पाणं वा, खाइमं वा, साइम वा," "पृथ्वी आदि छह काय की यतना रूप ६ एव सब ३३ चोब हुई) इनको ३ करण द्वारा गुणा करने से ९९ और इनको ३ योग से गुणा करने से २९७ खुंटियां या बास समझना। अर्थात् प्रत्येक चोब के ९-९ खुंटियां हुई। प्रत्येक खुंटी के ६-६ तणावे हैं अर्थात् २९७ को "दिआ वा, राओ वा, एगओ वा, परिसागओ वा, सुत्ते वा, जागरमाणे वा, एव ६ से गुणा करने से २९७×६=१७८२ तणावे होते है।

१०३२ प्रश्न–मिथ्यादृष्टियो की आगत कोई तो ३६६ की बताते हैं और कोई ३७१ की। दोनो मे सही कौनसी है? क्या अनुत्तर-विमान के देव भी कोई मिथ्यात्व लेकर आ सकता है? जब कि वहा एकात सम्यग्दृष्टि ही है?

उत्तर–अनुत्तर-विमानो के कोई भी देव मिथ्यात्व लेकर यहा नही आते, यह भगवती श. १३ उ. २ में स्पष्ट है।

मे और क्षपक-श्रेणी प्रथम सहनन मे होती है। यह बात भी दूसरे कर्मग्रथ की १८ वी गाथा से स्पष्ट है।

१०३६ प्रश्न- उपधान तप किसे कहते है ?

उत्तर–जिसके द्वारा मोक्ष को निकट की जाती है, उसे 'उपधान' कहते है। अनशनादि १२ ही प्रकार के तप का उपधान मे समावेश है। जो सूत्रकृतागादि की **"मोक्ष-प्रत्युपसामीप्येन ददातीति उपधानम्, अनशनादि के तपसि"** इस टीका से स्पष्ट है।

१०३७ प्रश्न–शिष्य को जो प्रथम सूत्र पढाया जाता है, उस तप का क्या नाम है ? और प्रत्येक सूत्र के पीछे जो आयबिल तप देते हैं, उनकी सख्या क्या है ?

उत्तर–सूत्र पढते हुए जो आयबिल तप कराया जाता है, उसे भी उपधान तप कहते हैं। यह प्रवचनसारोद्धार की **"उप समीपे धीयते क्रियते सूत्रादिकं येन तपसातदुपधानम्"** इस टीका से स्पष्ट है।

वे आयबिल किन-किन सूत्रो के कितने-कितने हैं, जिनकी धारणा निम्न प्रकार है–

सूत्र नाम	तप	सूत्र नाम	तप
आचाराग	५०	ज्ञाताधर्मकथा	३३
सूयगडाग	३०	उपासकदशाग	१४
स्थानाग	१८	अंतगडदशाग	१२
समवायाग		अनुत्तरोववाई	७
भगवती		प्रश्नव्याकरण	१४

सूत्र नाम	तप	सूत्र नाम	तप
विपाक	२४	निरयावलिकादि पाँच	७
उववाई	३	नदी	३
रायप्पसेणी	३	अनुयोग द्वार	८
जीवाभिगम	३	उत्तराध्ययन	२९
पन्नवणा	३	दशवैकालिक	१५
जबूद्वीपप्रज्ञप्ति	१०	निशीथ	१०
चन्द्र प्रज्ञप्ति	३	शेष तीनो छेद सूत्रो के	
सूर्य प्रज्ञप्ति	३	शामिल रूप	२०

कुल ३१ सूत्र के ५११ आयबिल हुए, ऐसा ध्यान मे है।

१०३८ प्रश्न—सवत् २०२० मे मार्गशीर्ष क्षय बताया, गुजराती शु. पक्ष से महिने का हिसाब लगाया जाय, तब तो मार्गशीर्ष क्षय और कृ. पक्ष से महीना गिने तब मार्गशीर्ष शु. और पौष कृ. क्षय होते है। शेष सभी महिनो के नाम बराबर कायम रहते हैं। आश्विन वृद्धि हो उस वर्ष मे मास का क्षय और वृद्धि उसी वर्ष मे होती है। क्योकि इन वर्षों मे कभी आश्विन वृद्धि देखी नही। यह बात किस प्रकार है ?

उत्तर—शुक्ल-पक्ष से महीना मानने वालो की गणित-गति से ही खास महीना क्षय माना जाता है। कृष्ण-पक्ष से महीना मानने से क्षय नही होता।

आज के पंचाग प्राय शुक्ल-पक्ष से महीना मानने वाले हैं। दुनिया को बताने के लिये वे भले ही कृष्ण-पक्ष से बता दे, परतु उनकी निजी मान्यता शुक्ल-पक्ष से ही महीना मानने की है।

भगवती श. १ उ. ७ मे विग्रह और अविग्रह गतिया नैरयिकादि की अल्प-बहुत्व मे सभी अविग्रह गति वाले, आदि तीन भागे बताये हैं। श. १८ उ. ५ मे विग्रह-गति के नैरयिक अग्नि के बीचा-बीच होके जाते हैं और अविग्रह गति वाले नही, आदि वर्णन मे वहां रहे हुए जीवो को अविग्रह गति मे ग्रहण किये बिना कैसे बैठेगा ? ऐसा ही अर्थ स्थानाग स्था १० मे १० प्रकार की "निरयगइ निरयविग्गहगइ.........जाव सिद्धिविग्गहगइ" सू. ७८५ गति की टीका से निकलता है।

१०८० प्रश्न—नवदीक्षित की बडी-दीक्षा हुए बाद ही आहार-पानी शामिल करने की प्रथा है। यदि दीक्षा देने के दिन से ही शामिल किया जाय, तो क्या आपत्ति है ?

उत्तर—बडी दीक्षा न देने तक सामायिक चारित्र गिना जाता है। सामायिक और छेदोपस्थापनीय चारित्र का कल्प भिन्न भिन्न है। कल्प भिन्न होने के कारण आहार-पानी की भी भिन्नता होती है। अत. यतना के बोध के साथ महाव्रतारोपन द्वारा दीक्षित होने पर, वह छेदोपस्थापनीय चारित्र की गणना मे आ जाता है और इसकी गणना मे आने के बाद ही आहार-पानी शामिल करने के प्रमाण शास्त्र मे मिलते हैं। बृहत्कल्प उ ४ सू ४, ५ में पडग आदि तीन को दीक्षा देने का निषेध है। यदि अनजान मे दीक्षा दे दी हो, तो मुडित (सिर-लोच) नहीं करना, मुडित कर दिया हो तो शिक्षा (यतना से चलना आदि समाचारी) ग्रहण नही कराना, शिक्षा ग्रहण कराई हो, तो उपस्थापित (महाव्रतारोपन) नही करना, उपस्थापित कर दिया

इसी कारण वे पूर्णिमा को १५ और अमावस्या को ३० लिखते हैं, तथा प्रति-वर्ष का चैत्र-शुक्ल-पक्ष पहिले बता कर फिर वैशाखादि ११ मास के बाद चैत्र-कृष्ण-पक्ष बताते हैं। यह कैसे सगत होगा कि एक महीने का एक पक्ष पहिले बतावे और उसी महीने का दूसरा पक्ष ११ महीने बाद। इसी मान्यता से क्षय-मास का कारण पैदा होता है। आगम के हिसाब से क्षय मास होते भी नही है।

जिस वर्ष क्षय-मास करते हैं, उस वर्ष दो अधिक मास आते हैं अर्थात् क्षय मास वाला वर्ष १३ महीने का ही होगा।

क्षय-मास नही होने वाले वर्ष मे भी कई बार आश्विन दो आ जाते है। जैसे—वि स १८१४, १९१७, १९३६, १९५५, २०५८, २०७७ आदि मे आश्विन दो बताते है, परन्तु इन वर्षों मे क्षय-मास नही है।

१०३९ प्रश्न—विग्रह और अविग्रह गति का अर्थ क्या है?

उत्तर—"विग्रह गति" अर्थात् वक्र (टेढी) गति—एक गति से दूसरी गति मे जाते हुए कितनेक जीव टेढी गति से जाते हैं और विग्रह गति और उत्पत्ति स्थान पर जो सीधे जाते हैं, उनकी 'अविग्रह' गति कहलाती है। साधारणतया तो इनका अर्थ इस प्रकार है तथा "विग्रह गति" एक गति से दूसरी गति मे जाने वाली (वक्र तथा ऋजुगति से गत्यान्तर जाने वाले) सभी जीव विग्रहगति या "विग्गहगइया" और जो उत्पत्ति क्षेत्र को प्राप्त हुए अर्थात् वहा रहने वाले अविग्रह गति, इस प्रकार भी अर्थ होता है। यदि उपरोक्त पहिला ही अर्थ लगाया जाय, तो

भगवती श १ उ ७ मे विग्रह और अविग्रह गतिया नैरयिकादि की अल्प-बहुत्व मे सभी अविग्रह गति वाले, आदि तीन भागे बताये हैं। श १४ उ ५ मे विग्रह-गति के नैरयिक अग्नि के बीचो-बीच होके जाते हैं और अविग्रह गति वाले नही, आदि वर्णन मे वहा रहे हुए जीवो को अविग्रह गति मे ग्रहण किये बिना कैसे बैठेगा ? ऐसा ही अर्थ स्थानाग स्था १० मे १० प्रकार की "**निरयगइ निरयविग्गहगइ.........जाव सिद्धिविग्गहगइ**" सू. ७४५ गति की टीका से निकलता है।

१०४० प्रश्न—नवदीक्षित की बडी दीक्षा हुए बाद ही आहार-पानी शामिल करने की प्रथा है। यदि दीक्षा देने के दिन से ही शामिल किया जाय, तो क्या आपत्ति है ?

उत्तर—बडी दीक्षा न देने तक सामायिक चारित्र गिना जाता है। सामायिक और छेदोपस्थापनीय चारित्र का कल्प भिन्न भिन्न है। कल्प भिन्न होने के कारण आहार-पानी की भी भिन्नता होती है। अत यतना के बोध के साथ महाव्रतारोपन द्वारा बोधित होने पर, वह छेदोपस्थापनीय चारित्र की गणना मे आ जाता है और इसकी गणना मे आने के बाद ही आहार-पानी शामिल करने के प्रमाण शास्त्र मे मिलते हैं। बृहत्कल्प उ. ४ सू ४, ५ मे पडग आदि तीन को दीक्षा देने का निषेध है। यदि अनजान मे दीक्षा दे दी हो, तो मुडित (सिर-लोच) नहीं करना, मुडित कर दिया हो तो शिक्षा (यतना से चलना आदि समाचारी) ग्रहण नही कराना, शिक्षा ग्रहण कराई हो, तो उपस्थापित (महाव्रतारोपन) नही करना, उपस्थापित कर दिया

हो, तो "संभुजित्तए" आहार-पानी शामिल (एक माडले) नही करना। यदि शामिल कर लिया हो, तो "सवसित्तए" साथ नही रहना। इन सूत्रो मे दीक्षा देने से लेकर संवास तक के बोल अनुक्रम से आये हैं, जिनमे उपस्थापित (बडी दीक्षा) के बाद आहार-पानी शामिल करने का विधान है। अत इस सूत्र द्वारा बडी दीक्षा के बाद ही आहार-पानी शामिल करना स्पष्ट सिद्ध है और यही वर्णन तीसरे ठाणाग के चौथे उ मे भी बताया है।

बृहतकल्प के ४ उ. मे साधु के अचित्त, अनैषणिक आहार-पानी आने पर यदि बडी दीक्षा देने योग्य नवदीक्षित हो, तो उसको देना अन्यथा परठ देना ऐसा वर्णन है। यदि आहार-पानी शामिल ही हो, तो फिर उसको देने मे क्या विशेषता रहती है? अर्थात् शामिल आहार-पानी करने से समान ही गिने जायेंगे। अत इससे भी यही सिद्ध हाता है कि बडी दीक्षा न होने तक आहार-पानी पृथक् ही रखना चाहिये।

इन उपरोक्त प्रमाणो से बडी-दीक्षा देने के बाद ही आहार-पानी शामिल करने की सिद्धि होने से, दीक्षा के दिन से शामिल नही करना, यह स्पष्ट है।

१०४१ प्रश्न—श. १ उ ६ मे सूक्ष्म पानी निरतर गिरने का वर्णन है, सो दिन को तो सूर्य के ताप से ऊपर ही नष्ट हो जाता है और रात्रि मे नीचे तक आता है। इसमे यह शका उठती है कि अछाया (ऊपर से खुली जगह) मे पूजने मे उपरोक्त अप्काय की विराधना होती है, तो फिर अछाया मे क्यो

पूंजा जाता है ?

उत्तर-सूक्ष्म पानी गिरने के कारण शंका उठाते हुए, जो नही पूंजने सबधी दलील दी है, वह संगत नही है। क्योकि प्रवृत्ति करते हुए साधु को ईर्यासमिति मे सतत् सावधानी रखने का विधान है। उसके अनुसार ईर्यासमिति मे दिन मे देख कर और रात्रि मे पूंज कर चलना तथा उच्चारप्रस्रवण समिति मे भी बिना पूंजे रात को नही परठना, ऐसी ध्रुव आज्ञा है।

इस उपरोक्त शास्त्रीय विधान मे निरंतर सूक्ष्म पानी गिरने के कारण पूंजना निषिद्ध न बता कर, जब भी काम पडे तब बिना पूंजे नही चलने व नही परठने आदि का आदेश दिया है। तथा उस सूक्ष्म पानी के लिये वही पर भगवती मे शीघ्र नष्ट होना बताया है, तो फिर पूंजने से उसकी विराधना सबधी प्रश्न ही कैसे रह सकता है ? यदि विराधना सबंधी प्रश्न हो, तो वायुकाय की विराधना होते हुए भी उभयकाल प्रतिलेखन, पूंजन आदि क्रिया करने की आगम मे ध्रुव आज्ञा है।

समवायाग और दशाश्रुतस्कध मे बिना पूंजे व भली प्रकार पूंजना, चलना, बैठना, सोना, परठना आदि नही करने वाले को असमाधी दोष का भागी बताया है।

आगम मे पूंजने सबधी स्पष्ट वर्णन होते हुए भी सूक्ष्म पानी की विराधना के बहाने से पूंजने मे शका करना उचित नही।

१०४२ प्रश्न-चौमासे के प्रारम्भ व समाप्ति मे तो चौमासी प्रतिक्रमण बैठती उठती चौमासी सबधी किया जाता है, परन्तु फाल्गुनी पूर्णिमा पर तो कोई चौमासा उठता बैठता ही नही है,

सूत्रकृताग अध्ययन २३ सूत्र ३ की दीपिका और टीका मे 'पूर्णमासी' शद्ध की दीपिका और टीका करते हुए "**पौर्णमासी-सूचतिसृष्वापि चातुर्मासकतिथिषु**" यहा पर तीन चौमासी बताई है, तथा जीवाजीवाभिगम की तीसरी प्रतिपत्ति के नदीश्वराधिकार मे देव महोत्सवार्थ जाते है, उसमे अन्य कारण के साथ '**चाउमासिया पडिवएसु**' पाठ है। उसकी टीका "**चातुर्मासिकेषु**" यहा टीका मे बहुवचन आने से तीन चौमासी मानी गई है तथा उववाई सूत्र के श्रावक के अधिकार मे, पौषध वर्णन मे पूर्णमासी का अर्थ तीन चौमासी किया है। इन उपरोक्त प्रमाणो से तीनो चौमासी मनाना स्पष्ट सिद्ध है।

१०४३ प्रश्न–'**नियागपिण्ड**' का क्या अर्थ है ?

उत्तर–गृहस्थ का निमत्रण पाकर कभी भी आहार आदि लेना तथा प्रतिदिन एक ही घर से आहारादि लेना, नियागपिण्ड है। प. घासीलालजी म. कृत दशवैकालिक टीका अध्य ३।

"आमत्रण करीने लई जाय, तेनु अन्न विगेरे रोज लेवु ते नियाग, आमत्रण* बिना काईक दिवसे ले ते नियाग नथी। दशवैकालिक मूल निर्युक्ति भाष्य सहित। लेखक–मुनि माणेक।

भाषातरकार शास्त्री जेठालाल हरीभाई (मूर्तिपूजक) भावनगर से प्रकाशित उत्तराध्ययन तथा जवाहिराचार्य विरचित सद्धर्ममडन पृ ५०० मे उत्तराध्ययन के २० वे अध्ययन की

---

* इसका तात्पर्य यह है कि अनामत्रित घर का नित्य लेना भी नियाग है। पूर्वाचार्यों की मान्यता व प्रकृति भी इसी उपरोक्त अर्थानुसार थी। तदनुसार ही अब कइयो की है। अत यही अर्थ ठीक है।

४७ वी गाथा मे आये हुए "नियाग" का अर्थ हमेशा एक घर का आहार लेना किया है।

शका—नियाग का उपरोक्त अर्थ बताया, परन्तु दशवैकालिक अध्ययन ३ गाथा २ मे आये हुए नियाग शब्द की टीका करते हुए "**नियागमित्यामन्त्रितस्य पिण्डस्यग्रहणं नित्य नत्वनामन्त्रितस्य**" अर्थात् जो आमत्रण करे, उसी के यहा से नित्य आहार लेवे, अनामत्रित के यहा से नही। इस प्रकार टीकाकार कहते हैं। अत कोई आमत्रण दे, उसके यहा से नित्य आहार-पानी नही लेना, परन्तु दूसरो के यहा से नित्य लेने मे टीकानुसार बाधा नही है, सो कैसे समझना ?

समाधान–'नियाग' शब्द की उपरोक्त टीका का इस प्रकार अर्थ करना कैसे संगत होगा ? क्योकि आमन्त्रित पिण्ड नित्य नही लेना, तो क्या कभी-कभी ले सकते हैं ? क्या यह उचित है ? अत 'आमन्त्रित' शब्द के साथ 'नित्य' शब्द का संबध हो ही कैसे सकता है ? क्योकि आमन्त्रित तो सर्वथा निषिद्ध कहा है तथा '**नत्वानामंत्रितस्य**' इस वाक्य का अर्थ भी कैसे सगत होगा ? अनामन्त्रित तो नित्य लेने मे बाधा नही, यदि ऐसा अर्थ किया जाय तो 'अनामन्त्रित' के साथ 'नित्य' शब्द लेने से ही ऐसा अर्थ हो सकता है और नित्य शब्द को अनामंत्रित के साथ लेने से फिर नियाग (नित्य) की सार्थकता क्या रहेगी ? अत इस टीका का उपरोक्त प्रकार का अर्थ कैसे सगत होगा ? मुर्शिदाबाद वाली दशवैकालिक मे 'नियाग' शब्द की टीका– "**नियागमित्यामन्त्रितस्य पिण्डस्य ग्रहणं नित्यं तत्त्व-**

(तुषार मात्र) पडते हुए नही जाना–ऐसा ही अर्थ समझना। इसी अर्थ को सिद्ध करने वाले निम्न प्रमाण दृष्टव्य हैं–

(१) भगवती श. ३ उ ७ वैश्रमण लोकपाल के अधिकार मे "**वासा**" और "**वुट्ठि**" शब्द आये हैं। इनकी तरतमता बताते हुए टीकाकार ने (**वर्षोऽल्पतरः वृष्टिस्तु महती इति वर्ष वृष्टयोर्भेदः**" इस प्रकार बताया है। यहा "**वासा**" शब्द का अल्प (किंचित्) वर्षा अर्थ किया है।

(२) व्यवहार भाष्य उ ७ भाष्यगाथा २७८ मे "**वास**" शद्ब से तीन प्रकार की वर्षा बताई है, (१) वुद् वुद् वृष्टि (जोरो की वृष्टि जिसमे बुदबुदे उठते हो) (२) वर्षा (सामान्य वृष्टि) (३) जलस्पर्शी (जल का स्पर्श मात्र होता हो अर्थात् तुषार मात्र गिरते हो) इन तीनो ही वर्षा मे उपाश्रय के बाहर जाना निषिद्ध किया है।

उपरोक्त प्रमाणो को देखते हुए "**वासे**" शद्ब का विशेष अर्थ करके, अल्प वर्षा मे भिक्षादि निमित्त जाना, सिद्ध करना, युक्तियुक्त नही है। अत किंचित् बूंदो मे भी जो न जाने की प्रणाली है वही उपरोक्त प्रमाणो से प्रमाणित होती है, अन्य नही।

१०४६ प्रश्न–महिका (धूंअर) पडते समय प्रतिलेखना, स्वाध्याय, हनन, चलन आदि विशेष कायचेष्टाएँ आदि क्रियाएँ नही करने की प्रवृत्ति है। इसका क्या आधार है? दशवैकालिक अध्ययन ५ गाथा ८ तथा आचाराग अध्ययन १० उ ३ मे तो केवल दीक्षादि निमित्त गमन करने का निषेध किया गया है, सो कैसे समझना?

उत्तर–धूंअर वर्षादि मे भिक्षादि के लिये जाने से सयम का उपघात होता है अर्थात् जीव-विराधना होती है, अत. जाना निषिद्ध है। धूंअर, अत्यन्त बारीक पानी होने से मकान के अदर भी आ जाती है। उन जीवो की विराधना की रुकावट के कारण प्रतिलेखना आदि विशेष कायचेष्टादि क्रियाएँ निषिद्ध है। यह बात निम्नोक्त प्रमाण मे स्पष्ट होती है–

व्यवहार भाष्य उ. ७ भाष्यगाथा २७८, २७९ मे धूंअर पडते उच्छवास, उन्मेष को छोड कर शेष हलन-चलनादि कायिकी चेष्टाएँ व भाषा बोलनादि कोई भी क्रियाएँ नही करे तथा १०८५ वे प्रश्न के समाधान मे वर्षा के जो तीन भेद बताये है, उनमे भी यदि उपाश्रय मे पानी न चवता (टपकता) हो, तो अनुक्रम मे एक या तीन, पाच और सात दिन बाद निरंतर वर्षा के कारण सब अपकाय स्पष्ट होने मे, फिर जबतक वर्षा चालू रहे तब तक तथा वायु द्वारा दिगतरो में व्यापी हुई ताम्र वर्ण की सचित्त (व्यवहार सचित्त) रज, वह भी निरतर ३ दिन उपरान गिरने के कारण सर्व पृथ्वीकाय युक्त होने से उपाश्रय के अन्दर भी उपरोक्त धूंअर मे कहे अनुसार प्रतिलेखनादि कोई भी क्रिया नहीं करना। अत उपरोक्त प्रमाणो से धूंअर आदि मे विराधना के कारण मे हलन-चलन आदि कोई भी क्रियाएँ नही की जाती हैं।

१०४७ प्रश्न भिक्षु की बारह प्रतिमाएँ तथा एकल-विहार आदि कोई भी प्रतिमाएँ धारण करने वाले की योग्यता का माप-दंड क्या है ?

उत्तर—व्यवहार भाष्य उ. १, दशाश्रुतस्कध अध्ययन ७ की टीकादि मे जघन्य २९ वर्ष की वय और कम से कम २९ वर्ष की दीक्षा तथा जघन्य ९ वे पूर्व की तीसरी आचार वस्तु, उत्कृष्ट कुछ कम दश पूर्व के ज्ञान वाला और प्रथम के तीनो मे से किसी भी सहनन वाले धारण कर सकते हैं, ऐसा बताया है।

स्थानाग स्थान ८ मे श्रद्धादि ८ गुणवाला ही एकल विहार प्रतिमा धारण कर सकता है। ऐसा मूलपाठ मे वर्णित है।

हरिभद्रसूरि कृत 'पचाशक' नामक ग्रथ के १८ वे पचाशक मे भी सविस्तार वर्णन है।

सामान्यत यह उपरोक्त नियम बताया है। आगम विहारियो की उपस्थिति मे वे जैसा उचित समझते है, वैसी ही आज्ञा प्रदान करते हैं।

१०४८ प्रश्न—जिन-नाम का वध कब तक होता है तथा सभी गतियो मे होता है या नही ? तथा इसका निकाचित-वध होने के बाद भी क्या वध चालू रहता है ?

उत्तर—जिन-नाम का वध चौथे गुणस्थान से ८ वे गुणस्थान के सातो भागो मे से छठे भाग तक हो सकता है। तिर्यंच गति मे तीर्थंकर नाम का वध नही होता, शेष ३ गतियो मे होता है। क्योकि निकाचित जिन-नाम वध के बाद तिर्यंच गति मे जाता ही नहीं। ऐसा वध होने के बाद देव या नरक मे जाता है।

निकाचित-वध के बाद भी जिन-नाम का वध चालू रहता है, क्योकि निकाचित वध के बाद वह मनुष्य, देव या नरक गति में जाता है, तो वहा भी उसका बंध चालू रहता है। यह बात

प्रज्ञापना पद २० तथा ५ वे कर्म-ग्रथादि से स्पष्ट है। जिन-नाम का निरतर बध, अनुत्तर विमान की अपेक्षा ३३ सागरोपम तक होने का ५ वे कर्म-ग्रथ की ६२ वी गाथा मे बताया है।

१०४६ प्रश्न–किशमिश (छोटी दाख), अगूर, इलायची, काली व सफेद मिर्च, बादाम, पिस्ता चारोली की अखड मज्जा, बिना पकाये टमाटर, धूगारी हुई ककडी, मोगरी आदि, सिके हुए भुट्टे के दाने एव गेहू, चने, ज्वार, बाजरी आदि के सेके हुए होले, केले, बर्फ आदि ऐसी कई वस्तुओ को कोई सचित्त और कोई अचित्त मानते है, सो कैसे ?

उत्तर–किशमिश के अन्दर बीज होने से इसको सचित्त समझना चाहिये, क्योकि जो फल है उसकी परिपक्व अवस्था मे बीज अवश्य होते हैं, बिना बीज का फल होना सभवित नही। प्रज्ञापना के प्रथम पद मे वृक्षो को फलो की अपेक्षा से "**एगट्ठि-याय बहुबीयगा य**" बताये हैं, परन्तु अबीया फल नही बताये हैं। तथा "**वल्लि**" के भेदो मे भी बीज वाले ही फल दिखाई देते हैं, तो फिर इसको अबीजा कैसे समझी जाय ?

भगवती सूत्र श २२ के छठे '**वल्लि**' वर्ग मे प्रज्ञापनानु-सार वल्लि के नामो मे किशमिश का भी नाम है और इनके मूल से लेकर बीज पर्यन्त दश उ बता कर विवरण किया गया है, इसमे बीज का अलग उद्देशा बताया है। इसमे मूलपाठ से ही बीज सिद्ध है तथा जीवाजीवाभिगम सूत्र मे भी बादर वनस्पति के अन्तर्गत प्रत्येक वनस्पति के भेदो के लिये पन्नवणा की ही भलावन दी है। उससे भी "**वल्लि**" और "**वलय**" का

स्वरूप उसी प्रकार स्पष्ट होता है।

स्थानाग स्थाना २ उ. १ (सू. ७३) की टीका मे किशमिश को स्पष्ट रूप से सचित्त बताई है।

शका–कोष मे इसका नाम **"अबीजा"** भी आया है। इससे इसमे बीज नही होना स्पष्ट सिद्ध है, तो फिर इसको सचित्त कैसे माना जाय ?

समाधान–कोष मे इसको जो **"अबीजा"** कहा है, वह अल्प-सूक्ष्म बीज की अपेक्षा समझना। परन्तु यहा 'अ' निषेधार्थक नही। अनेक स्थलो पर ऐसे उदाहरण मिलते हैं। जैसे–भगवती श १ उ. ८ मे दो समान पुरुषो से **"सवीर्य"** का जीतना और **"अवीर्य"** का हारना, ऐसे ही अज्ञानी, अचेल, अनुदरा कन्या, अलोमिकएडक (?) इत्यादि शब्दो मे 'अ' (न) अल्प, सूक्ष्म, कुत्सित आदि अर्थ मे है। ऐसे ही यहा समझना, क्योंकि इनमे प्रत्यक्ष बीज मिलते हैं। शाक, खीर आदि की उबली हुई किशमिश मे देखने से प्रत्यक्ष दिखाई देते हैं। अत इसको सचित्त समझना। जब किशमिश बीज के कारण से सचित्त है, तो फिर अगूर का तो कहना ही क्या ? क्योकि अगूर को ही सूखने से किशमिश (दाख) कहते हैं।

इलायची, उबली व बिना उबली दानो तरह की आती है, ऐसा सुना है। सो उसके अचित्त का पूरा निर्णय नही होने से अर्थात् शकास्पद होने के कारण अकल्पनिक समझ कर नही लेना। काली व सफेद मिर्च दानो एक ही डाल पर होती है। डाल पर इनका रग लाल होता है। उनमे से जो समय पर तोड कर

सुखा देते है, वे सूखने पर काली हो जाती है तथा डाल पर अधिक दिन रह जाने से, वे स्वाभाविक नीचे झड जाती है। अधिक पकने के कारण सूखने पर उनके छिलके उतरने से वे सफेद बन जाती हैं, परन्तु दोनो ही उबली हुई नही होती। निजी बगीचे मे मिर्ची पैदा करने वाले एक मुसलमान के द्वारा इस बात का पता लगा। अत इसको सचित्त समझना चाहिए।

बादाम, पिस्ता, चारोली आदि की अखड मज्जा भी सचित्त है, क्योकि मज्जा ही खास बीज है। ऊपर तो नारियल की काचली की तरह इनके भी छिलके हैं।

पन्नवणा के प्रथम पद मे आवले को "बहुबिया" माना है। उनकी गुठली एक होते हुए भी अंदर से जो काले दाने निकलते हैं, उनको बीज मान कर "बहुबिया" कहा है। ऐसे ही इनको भी बीज मान कर सचित्त समझना चाहिए।

बिना पकाये टमाटर, ककडी, मोगरी, भुट्टे आदि को भी मिश्रता के कारण अकल्पनीय समझना। आचाराग अध्ययन १०, दशवै अध्य ५ आदि मे भी इन वस्तुओ को पूरी सिकी हुई व सीजी हुई न हो, पूरा फरस न लगने के कारण मिश्र समझ कर त्याज्य बताई है।

केले भी बीज होने से सचित्त हैं। इसके लिये निम्न प्रमाण दृष्टव्य हैं–

(१) प्रज्ञापना पद १ मे प्रत्येक वनस्पति के भेदो के अन्तर्गत "वलय" जाति मे कदली (केले) का वर्णन है। वहां तालादि, जो भी भेद बतलाये हैं, वे बीज युक्त फल वाले हैं, तो

फिर केले को बीज रहित कैसे माने ?

(२) भगवती श २२ मे 'ताल' वर्ग के भेदो मे कदली का नाम भी है और इनके मूल से लेकर बीज पर्यंत दस भेदो के १० उ बताये हैं। उनमे जीव कहा से आकर उत्पन्न होते हैं आदि द्वार बताये है, जिनमे मूलादि पाँचो मे देव उत्पन्न नही होते और प्रवाल से बीज पर्यन्त ५ मे देव उत्पन्न होते हैं आदि वर्णन है। यहा मूलपाठ से केले मे बीज एव उनमे जीवोत्पति स्पष्ट रूप से बताई है तथा केले मे प्रत्यक्ष रूप से बीज देखने मे भी आते हैं। ध्यानपूर्वक देखने से किन्ही मे छोटे और किन्ही मे बडे दिखाइ देते हैं। इत्यादि प्रमाणो से केला सचित्त सिद्ध होता है।

कोकनी केले के विषय मे खोज करने से पता चला है कि एक जाति के केले को आठ दिन धूप मे सूखा कर, फिर आठ दिन छाया मे सूखा कर और बाद मे छिलका उतार कर घी की अगुली लगा देते है, परन्तु चासनी पक्व नही है, अत इनको भी सचित्त समझना।

पानी के बर्फ को सचित्त ही समझना चाहिए, क्योकि वह केवल पानी का ही बनता है। यदि गर्म पानी का भी बने, तो भी बर्फ तो अत्यत ठडा होने पर ही बनेगा और अत्यन्त ठडा होने पर अप्काय के जीव पुन उत्पन्न हो जाते हैं। जैसे ३, ४ और ५ प्रहर बाद, वर्षादि तीन काल मे, शीतादि की तरतमता से उष्ण पानी पुन सचित्त होना बताया है। यहा मशीन के द्वारा शीघ्र ठडा होने से जल्दी उत्पन्न हो जाते हैं, अत सचित्त समझना।

१०५० प्रश्न–अहोरात्रि और तिथि मे क्या भेद है ?

उत्तर–सूर्य से बनी हुई अहोरात्रि और चन्द्र से बनी हुई तिथि होती है। चन्द्र-मडल के ६२ भाग होते हैं, जिसमे से २ भाग तो सदा नित्य-राहु के विमान मे अनावृत और शेष ६० भाग आवृत-अनावृत होते रहते हैं। जितने समय मे चन्द्र-मडल के ६२ ये ६१ भाग की एक तिथि होती है। एक तिथि २९ मुहूर्त और एक मुहूर्त के ६२ ये ३२ भाग की होती है। ३०॥ अहोरात्रि की ३१ तिथियां होती है। इस प्रकार तिथि और अहोरात्रि मे भेद समझना चाहिये।

१०५१ प्रश्न–कर्म-प्रकृति का अबाधा-काल एक (उत्कृष्ट) रूप से ही बताया है। उससे कम (जघन्य) भी होता है या नही ? कम होता है, तो उसका वर्णन कहा है ? तथा आयु का अबाधा-काल कितना है ? और उसका वर्णन सूत्र मे क्यो नही है ?

उत्तर–कर्म-प्रकृति का अबाधा-काल कम अथवा जघन्य भी होता है और वह निम्नोक्त प्रकार समझना.–

प्रज्ञापना पद २३ उ. २ की टीका मे जितने कोटा-कोटी सागरोपम की स्थिति हो, उतने सौ वर्ष का अबाधा-काल है। तथा एक कोटा-कोटी के अन्दर जिस प्रकृति की स्थिति हो उसका अबाधा-काल आयु-कर्म छोड कर अन्तर्मुहूर्त का है।

पाचवे कर्म-ग्रथ की ३२ वी गाथा व अर्थ मे ज. अन्तर्मुहूर्त तथा उत्कृष्ट उपरोक्त प्रकार से बताया है। कर्म-प्रकृति की उ. स्थिति मे से अगुल के असख्यातवे भाग के आकाश-प्रदेश प्रमाण

जितने समय की स्थिति कम होने पर, एक समय का अबाधा-काल कम होता है। इस प्रकार अबाधा-काल कम करने की रीति बताई है।

आयुष्य-कर्म का अबाधा-काल जघन्य अन्तर्मुहूर्त का, उत्कृष्ट क्रोड पूर्व का तीसरा भाग तथा मृत्यु के जितने समय पहिले आयुष्य बाधे, उतना ही अबाधा-काल समझ लेना। नारकादि की जितनी आयु बताई है, उससे जितनी बध-स्थिति अधिक है उतना ही अबाधा-काल स्पष्ट हो जाने से सूत्रकार ने नही बताया, ऐसा संभव है।

१०५२ प्रश्न—कौन-से अवधिज्ञानी परमाणु को जानते हैं?

उत्तर—सपूर्ण लोक को जानने वाले अवधिज्ञानी तो स्कधो को ही जानते है. आगे (अलोक मे) ज्यो २ अवधिज्ञान बढता है, त्यो-त्यो सूक्ष्मतर स्कंधो को जानते हैं, यावत् परम अवधि-ज्ञानी परमाणु को भी जानते हैं।

१०५३ प्रश्न—नदीसूत्र मे द्रव्य से अवधिज्ञानी जघन्य से अनन्त रूपी द्रव्य (अनन्त-प्रदेशी स्कध) जानते हैं और उत्कृष्ट से सर्व रूपी द्रव्य को जानते हैं। सर्वरूपी द्रव्य मे परमाणु भी शामिल है। यहा जघन्य मे परमाणु नही लेकर अनन्त-प्रदेशी स्कध लिये हैं, सो इसका क्या कारण?

उत्तर—यहा जघन्य द्रव्य की अपेक्षा नही समझ कर अवधि-ज्ञान की अपेक्षा समझना अर्थात् छोटे से छोटे अवधिज्ञानी की यह छोटी शक्ति बताई है, फिर अवधिज्ञान जितना अधिक होता है उतनी ही इनमे सूक्ष्म पुद्गल देखने की शक्ति बढती है।

१०५४ प्रश्न–'मनोद्रव्य-वर्गणा-लब्धि' का क्या अर्थ है तथा वह किनको होती है ?

उत्तर–जो मन की बात को जाने, उसे मनोद्रव्य-वर्गणा-लब्धि कहते है और यह विशेष अवधिज्ञान वालो को ही होती है, वह देवो मे तो सम्यग्दृष्टि वैमानिक के अतिरिक्त नही होती। भगवती श. ५ उ. ४ मे इसका वर्णन है।

१०५५ प्रश्न–राज-पिंड का क्या अर्थ है ? अर्थात् राज-पिण्ड किसे समझना चाहिए ?

उत्तर–राजा की निम्नोक्त वस्तुओ को राज-पिण्ड कहते हैं–

असनादि ४, वस्त्र, पात्र, कबल और पादप्रोछन एव ८ प्रकार का राजपिण्ड कहलाता है। यहा राज-पिण्ड बडे राजाओ का आहारादि समझना, परन्तु जागीरदारादि का नही। राज-पिण्ड ग्रहण मे–कोई बडा आदमी आता-जाता हो, तो रुकना पडे, जिससे स्वाध्याय आदि मे बाधा पडे, हाथी, घोडादि के भय से बराबर ईर्या शोधन नही होवे, वे लोग आते-जाते साधु को देख-कर अपशुकन मान कर उपद्रव करे इत्यादि आत्म-सयम विरा-धना, आज्ञा-भग यावत् मिथ्यात्व की प्राप्ति आदि अनेक दोषो की प्राप्ति होती है। अत निषेध है। 'अभिधान राजेन्द्र' कोष "रायपिण्ड" शब्द मे।

१०५६ प्रश्न–पाच स्थावर परस्पर मे १, २ आदि भी उत्पन्न होते हैं या नही ?

उत्तर–समय-समय मे असख्याता ही उत्पन्न होते हैं, कम नही। भगवती श २४ उ १२ से १६ तक मे पाच स्थावर परस्पर

किनके होता है ?

उत्तर-पचमकाल के कर्मभूमि के मनुष्यो मे क्षत्रियादि उच्च गोत्र और चाडालादि नीच गोत्र, एव दोनो गोत्रो का उदय मिलता है। ऐसे तो उच्च और नीच-गोत्र-कर्म के आठ-आठ-भेद जाति, कुल, वल, रूप, तप, श्रुत, लाभ और ऐश्वर्य (ठकुराई) बताय हैं। ये उच्च हो, तो उच्च गोत्र और नीच हो, तो नीच-गोत्र का उदय समझना।

१०६१ प्रश्न-गोत्र और वेद भुज्यमान आयु मे जिस तरह वेदनी का परिवर्तन होता है, उसी प्रकार होता है या नही ?

उत्तर-भुज्यमान आयु मे गोत्र और वेद की पलटा-पलटी हो सकती है।

१०६२ प्रश्न-द्रव्य-वेद किस कर्म के उदय से होता है ?

उत्तर-भुज्यमान नाम-कर्म के उदय से होता है।

१०६३ प्रश्न-जघन्य आराधना वाले सात-आठ "सत्तट्ठ" भव करके मोक्ष जाते हैं। इसमे सात-आठ का क्या अर्थ ? कोई इसका अर्थ १५ भव का बतलाते हैं और कोई सात अथवा आठ भव का, तो सही क्या है ? सात अथवा आठ हो, तो दोनो बाते लिखने का क्या कारण ?

उत्तर-'सत्तट्ठ' भव मे सात भव देव के और आठ भव मनुष्य के सुबाहुकुमार आदि की तरह समझना तथा देव-भवो का नही गिन कर केवल मनुष्य-मनुष्य के ही भव गिने, तो अविच्छिन्न मनुष्य-भव ग्रहण अपेक्षा से आठ, अन्यथा सात अर्थात् सर्वप्रथम जिस भव मे आराधना की है, उसको शामिल गिने, तो

आठ नही तो मात समझना ।

१०६४ प्रश्न—सूयगडाग मे श्रुतस्कध २ अ २ मे तेरहवे क्रिया-स्थान को भी "सावद्य" बताया, तो क्या वहा भी सावद्य-प्रवृत्ति है ? मूलपाठ मे दूसरे बारह क्रिया-स्थानो की तरह तेरहवे को भी "तस्स तप्पतिय सावज्जति आहिज्जइ" लिखा है। जब तेरहवे गुणस्थान स्थित अरिहंत से भी सावद्य क्रिया होती है, तो उनके नीचे के गुणस्थानो वाले श्रमणो को भी हलन-चलनादि मे सावद्य-क्रिया लगती ही होगी ?

उत्तर—ईर्यापथिक-क्रिया केवल योग मे ही होती है। योग की प्रवृत्ति जब तक होती है तब तक तो हिंसा होने की सभावना है ही। हिंसा तो सावद्य ही होती है और उस योग-प्रवृत्ति से बंध भी होता है। वह योग-प्रवृत्ति तथा उससे होने वाली हिंसा उस श्रेणी तक (योग रहने की हालत मे) रुकना अशक्य होने से रुक नही सकती परन्तु उन वीतरागियो के भाव-कषाय के अभाव से विशुद्ध रक्षा का पूर्ण प्रयत्न एव पूर्ण सावधानी होने के कारण ईर्यापथिक रूप केवल सातावेदनीय का ही बन्ध होता है।

१०६५ एकेंद्रिय पृथ्वी, पानी, वनस्पति से निकल कर मनुष्य हो सकते हैं, किन्तु विकलेन्द्रिय मे यह सुविधा नही है। इसका क्या कारण ? श्री आईदानजी म. "श्रमण" पत्र मे लिखते हैं कि पृथ्वी, पानी, वनस्पति का स्वभाव दूसरे के हित मे अपना जीवन बलिदान करने का है। दुनिया को शीतलता, मधुरतादि प्रदान करते हैं, इससे वे मनुष्य होकर मोक्ष पा सकते हैं और विकलेन्द्रिय तो अपने शरीर का पोषण करने के लिये

दूसरो का खून चूसते है, इसलिये उन्हे ऐसी सुविधा क्या उनका यह कारण बताना ठीक है ?

उत्तर–विकलेन्द्रिय से निकल कर मनुष्य हो स- भगवती श २४, पन्नवणा पद ६ तथा २० जीवाजीव आदि से स्पष्ट है। पन्नवणा के २० वे पद मे तो यहा त है कि विकलेन्द्रिय से मनुष्य मे आये हुए जीवो को म- ज्ञान भी हो सकता है, परन्तु केवलज्ञान नही होता। अत नही होने सम्बन्धी कहना ठीक नही।

केवलज्ञान न होने के लिये भी उनका यह कारण ब- ठीक नही, क्योकि लोगो को प्रकाश देना, भोजनादि पक- सेक आदि से कई बिमारियाँ हटाना आदि अनेक प्रकार तेउकाय, लोक हित काम आती है और वायुकाय को भी जी- के लिये कितनी हितकारी मानते है ? यहा तक की "धम्म स्सणं चरमाणस्स पचणिस्साट्ठाणा प. त. छ काय .... स्थानाग ठा ५ उ ३ के इस पाठ से धर्म करने वालो के लि- ५ आधार हेतु बताये, जिसमे भी छ काय का प्रथम बोल है। छ काय मे तो तेउ-वायुकाय, सयम के सहायक हेतु होते हुए भी, वे वहा से निकल कर सीधे मनुष्य नही हो सकते। तिर्यंच पचेंद्रिय होने पर भी वे मिथ्यादृष्टि ही होते हैं और वे ही तेउ तथा वायुकाय के जीव अन्तर्मुहूर्त का पृथिव्यादि का भव करके मनुष्य होकर मोक्ष जा सकते हैं। अत इससे यह स्पष्ट होता है कि भव स्वभाव से ही जो जीव जैसा आयु नही बाध सकते हो, वैसे अध्यवसाय के स्थान उन जीवो को आयु

युगलियो का दृष्टि परिवर्तन नही होता । यह कही शास्त्र मे आपके देखने मे आया है क्या ?

उत्तर—भगवती श २४ उ. २ से ११ तक तथा २२, २३ एवं १२ त्रिदशो के १२ उ मे जो असख्य वर्ष की आयु वाले (युगलिये) तिर्यंच और मनुष्य उत्पन्न होते है, उनकी इस (तिर्यंच और मनुष्य के) भव की ऋद्धि बताई है। उसमे केवल एक मिथ्यादृष्टि, दो अज्ञान आदि बताये है। यदि दृष्टि का परिवर्तन हो सकता, तो इनमे २ दृष्टि, २ ज्ञान, २ अज्ञान आदि बताते, क्योकि आयु बंध के समय मे मिथ्यादृष्टि (सम्यग्दृष्टि मनुष्य और तिर्यंच सम्यग्दृष्टिपने मे वैमानिक के अतिरिक्त अन्य आयु का बध नही करते इसीलिये) और अन्य समय मे किसी मे सम्यग् और किसी मे मिथ्या होती है। जैसे नारक और देवो मे उत्पन्न होने वाले अयुगलिक मनुष्यो की इस भव की ऋद्धि मे ४ ज्ञान, ३ अज्ञान, केवली बिना ६ समुद्घात, तीन दृष्टि आदि परिवर्तन होने के कारण बताये हैं, इत्यादि गमाधिकार देखते हुए तो युगलियो मे दृष्टि का परिवर्तन नही होना स्पष्ट प्रतीत होता है। इस विषयक और कोई प्रमाण ध्यान मे नही है।

पृच्छा समय जो मिथ्यादृष्टि के सम्यगदृष्टि आदि होते हैं, वे ही 'प्रतिपद्यमानक' कहलाते हैं, अन्य नही। अर्थात् उस पृच्छा समय से पहिले के सम्यगदृष्टि और पूर्वभव से लेकर आये हुए, ये दोनो 'पूर्व प्रतिपन्न' ही गिने जायेंगे, प्रतिपद्यमानक नही। राजेन्द्र कोष—"सामाइय" शब्द के ५२ वे द्वार आदि से तो

उत्तर-पिछले मनुष्य भव मे सीखा हुआ पूर्वों आदि का श्रुतज्ञान जातिस्मरण से स्मृति मे आ जाता है। यही बात क्षत्रिय राजऋषिश्वर के लिये होना सम्भवित है।

१०७५ प्रश्न-भगवती श. १३ व २४ मे नो ग्रेवेयक मे तीन दृष्टि बताई है, सो क्या कारण है ?

उत्तर-अनेक स्थान पर नोग्रेवेयक मे मिश्र-दृष्टि के बिना दो ही दृष्टि बताई है। इस बात मे आचार्यों का मतभेद भी जाना नही। यहा भलामण देने मे जो पाठ सकोचा है, उसमे इसका खुलासा करना आवश्यक था, परन्तु वह रह गया। यह अशुद्धि भलामण देते हुए व लिपि करते हुए रह गई, ऐसा प्रतीत होता है ❀।

१०७६ प्रश्न-तेजोलेश्या मनुष्य, तिर्यंच, पृथ्वी, पानी, और वनस्पति में उत्पन्न हो सकती है ? गम्मा के थोकडे से विरोध तो नही आता ?

उत्तर-तेजोलेश्या वाले मनुष्य, तिर्यंच, तेजोलेश्या मे काल करके पृथ्वी, पानी, वनस्पति मे उत्पन्न नही होते हैं। यदि उत्पन्न होना माने, तो आगम से विरोध आता है।

१०७७ प्रश्न-उत्तराध्ययन सूत्र के १५ वे अध्ययन की १२ वी गाथा का शब्दार्थ व भावार्थ ठीक है क्या ?

उत्तर-उत्तराध्ययन के १५ वे अध्ययन की १२ वी गाथा का जो शब्दार्थ श्रीमान् प घेवरचदजी सा बांठिया (वीरपुत्र)

❀ कालान्तर में बहुश्रुत श्रमणश्रेष्ठ ने भी तीन दृष्टि होना स्वीकार किया था और यही मान्यता अधिक उपयुक्त लगती है-डोशी

ने किया, वह ठीक प्रतीत होता है ।

भावार्थ—गृहस्थो के वहा से जो कुछ आहार-पानी और अनेक प्रकार के खादिम, स्वादिम प्राप्त करके जो बाल वृद्धादि साधुओ पर अनुकपा (उपकार) करता है, मन, वचन, काया को वश मे रखता है, वह भिक्षु है । तथा कोई इस गाथा का अर्थ निम्न प्रकार भी करते हैं—

"जे काई आहारादिक गृहस्थीओ पासेथी पामीने (जो) जे साधु (ते) ते दातारोनो (त्रिविहेण) त्रिविधे करी (नाणुकपे) उपकार न करे एटले साधु मुधाजीवी होवाथी तेमनो सासारिक उपकार करवानो इच्छे नही (स) ते (मण वय काय संवुडे) मन, वचन, अने कायाए करी सारी रीते सवर वालो सतो (भिक्खू) भिक्षु कहवाय छे ।"

१०७८ प्रश्न—सिद्धो की स्वभाव-पर्याय का पलटा कैसे होता है ?

उत्तर—जिस शक्ति के निमित्त से द्रव्य सदा एक समान रहे और जिसकी पर्याय हमेशा बदलती रहे, उसको द्रव्यत्व गुण कहते हैं । यह गुण सब द्रव्यो मे पाया जाता है । सिद्ध भी जीव-द्रव्य है । अत सिद्धो मे द्रव्यत्व गुण होने से पर्याय भी निरतर पलटती रहती है अर्थात् षड्गुण हानि-वृद्धि रूप अगुरुलघु पर्याय की प्रवृत्ति सभी द्रव्यो मे होने से सिद्धो के भी होती है, ऐसा समझना चाहिए ।

१०७९ प्रश्न—अलोक मे स्वभाव और विभाव पर्याय है या नही ? यदि है, तो किस प्रकार समझना ?

उत्तर—अगुरुलघु गुण के विकार रूप स्वभाव पर्याय सब द्रव्यो मे होने के कारण यह अगुरुलघु रूप स्वभाव पर्याय अलोकाकाश मे भी समझ लेना और विभाव पर्याय तो केवल जीव और पुद्गलो मे ही होती है, अत अलोकाकाश मे नही है।

१०८० प्रश्न—धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय और आकाशास्तिकाय का स्वभाव पर्याय का पलटा कैसे होता है? छह गुण हानि-वृद्धि कैसे होती है? इसका उदाहरण सहित खुलासा करे।

उत्तर- धर्मास्तिकाय आदि तीनो ही पर्याय का पलटना आगम प्रमाण मे ही माना जा सकता है। जैसे कहा भी है कि "**सुक्ष्मा उवाग्गोचरा प्रतिक्षण वर्त्तमाना आगमा प्रमाण्यादभ्युपगम्या**" अगुरुलघु तथा पर्याय की हानि-वृद्धि पर पूर्वाचार्य ने जलकल्लोल का उदाहरण निम्न प्रकार दिया है:-

"**अनाद्यनिधनेद्रव्ये, स्वपर्यायः प्रतिक्षणम्।**
उमम्ज्जन्ति निमज्जन्ति, जलकल्लोलवज्जले॥१॥

१०८१ प्रश्न—उत्तराध्ययन सूत्र २६ गाथा ४० मे दिन सम्बन्धी ज्ञान, दर्शन और चारित्र के ३ अतिचार चले है और गाथा ४८ वी मे रायसी संबधी प्रतिक्रमण में ज्ञान, दर्शन, चारित्र और तप, ये ४ अतिचार चले हैं और वर्त्तमान में भी ४ बोले जाते हैं, इसका क्या कारण है?

उत्तर—'रात्रि भोजन के त्याग रूप' तपाचार साधु के रात को ही होता है, ऐसा नही समझना, क्योंकि स्वाध्याय, ध्यान आदि रूप तपाचार साधु के दिन और रात चालू ही रहता है,

अत सभी अतिचारो की आलोचना दिन व रात्रि के प्रतिक्रमण मे प्रभु आज्ञानुसार करना आवश्यक है।

मुख रूप से प्रतिक्रमण का कुछ पाठ तो दिन से, कुछ रात्रि से और कुछ दोनो से सबध रखता है, परतु रायसी-देवसी प्रतिक्रमण मे तो सभी पाठो का चितन करना अनिवार्य बताया है। इस प्रकार से भी सभी अतिचारो की शुद्धि के लिये रायसी-देवसी प्रतिक्रमण मे चितन करना सिद्ध होता है। रही बात ४० वी गाथा मे तीन और ४८ वी गाथा मे चारो अतिचारो के चितन करने की क्यो बताई, सो उसका समाधान निम्न प्रकार से होता है–

ज्ञानाचारादि जो पचाचार हैं, उसका समावेश ज्ञानाचार यदि तीन तथा चार भेदो मे भी हो सकता है। अत तीन तथा चार भेदो मे की आलोचना से सभी अतिचारो की आलोचना समझ लेना चाहिए।

१०८२ प्रश्न–भरत चक्रवर्ती को देश साधने के लिये ६० हजार वर्ष लगे हैं, जिसके बाद ब्राह्मी और सुदरी ने दीक्षा ली, ऐसा अब तक सुना है और ऋषभदेव भगवान १००० वर्ष तक छद्मस्थ रहे, तो प्रथम शिष्या कैसे बनी ?

उत्तर–"बभी सुदरी पामोक्खाओ" इस जबूद्वीप प्रज्ञप्ति के पाठ मे तो ब्राह्मी-सुदरी महासतियो को प्रमुख महासतियें बताई है। इससे स्पष्ट हो जाता है कि अन्य सब सतियो मे इनकी दीक्षा पहले हुई थी। तथा कथाकार तो सुदरी महासती का दीक्षा समय भरत महाराज के खड-साधन के बाद का बताते

हैं । वह इस पाठ से ठीक प्रतीत नही होता, परंतु पहिले होना युक्ति सगत है ।

१०८३ प्रश्न–महाविदेह क्षेत्र मे मूलगुण-उत्तरगुण-प्रतिसेवी साधु हरसमय मिलते है या नही ? और नियठे प्रतिसमय कितने समझने चाहिये ?

उत्तर–मूलगुण-उत्तरगुण के प्रतिसेवी साधु महाविदेह मे हर समय मिलते है । पुलाक और निर्ग्रंथ के अतिरिक्त शेष नियठे हर समय मिलते है ऐसा समझना चाहिये ।

१०८४ प्रश्न–धर्मरुचि अणगार के धर्म-गुरुजी को कोनसा ज्ञान था, जिससे कि वे उनके उत्पन्न होने आदि की बात जान सके ?

उत्तर–"धम्मघोसा थेरा पुव्वगए उवओगं गच्छंति.. ....." इस पाठ से स्पष्ट है कि धर्मघोष स्थविर ने पूर्वों के ज्ञान मे उपयोग लगा कर सब वृतात जाना ।

१०८५ प्रश्न–सर्वार्थसिद्ध के देवता के भवनो मे एक ही देवता रहते है या अनेक ?

उत्तर–सर्वार्थसिद्ध के भवनो मे अनेक देव होने से ही वहा के देवो की सख्या पूर्ति का हिसाब बैठ सकता है, अन्यथा नही । अत. प्रत्येक भवन मे अनेक देव होना सभव है ।

१०८६ प्रश्न–श्रावक अभयदान, अनुकंपादान आदि जो भी देते हैं, वह कोनसे व्रत मे समझना ?

उत्तर–व्रत की दृष्टि से मुख्यरूप से प्रथम व्रत मे और गोण रूप से उपभोग-परिभोगादि व्रत में समझना चाहिये ।

पुण्य बध के कारण से भी आ सकता है।

१०८७ प्रश्न—९८ बोल के अल्पाबहुत्व के ४२, ४३, ४४ बोल एकात "सण्णी" (सज्ञी) कहे, तो एक तिर्यंचनी के असख्याता पुत्र कैसे होवे ? और असन्नी कहे तो ४६ वा असख्यातवा बोल कैसे बैठे ? कारण कि तिर्यंचनी से देवता असंख्याता गुणा हैं और ये तीनो बोल उनके बाद आये है ?

उत्तर—स्त्री व पुरुष वेद वाले तिर्यंचो के बीच-बीच मे नपुसक वेद का उदय हो सकता है। नपुसक वेद का उदय अनेक स्त्री-पुरुषो के होने के कारण, वे स्त्री व पुरुष होते हुए भी उस उदय की अपेक्षा से नपुसक गिने जाते हैं। तिर्यंच मे यह बात विशेष रूप से है। अत सन्नी तिर्यंच की अपेक्षा यह बोल बैठते हैं।

१०८८ प्रश्न—आत्मा की शाश्वतता के सम्बन्ध मे—

पच तत्त्व—पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु आदि, जैन दर्शनानुसार भी सजीव हैं। अत इनमे सजीव आत्मा की उत्पत्ति होती है। यह अमान्य कैसे ? तथा इन पच तत्त्वो के विनष्ट हो जाने पर आत्मा का भी सद्भाव कैसे रहता है ? इस प्रकार आत्मा सादिमान्न भी सिद्ध की जाती है।

कुछ उदाहरण, जैसे—दो विद्यार्थियो के एक साथ समान श्रम करने पर भी एक थोडे से परिश्रम से ही सफल हो जाता है और दूसरा कुछ भी प्राप्त नही कर सकता। तथा एक नवजात शिशु के जन्म लेते ही स्तन पान करने का उदाहरण दिया जाता है इस सम्बन्ध मे मेरा विचार यह है कि—प्रथम उदाहरण मे

माता-पिता के रज-वीर्य के अंश ही कमजोर विद्यार्थी मे ऐसे रहे कि जिससे उसके बौद्धिक विकास के तन्तु पूर्ण नही हो सके। तथा नवजात शिशु अपने मुंह से माता के स्तन का स्पर्श करता है, जिससे स्तन मे से दूध निकलने लगता है और इसी प्रकार स्तन के दबने से दूध मिलता रहता है। पूर्व काल मे आत्मा का सद्भाव इसमे सिद्ध किया जाता है। इसके अतिरिक्त कई व्यवसायियो के उदाहरण भी प्रस्तुत किये जाते हैं। एक व्यवसायी अधिक परिश्रम करने पर भी धनाढ्य नही बन पाता। इस सम्बन्ध मे मेरा विचार है कि अधिक परिश्रम करने वाले की धन कमाने की योजना कुछ दोषपूर्ण होगी। नीच-ऊँच गोत्र को भी कह कर आत्मा के पूर्वभव की सिद्धि की जाती है, परन्तु नीच-ऊँच गोत्र मे जन्म, यह तो समाज और जाति की विषमताएँ समाज द्वारा निर्मित है।

परलोक की सिद्धि का प्रश्न भी इसी सम्बन्ध का है—

परलोक, इहलोक की तरह प्रत्यक्ष नही होने से प्रामाणिक कैसे माना जाता है? परलोकस्थ आत्माएँ अपने सबधियो को निज प्रियजनो की पुण्य-पाप के शुभाशुभ कर्म-फलो मे सावधान क्यो नही करती? जिससे वे अपने प्रियजनो को नरक की नारकीय यातनाओ से बचा कर देवलोक के सन्मुख कर सके?

उत्तर—जो पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश रूप पाच महाभूत मानते हैं, वे इनमे जीव (आत्मा) नही मानते हैं। जैन दर्शन आकाश को निर्जीव और शेष चारो मे जीव मानता है। जो भूतो मे जीव (चेतना) मानते ही नही, तो ऐसी स्थिति मे उनमे

जीव उत्पन्न ही कैसे होगा ? जैन मान्यता से चारो मे जीव पहले मे ही है, तो फिर उनसे नवीन जीवोत्पत्ति हुई, यह माने ही कैसे ? अर्थात् वे जीव ही थे। नवीन जीव पैदा होने का कोई प्रश्न ही नही रहा। हा, उस भव को छोड कर अन्य भवो को जीव प्राप्त कर सकता है, परंतु पहिले के जीव का नाश और नवीन जीवोत्पत्ति कदापि नही हो सकती। नाश और उत्पत्ति शरीर के उन-उन आकारो की ही होती है। अनेक जीवो का एक जीव और एक के अनेक जीव कदापि नही हो सकते। पृथ्वी आदि सभी भूतो से थोडे-थोडे जीव आ कर उसकी एक आत्मा नही हो सकती। अत भूतो आदि से आत्मा होना अमान्य किया है। पृथ्वी आदि षटकाय मे अनेक जीव हैं, उनका काय-परिवर्तन होता ही रहता ही है।

तत्त्व पृथक् होने को ही भूतो का विनाश मानते होग ? भिन्न-भिन्न भूत तो रहते ही हैं।

आत्मा अमूर्त है, उसका नाश कदापि नही होता। जैसे मकान नाश होने पर भी उसके आकाश का नाश नही होता, वैसे ही काय का नाश होने पर जीव (चेतना) का भी नाश नही होता।

ज्ञान प्राप्त करता है, शब्द, गधादि का नही । इसी प्रकार नासिकादि शेष इद्रियो से भी गधादि एक-एक का ही ज्ञान प्राप्त करता है, परंतु जीव को तो शब्दादि पाचो का ही ज्ञान होता है । अत शरीर व इद्रियो से आत्मा भिन्न पदार्थ है । जैसे कहा भी है कि–

छे इन्द्रिय प्रत्येक ने, निज-निज विषयनो ज्ञान ।
पांच इन्द्रिना विषयनुं, पण आतमा ने भान ।।१।।

मेरा शरीर अच्छा, कृश, स्थूल आदि कहते हैं, सो इन शब्दो से भी शरीर से भिन्न आत्मा का बोध होता है । किसी कृश देह मे बुद्धि अधिक और स्थूल मे अल्प होती है । इससे भी शरीर से जीव की भिन्नता प्रकट होती है । जैसे कहा भी है कि–

परमबुद्धि कृश देहमां, स्थूल देह मति अल्प ।
देह होय जो आतमा, घटे न एम विकल्प ।।१।।

आत्मा की शका करने वाला स्वय आत्मा ही है, अन्य नही । जैसे कहा भी है कि–

आत्मानी शका करे, आत्मा पोते आप ।
शंकानो करनार ते, अचरज एह अमाप ।।१।।

सर्पादिक मे क्रोधादि की तारतम्यता, बिल्ली, छिपकली आदि मे कपट व हिंसादि के भाव तथा सदाचारी के असदाचारी और असदाचारी के सदाचारी सतान आदि, ये विचित्रतायें पूर्व-जन्म के सस्कारो के कारण दिखाई देती है । जैसे कहा भी है कि–

क्रोधादि तारतम्यता, सर्पादिकनी माय।
पूर्व जन्म संस्कार ते, जीव नित्यता त्याय ॥१॥

बाढ, भूकंप, ज्वालामुखी, ट्रेन, मोटर, हवाई-जहाज, विद्युतपात, इलेक्ट्रिक आदि की दुर्घटनाओं में भी कर्म अनुसार अन्तर रहा करता है। अमुक जीव के जन्म के बाद घर का सम्पन्न-निर्धन हो जाना तथा अंधा, बहरा, मूक, कुष्ठ आदि रोगियों के दृश्य से भी पूर्व-संचित कर्म का होना सिद्ध होता है। जैसे कहा भी है कि—

संपत विपत सुखी दुखी, मूढ चतुर सुजान।
नाटक कर्मना जाणिये, जग नाना विधान ॥१॥

मनुष्य की अपेक्षा पशु, पक्षी, चींटी पतंग आदि आकार प्रकार से भिन्न होने से इनको भी परलोक में गिने हैं। तिर्यंच लोक तो मनुष्य लोक की तरह प्रत्यक्ष दिखाई भी देता है। इस एक परलोक की प्रत्यक्षता से अन्य नरकादि परलोक की भी प्रतीति होती है। संक्षेप में यही कहना है कि किसी भी द्रव्य का कभी भी नाश नहीं होता। केवल पर्याय (अवस्था हालत) में ही परिवर्तन होता है। जैसे कहा भी है कि—

आत्मा द्रव्ये नित्य छे, पर्याये पलटाय।
बालादि वय त्रणनु, ज्ञान एकने थाय ॥१॥
क्यारे कोई वस्तुनो, केवल होय न नाश।
चेतन पामे नाश तो, केमां भले तपास ॥१॥

नारक परतंत्र हैं। उनमें यहां आने की शक्ति भी नहीं है।

और यदि हो, तो आने भी कौन दे ? देव, सुखो मे व्यस्त रहते हैं, आने का सोचते-सोचते ही यहा का अल्पायु पूर्ण हो जाता है। तथा वहा का नया प्रेम जुडा होता है। इत्यादि कारणो से प्राय नही आते, परन्तु लोक तो प्रत्यक्ष तथा अनुभव सिद्ध भी है।

किसी-किसी के पास इस युग मे भी देव आते हैं। जैसे श्री चुन्नीलालजी म सा तथा महासती श्री पानकुंवरजी आदि के पास आये भी थे। वर्त्तमान युग मे भी किसी-किसी जीव को बचपन मे ही जातिस्मरण हुआ सुनने मे आया है, जिससे उसने अपने पिछले भव की बात (गढा हुआ धनादि) बताई है। इससे भी परभव की सिद्धि होती है।

आचारांग का पहिला अध्ययन, सूत्र कृतांग का १–१२ व १७ वा अध्ययन, रायप्पसेणी के जीव विषयक प्रश्नोत्तर, ये सभी टीकायुक्त या टीका का भाषातर हो, तो तथा नंदीसूत्र की जीव विषयक टीका तथा द्रव्य-सग्रह, जीवविचार, प्रमाण-नय-तत्त्व-लोकालकार, स्याद्वाद-मजरी, प्रमेयकमल-मार्तंड, नय-चक्र आदि ग्रन्थ भी इसके लिये देखना लाभप्रद प्रतीत होता है।

१०८९ प्रश्न–अर्द्ध पुद्गल-परावर्तन किसे कहते हैं ?

उत्तर–औदारिक, वैक्रिय आदि ७ पुद्गल-परावर्तन भगवती सूत्र श. १२–३–४ मे बताये हैं। प्रत्येक पुद्गल-परावर्तन मे अनतकाल–अनंत उत्सर्पिणी और अनत अवसर्पिणी अवश्य लग जाती है, परन्तु सबसे अधिक काल वैक्रिय पुद्गल-परावर्तन होने मे लगता है। जितना काल वैक्रिय पुद्गल-परावर्तन मे लगता है,

उससे आधे काल को अर्द्ध पुद्गल-परावर्तन कहते हैं। इस अर्द्ध पुद्गल-परवर्तन की भी अनंत उत्सर्पिणी अवसर्पिणी होती है।

१०९० प्रश्न—जम्बूद्वीप का परिमाण शाश्वत योजन से है या अशाश्वत से ? यदि शाश्वत से है, तो भरत क्षेत्र की गंगा-सिन्धु कौनसी समझनी चाहिए ? सभी शाश्वत है और समुद्र मे मिलते समय ६२॥ योजन का पाट कहा है। शाश्वत से २॥ लाख कोस होते हैं, तो इतना पाट तो दिखता नही है और छोटे खडो को साधने सेनापति ने चर्म रत्न के द्वारा पार की थी, तो कहाँ तो चर्म-रत्न और कहा आज के साधन ? जब इनको न माने, तो क्षुल्लक खडो मे बब्बर जो नयवनादि देश तो सेनापति ने ही साधे हैं, इत्यादि शकाओ का समाधान करने की कृपा करे।

उत्तर—जबूद्वीप और गगा सिन्धु नदी का परिमाण शाश्वत योजन से ही बताया है। ये नदिये जहा समुद्र मे मिली हैं, वहा का पाट तो ६२॥ योजन का है, परन्तु इधर इतना नही।

प्रमाण अगुल के ६२॥ योजन के २॥ लाख कोस उच्छेद अगुल से होते हैं, अभी के कोसो से नही। अभी का कोस उस उच्छेद अगुल के कोस से बडा है। अर्ध पचम आरे के मनुष्यो का कोस उच्छेद अगुल का समझना चाहिए।

खास गगा और सिन्धु कहा है, इसका पूरा पता मुझे नही है। उनका पाट तो छोटे समुद्र की तरह दिखाई देता होगा। जैसे एक ही नाम के अनेक ग्राम, द्वीप, समुद्र, मनुष्य आदि मिलते हैं, वैसे ही क्षुल्लक खडो मे भी, सिंहल, बब्बर आदि नाम

वाले देश होने मे कोई बाधा दिखाई नही देती ।

१०९१ प्रश्न–नव निधान से चक्रवर्ती को सब वस्तुएँ मिलती हैं तो निधान की आराधना तो पीछे करते हैं । दूसरी बात, सेनापति, गाथापति और पुरोहित, चक्रवर्ती के नगर मे उत्पन्न होना लिखा है, निधान मे भी उत्पत्ति लिखी है, यह बात कैसे समझना ? ऐसे ही चक्रादि रत्नो के स्थान, आयुधशाला तथा श्रीघर लिखा है, इन का भी खुलासा लिखावे ।

उत्तर–सेनापति आदि पचेन्द्रिय रत्न और चक्रादि एकेन्द्रिय रत्न निधान मे पैदा नही होते, परन्तु सर्व रत्न नाम के चौथे निधान के पुस्तको मे जो चक्रवर्ती के १४ रत्न उत्पन्न होते हैं, उनके स्वरूप (उत्पत्ति स्थान, लक्षण, गुण) आदि का वर्णन विस्तृत रूप से बताया हुआ होता है । शेष निधानो की पुस्तको मे भी भिन्न-भिन्न वस्तुओ का भलो-भाति वर्णन दिया है । इस-लिये चक्रवर्ती के उपयोगी सभी वस्तुओ का स्वरूप जानने-पहचानने आदि के सभी साधन उसमे उपलब्ध रहते हैं, ऐसा समझना ।

१०९२ प्रश्न–प्रथम भरत चक्रवर्ती को स्थान स्थान पर तेला करने की विधि कौन बताते हैं ? इस अवसर्पिणी मे पहले कोई चक्रवर्ती तो हुआ नही ?

उत्तर–चक्रवर्ती के दो हजार देव तो अंग सेवक होते हैं और वे स्वय अति निर्मल मति वाले होने कारण जहा उनको तेला आदि करने का रिवाज होता है, वहा बिना किसी भूल के वैसी ही मति (विचार धारा) उत्पन्न हो जाती है । अत उनको

उत्तर- प्रथम व्रत का धारक श्रावक ऐसी प्रवृत्ति करे, तो उसका व्रत भंग हो जाता है।

१०९६ प्रश्न—श्रावक, लाखों मन पानी खेत में पिलाता है और एक पाव भर पानी निष्प्रयोजन नष्ट करता है। उसके व्रत में दोष लगता है क्या? यदि लगता है, तो किस व्रत में और कितना दोष लगता है?

उत्तर—जिस श्रावक के आठवां व्रत धारण किया हुआ हो, वह यदि जानबूझ कर निष्प्रयोजन पानी को नष्ट करता है, तो उसके आठवें व्रत में दोष लगता है और अनाचार तक पहुँच सकता है, तथा बेपरवाही के कारण अर्थ-दंड में भी आगे बढ़ जाता है।

१०९७ प्रश्न—संत-मुनिराज निष्प्रयोजन एकेन्द्रिय आदि जीवों की हिंसा इच्छापूर्वक कर सकते हैं क्या? निष्प्रयोजन हिंसा करने वाले मुनि का पहला व्रत भंग होता है या नहीं?

उत्तर—मुनि, हिंसा नहीं कर सकता। यदि करता है, तो मुख्य रूप से पहिले का और गौण रूप से अन्य व्रतों का भंग होता है।

१०९८ प्रश्न—संत सप्रयोजन हिंसा कर सकता है या नहीं? यदि कर सकता है, तो किस प्रयोजन से?

सप्रयोजन इच्छापूर्वक एकेन्द्रिय आदि जीवों की हिंसा करने वाले का पहिला व्रत भंग होता है या नहीं?

उत्तर—संत-मुनिराज संपूर्ण हिंसा के त्यागी होने से सप्रयोजन भी इच्छापूर्वक हिंसा नहीं कर सकते। यदि करे तो

व्रत का भग होता है। इसलिये शास्त्रकारो ने कृत हिंसादि दोषो का प्रायश्चित्त नही करने वाले पुलाकादि निर्ग्रंथो को विराधक बताये है।

निम्न विवरण से इस प्रसग मे और भी स्पष्टीकरण हो जायगा।

हिंसा की इच्छा नही होते हुए भी सयम-रक्षार्थ, निर्मलता, अप्रतिबधतादि के लिये स्वाध्यायादि रूप साधारण योग प्रवृत्ति करना, पूजन, प्रतिलेखन, विहार, नदी उतरना, पानी मे गिरे हुए साधु-साध्वी को निकालना व अशक्य-परिहार रूप जो मल-मूत्रादि का त्याग, बरसते पानी, धुअर आदि मे करना इत्यादि कार्यों को विधिपूर्वक करते हुए भी जो एकेन्द्रियादि जीवो की विराधना हो जाती है उसका भी वे विधानानुसार प्रायश्चित्त ग्रहण करते हैं और इसमे भी विवशता अनुभव करते है। जैसे कि—उच्च सयमी गौतमादि अणगारोने भी भिक्षादि के बाद हिंसा की आशका मात्र से ही प्रायश्चित्त रूप ईर्यापथिक प्रतिक्रमण किये हैं। किन्तु बरसते हुए पानी, धुअर आदि मे भिक्षा, विहार, धर्मोपदेशादि शक्य-परिहार रूप कार्यों के लिये तो वे जाना रोक ही देते हैं। इससे स्पष्ट है कि साधु इच्छापूर्वक हिंसादि पाप रूप कार्य नही कर सकते।

१७९९ प्रश्न—अपवाद की क्या परिभाषा है ?

उत्तर—मुख्य विधि मे किन्ही खास शास्त्रोक्त प्रसगो पर जो छूट बताई है, उसे 'अपवाद' कहते हैं।

११०० प्रश्न—अपवाद का सेवन किस अवस्था मे हो

सकता है ?

उत्तर–मल-मूत्र त्यागादि रूप जो अशक्य-परिहार शास्त्रोक्त कार्य है, उन्ही मे अपवाद का आश्रय है, अन्यत्र नहीं।

११०१ प्रश्न–धर्म-प्रचार करने के लिये जानबूझ कर, मुनिराज एकेन्द्रिय आदि जीवो की हिंसा कर सकता है या नही ?

उत्तर–धर्म-प्रचार के लिये जानबूझ कर मुनि एकेन्द्रिय आदि जीवो की हिंसा नही कर सकते।

११०२ प्रश्न–धर्म-प्रचार के लिये संत-मुनिराज आकाशवाणी–रेडियो-प्रसारण मे बोल सकते हैं या नही ?

उत्तर–आकाशवाणी प्रसार आदि ध्वनि-वर्धक यन्त्रो में बोलना मुनि-कल्प के विरुद्ध है।

११०३ प्रश्न–धर्म-प्रचार के लिये संत-मुनिराज रेल, मोटर, साइकिल, हवाईजहाज, ट्राम आदि साधनो को काम मे ले सकते हैं क्या ?

उत्तर–धर्म-प्रचार के लिये मुनि, रेल आदि प्रश्न-कथित किसी भी साधन को काम मे नही ले सकते।

११०४ प्रश्न–धर्म-प्रचार के लिये रबर के पहियो की गाडी, जिसमे मशीन न हो, परन्तु मनुष्य खीच कर ले जाता हो, उसका मुनिराज उपयोग कर सकते हैं क्या ?

उत्तर–धर्म-प्रचार के लिये मनुष्य द्वारा खीची जाने वाली बिना मशीन की रबड के पहियो की गाडी का भी मुनि उपयोग नही कर सकते।

११०५ प्रश्न–मनुष्य और तिर्यंच, गर्भ मे वैक्रिय करते है,

और गर्भ मे सग्राम कर सकते है क्या ?

उत्तर--भगवती सूत्र श १ उ ७ से स्पष्ट है कि गर्भ मे रहा हुआ सन्नी पचेन्द्रिय जीव, चातुरगिणी सेना वैक्रिय करके शत्रु के साथ सगाम कर सकता है। तथा स्थानाग स्था २ उ ३ से स्पष्ट है कि--मनुष्य और पचेन्द्रिय तिर्यन्च--दोनो ही गर्भ मे वैक्रिय कर सकते हैं।

११०६ प्रश्न--छाछ मे निकाल कर अलग पात्र मे रखने पर मक्खन मे अन्तर्मुहूर्त मे जीवो की उत्पत्ति हो जाती है--ऐसा कई कहते है, सो ठीक है क्या ?

उत्तर--बृहत्कल्प के ५ वे उ से स्पष्ट होता है कि--तेल-घृतादि की तरह लाया हुआ मक्खन भी साधु ३--४ प्रहर तक मालिश आदि के काम मे ले सकते हैं। यदि इसमे अन्तर्मुहूर्त बाद जीवोत्पत्ति शास्त्रकार मानते, तो इतनी देर तक रख कर मालिश आदि करने की आज्ञा कैसे देते ? तथा वहा मक्खन को छाछ, धोवन आदि मे रखने का वर्णन भी नही बताया है। पिघलने आदि के भय से छाछ, धोवन आदि मे रखते हैं।

११०७ प्रश्न--मिथ्यात्वी जीवो के सकाम-निर्जरा हो सकती है या नही ?

उत्तर--मिथ्यात्व के असख्य प्रकार होते हैं। बिलकुल हलके मिथ्यात्व और भव्यत्व के परिपाक वाले तथाविध सामग्रीजन्य योग्यता के आधार पर अनुकपा * आदि की प्रकृष्ट मात्रा एव

* अणुकपऽकामनिज्जर, बालतवे दाण-विणयविब्भगे। सयोगविप्पओगे, वसणूसवइड्ढि सक्कारे।१। (आवश्यक निर्युक्ति श्री हरिभद्रसूरिजी)।

समकिताभिमुख वालो के अतिरिक्त मिथ्यात्वी के सकाम-निर्जरा होने का संभव नही है ●।

मेन प्रश्न १७ मे जो मिथ्यात्वी के सकाम-निर्जरा स्वीकारी है, वहा भी ऐसे जीवो की अपेक्षा समझने से ही ठीक वैठता है। ऐसे जीव तो अन्य मिथ्यात्वी जीवो की अपेक्षा अल्पतम ही मिलते हैं। अत इनको नगण्य करके सम्यक्दृष्टि जीवो के ही सकाम-निर्जरा होनी वताई है।

११०८ प्रश्न—ग्यारहवे गुणस्थान मे वर्द्धमानादि तीनो परिणामो मे से कितने होते हैं ?

उत्तर—भगवती श २५ उ. ६ मे निर्ग्रंथ के अवस्थित परिणामो की स्थिति ज. एक समय, उत्कृष्ट अतर्मुहूर्त की वताई है। इससे ग्यारहवे गुण मे एक अवस्थित परिणाम ही होना सभव है।

११०९ प्रश्न—सम्यक्त्व के अतिचारो मे पर-पाखडी प्रशंसा और पर-पाखड सस्तव आये हैं। यहा पूछना यह है कि पाखड के साथ 'पर' विशेषण है, इससे प्रश्न होता है कि क्या 'स्व पाखड' भी होता है ? 'पर' शब्द 'स्व' की अपेक्षा रखता है, स्व पाखडी भी होते हैं। इसी से 'पर' विशेषण लगाकर उनकी सगति त्याग का विधान हुआ है। अव प्रश्न होता है कि—स्वपाखडी कौन है ?

● तभी अनतवार नौग्रैवेयक ले जाने वाली मिथ्यात्वयुक्त विशुद्ध क्रिया, मोक्ष हेतु रूप किंचित् भी नही हुई है।

यदि पर पाखडी के स्थान पर अन्यतीर्थी, मिथ्यात्वी या सामान्य रूप से 'पाखडी' शब्द होता, तो क्या आपत्ति थी ? आनन्द प्रकरण मे "अण्णउत्थिय" आया ही है।

उत्तर-पासड (पाखड) शब्द का अर्थ अनुयोगद्वार की टीका मे 'व्रत' भी बताया है। अत पासड शब्द मे सर्वज्ञ प्रणीत के अतिरिक्त ३६३ मतावलवी आ जाते हैं। स्व पाखडी मे प्रभु आज्ञावर्ती समझना चाहिए।

१११० प्रश्न-ज्योतिषी के दो इन्द्र-१ चन्द्र और २ सूर्य। किन्तु चन्द्र और सूर्य तो अनेक हैं-चल और अचल। तब ये दो इन्द्र कौन से ? शेष चन्द्र और सूर्य किस श्रेणी के हैं ?

उत्तर-वैसे तो सभी चन्द्र और सूर्य इन्द्र हैं, परन्तु जाति मात्र का आश्रय लेकर ज्योतिषियो के दो इन्द्र-चन्द्र और सूर्य बताये हैं। ऐसा भाव स्थानाग सूत्र के दूसरे ठाणे के तीसरे उद्देशे की टीका से निकलता है।

११११ प्रश्न-देवलोक मे जो पानी है वह अप्कायमय है, परन्तु वहा अप्काय आई कहाँ से ? क्योकि वहा वर्षा तो होती नही, फिर पानी की आवक कहाँ से होती है ? वहाँ जो वस्त्र हैं, वे वनस्पति के बने हुए हैं क्या ?

उत्तर-जिस प्रकार मनुष्य क्षेत्र के पद्म, महापद्मादि द्रहो मे तथा बाहर के समुद्रो मे अप्काय के जीव और पुद्गलो का चयोपचय होकर अपने आप अप्काय पैदा होती रहती है, उसी देवलोक मे भी बिना वर्षा के अप्काय की उत्पत्ति होती

है । वैक्रिय वस्त्रो के अतिरिक्त जो वहा स्वाभाविक वस्त्र हैं, वे पृथ्वीकाय के हैं ।

१११२ प्रश्न–जातिस्मरणज्ञान मिथ्यादृष्टि को भी हो सकता है क्या ?

उत्तर–जातिस्मरण, मतिज्ञान का भेद है, अत मिथ्यादृष्टि को भी हो सकता है । सम्यग्दृष्टि का जातिस्मरण, मतिज्ञान मे और मिथ्यादृष्टि का मतिअज्ञान मे है ।

१११३ प्रश्न–अपवाद की क्या परिभाषा है ?

उत्तर–मूल नियम की रक्षा के हेतु आपत्ति आने पर अन्य मार्ग ग्रहण करना–अपवाद है । जैसे–साधु का नदी उतरना आदि । (बृहत्कल्प निर्युक्ति गाथा ३१९, स्याद्वादमंजरी की कारिका ११ टीका) जैन सिद्धात प्र. पृ २५ ।

१११४ प्रश्न–अपवाद मे कार्य करने वालो को क्या प्रायश्चित्त आता है ?

उत्तर–अपवाद विभिन्न प्रकार के होते हैं और उनके प्रायश्चित्त भी भिन्न भिन्न प्रकार के होते हैं, तथा किसी अपवाद का प्रायश्चित्त नही भी होता है ।

१११५ प्रश्न–ध्वनिवर्द्धक-यंत्र की अपवाद की स्थिति क्या हो सकती है ?

उत्तर–ठाणाग के १० वे ठाणे मे और भगवती सूत्र के श. २५ के उ. ७ मे दोष आने के १० मार्ग बताये हैं । अपवाद का समावेश 'आपत्ति' नामक पांचवे दोष मार्ग मे होता है, अन्य मार्गों मे नही । अत बिना आपत्ति के अपवाद का सेवन नहीं होना

यदि पर पाखडी के स्थान पर अन्यतीर्थी, मिथ्यात्वी या सामान्य रूप से 'पाखडी' शब्द होता, तो क्या आपत्ति थी ? आनन्द प्रकरण मे "**अण्णउत्थिय**" आया ही है।

उत्तर-पासंड (पाखड) शब्द का अर्थ अनुयोगद्वार की टीका मे 'व्रत' भी बताया है। अतः पासंड शब्द से सर्वज्ञ प्रणीत के अतिरिक्त ३६३ मतावलबी आ जाते हैं। स्व पाखडी मे प्रभु आज्ञावर्ती समझना चाहिए।

१११० प्रश्न-ज्योतिषी के दो इन्द्र-१ चन्द्र और २ सूर्य। किन्तु चन्द्र और सूर्य तो अनेक हैं-चल और अचल। तब ये दो इन्द्र कौन से ? शेष चन्द्र और सूर्य किस श्रेणी के हैं ?

उत्तर-वैसे तो सभी चन्द्र और सूर्य इन्द्र हैं, परन्तु जाति मात्र का आश्रय लेकर ज्योतिषियो के दो इन्द्र-चन्द्र और सूर्य बताये हैं। ऐसा भाव स्थानाग सूत्र के दूसरे ठाणे के तीसरे उद्देशे की टीका से निकलता है।

११११ प्रश्न-देवलोक मे जो पानी है वह अप्कायमय है, परन्तु वहा अप्काय आई कहाँ से ? क्योकि वहा वर्षा तो होती नही, फिर पानी की आवक कहाँ से होती है ? वहाँ जो वस्त्र हैं, वे वनस्पति के बने हुए हैं क्या ?

उत्तर-जिस प्रकार मनुष्य क्षेत्र के पद्म, महापद्मादि द्रहो मे तथा बाहर के समुद्रो मे अप्काय के जीव और पुद्गलो का चयोपचय होकर अपने आप अप्काय पैदा होती रहती है, उसी प्रकार देवलोक मे भी बिना वर्षा के अप्काय की उत्पत्ति होती

है। वैक्रिय वस्त्रो के अतिरिक्त जो वहा स्वाभाविक वस्त्र हैं, वे पृथ्वीकाय के हैं।

१११२ प्रश्न–जातिस्मरणज्ञान मिथ्यादृष्टि को भी हो सकता है क्या ?

उत्तर–जातिस्मरण, मतिज्ञान का भेद है, अत मिथ्यादृष्टि को भी हो सकता है। सम्यग्दृष्टि का जातिस्मरण, मतिज्ञान मे और मिथ्यादृष्टि का मतिअज्ञान मे है।

१११३ प्रश्न–अपवाद की क्या परिभाषा है ?

उत्तर–मूल नियम की रक्षा के हेतु आपत्ति आने पर अन्य मार्ग ग्रहण करना–अपवाद है। जैसे–साधु का नदी उतरना आदि। (बृहत्कल्प निर्युक्ति गाथा ३१९, स्याद्वादमंजरी की कारिका ११ टीका) जैन सिद्धान्त प्र. पृ. २५।

१११४ प्रश्न–अपवाद मे कार्य करने वालो को क्या प्रायश्चित्त आता है ?

उत्तर–अपवाद विभिन्न प्रकार के होते हैं और उनके प्रायश्चित्त भी भिन्न भिन्न प्रकार के होते हैं, तथा किसी अपवाद का प्रायश्चित्त नही भी होता है।

१११५ प्रश्न–ध्वनिवर्द्धक-यन्त्र की अपवाद की स्थिति क्या हो सकती है ?

उत्तर–ठाणाग के १० वे ठाणे मे और भगवती सूत्र के श. २५ के उ. ७ मे दोष आने के १० मार्ग बताये हैं। अपवाद का समावेश 'आपत्ति' नामक पाँचवे दोष मार्ग मे होता है, अन्य मार्गों में नही। अत बिना आपत्ति के अपवाद का सेवन नहीं होना

चाहिए। ध्वनिवर्द्धक-यन्त्र मे बोलना, अपवाद के अन्तर्गत मानना योग्य प्रतीत नही होता ।

१११६ प्रश्न–ध्वनिवर्द्धक-यन्त्र मे बोलने वाले को क्या प्रायश्चित्त आता है ?

उत्तर–"अकरणाएअब्भुट्ठितएवा" व्यवहार सूत्र प्रथम उ के इस पाठ से भविष्य मे उस कार्य को नही करने के लिए प्रस्तुत व्यक्ति प्रायश्चित्त करे, ऐसा इससे स्पष्ट होता है।

ध्वनिवर्द्धक-यन्त्र मे भविष्य मे न बोलने के विचार वाले गुरु चौमासी दण्ड की स्वीकृति से उस दोष का प्रायश्चित्त कर सकते हैं। निशीथ सूत्र के १२ वे उद्देशे मे पृथ्वीकायादि पाँचो की किंचित् विराधना का लघु चौमासी दण्ड बताया है, परन्तु इस प्रसग मे तो अनेक काय की विराधना विशेष रूप से प्रतीत होती है। अत गुरु चौमासी का प्रायश्चित्त सगत प्रतीत होता है।

१११७ प्रश्न–अपवाद का प्रायश्चित्त होता है और नही भी होता है, इसके शास्त्रीय स्थलपूर्वक उदाहरण द्वारा दर्शावे।

उत्तर–अपवाद विभिन्न प्रकार के होते हैं। उनमे से किन्ही का प्रायश्चित्त होता है और किन्ही का नही। विवरण निम्न प्रकार है–

(१) दशवैकालिक अध्ययन ६ गाथा ६० मे गृहस्थ के यहाँ बैठने का (उत्सर्ग मे) निषेध होते हुए भी साधु को तीन कारण से बैठना बताया गया है (अपवाद) (२) साधु को स्त्री-संघट्टा उत्सर्ग से निषिद्ध है, किन्तु सर्पदंश के काल में स्थविर-कल्पी के

लिए उपचारार्थ स्त्री-सघट्टा हो जाने पर प्रायश्चित्त नही बताया गया है (अपवाद) व्यवहार उ. ५ का अतिम सूत्र ।

(३) अपने अनध्याय काल मे स्वाध्याय करने पर साधु-साध्वी को चौमासी प्रायश्चित्त विधान (उत्सर्ग मे) है। निशीथ उ १९ । अपवाद मे साधु साध्वी को और साध्वी, साध्वी को परस्पर वाचना दे-ले सकते है (व्यवहार उ. ९)

(४) प्रथम प्रहर का अशनादि या विलेपनादि चतुर्थ प्रहर मे काम मे लेने का चौमासी प्रायश्चित्त (उत्सर्ग) बृहत्कल्प उ. ४ और निशीथ उ. १२ मे बताया है, परन्तु खास कारण में चतुर्थ प्रहर मे आहारादि काम मे लिया जा सकता है (अपवाद) बृहत्कल्प उ. ५ ।

प्रायश्चित्त वाले अपवादों के उदाहरण—

(१) सामान्यतया साधु के लिए चमडी का छेदन-भेदन निषिद्ध है, किन्तु जो साधु-साध्वी अपने शरीर के व्रण (फोडा फुन्सी आदि) को छेदन करे, पीप आदि निकाले, धोवे, दवा लगावे, य अपवाद हैं । फिर भी इसका प्रायश्चित्त है (निशीथ उ. ३) उपरोक्त बाते परस्पर साधु से करावे, तो भी प्रायश्चित्त है (निशीथ उ ४)

ये ही बाते विभूषा के लिए करने पर या गृहस्थो से कराने पर चौमासी दण्ड बताया गया है (निशीथ उ १५) तात्पर्य यह है कि उ. ३-४ में साधु स्वयं या अन्य साधु से कराने पर मासिक दण्ड का भागी होता है । विभूषा के लिए करने-कराने पर और गृहस्थों से कराने पर चौमासी दण्ड का भागी होता है।

(२) उपाश्रय मे ठडे या गर्म पानी के घडे पडे हो, तो उत्सर्ग मार्ग मे ठहरना निषिद्ध है, परन्तु दूसरा उपाश्रय न मिलने पर १-२ रात्रि उस (पानी वाले) उपाश्रय मे ठहर सकते हैं, उसका प्रायश्चित्त नही, किन्तु उसमे अधिक जितने भी दिन रहे, उतने ही दिनो का छेद या प्रायश्चित्त आता है। सकारण रुकने पर भी यह प्रायश्चित्त आता है।

इसी प्रकार जिस मकान मे मदिरा के घडे हो या सम्पूर्ण रात्रि अग्नि या दीपक जलता हो, उस मकान मे ठहरने पर भी उक्त रीति से प्रायश्चित्त समझना चाहिए (बृहत्कल्प उ. २) आदि। इस प्रकार से अनेक उदाहरण दिय जा सकते हैं।

१११८ प्रश्न-त्रसकाय का जगमदेव अधिपति है, इसलिए जगमकाय कहते हैं। २५ बोल के थाकडे मे एसा लिखा है, अत पूछना है कि जगमदेव किसे कहते हैं ? वे वैमानिक है या अन्य जाति के ? कारण यह है कि चारो गति के त्रस जीवो को जगम कहते हैं, तो अधिपति जगम देव किस जाति का है ?

उत्तर-स्थानाग सूत्र के ५ वे स्था. के प्रथम उद्देश मे पांच स्थावरकाय के इन्द्रादि पांच स्वामी बताये हैं, त्रसकाय नही। त्रसकाय का स्वामी जगम देवलोक कहते हैं, तथा थोकडो की पुस्तको मे भी लिखते हैं, परन्तु सूत्र मे यह बात म. श्री के पढने मे नही आई।

जगम का अर्थ चलने वाले प्राणी होता है, अत. त्रस को जंगम कहते हैं।

१११९ प्रश्न-क्षायिक सम्यक्त्व वाला कितने भव करता है ?

उत्तर—क्षायिक सम्यक्त्व मनुष्य भव मे ही प्राप्त होती है। (पूर्व) परभव का आयु बांधने के पहिले ही यदि क्षायिक-समकित आ गई हो, तो वह मनुष्य उसी भव मे मोक्ष जायेगा। (भगवती श. १, उ. ८ की टीका) यदि नरक व देव का आयु पहिले बधा हुआ हो, तो उस समकित की प्राप्ति वाले भव सहित तीसरे भव मे मोक्ष जायेगा। अर्थात् बीच मे देव या नरक का जो आयु बधा है, वह भोग कर मनुष्य होकर मोक्ष जायेगा। (चौथी नरक तक का आयु बंधा हुआ हो, तो क्षायिक-समकित प्राप्त हो सकती है, आगे की नरक का बधा हुआ हो, तो नही) तिर्यंच मे केवल असंख्य वर्ष के स्थलचर का और मनुष्यो मे ३० अकर्म-भूमि का आयु बधा हुआ हो, तो क्षायिक-समकित प्राप्त हो सकती है। शेष मनुष्य तिर्यंच के आयु बध होने पर नही। असख्य वर्ष के स्थलचर और ३० अकर्म-भूमि का आयु बध होने पर, उस भव सहित चौथे भव मे मोक्ष जायेगा। क्योकि युगलिया मर कर देव मे ही जायेगा, फिर मनुष्य होकर मोक्ष जायेगा। अतः समकित प्राप्ति के भव सहित चार भव से अधिक नही हो सकते। यह बात चौथे कर्म-ग्रथ की २५ वीं गाथा की टीका से स्पष्ट होती है।

११२० प्रश्न—छोटी सफेद इलायची को अचित और हरी इलायची को सचित समझना कहा तक ठीक है ?

उत्तर—सफेद इलायची भी उबली और बिना उबली दोनो प्रकार की आती है, ऐसा सुना है। अत. उसमे सभी अचित हो, ऐसी पूर्ण निश्चितता नही है। इसलिए उसे अकल्पनिक समझ कर

जोडने, शिर झुकाने आदि विनय प्रवृत्तिया करते हैं, ऐसा सम्भव है।

११२७ प्रश्न–तीर्थंकरो का गर्भ में रहने का समय निश्चित ६। मास ही होता है अथवा कम ज्यादा भी हो सकता है ?

उत्तर–आचाराग अध्ययन २४, स्थानाग ठा. ६, ज्ञाताधर्म-कथाग अध्ययन ८, कल्पसूत्र, त्रिषष्ठि-शलाका-पुरुष-चरित्र आदि में तो तीर्थंकरो का गर्भ मे रहने का समय ६। मास ही बताया है और यही ठीक प्रतीत होता है, परन्तु "सत्तरिसय-ठाणा" वृत्ति के २० वे द्वार में–दूसरे, चौथे, नौवे, बारहवे और पन्द्रहवे तीर्थंकर ८ महिने और शेष ९ महीने और इन महिनो के ऊपर २४ ही तीर्थंकरो के गर्भ के दिन इस प्रकार बताये हैं,–

४, २५, ६, २८, ६, ६, १९, ७, २६, ६, ६, २०, २१, ६, २६, ६, ५, ८, ७, ८, ८, ८, ६, और ७।

इस प्रकार मास और गर्भ की स्थिति बताई है। आगम प्रमाण से तो ६। महिने की बात यथार्थ प्रतीत होती है।

११२८ प्रश्न–केवलज्ञान होने पर कर्मों की कितनी प्रकृतियाँ भोगते हैं और चोदहवे गुणस्थान मे कितनी प्रकृतियो का उदय होता है ?

उत्तर–समुच्चय जीव में जो १२२ प्रकृतियो का उदय बताया है, उसमें से निम्न ४२ प्रकृतियो का उदय सयोगी केवलियो के होता है–

१ औदारिक शरीर २ औदारिक अंगोपाग ३ अस्थिर नाम ४ अशुभ नाम ५–६ शुभ-अशुभ विहायोगति ७ प्रत्येक नाम ८ स्थिर नाम ९ शुभ नाम १०–१५ छ संस्थान १६ अगुरु-लघु नाम १७ उपघात नाम १८ पराघात नाम १९ उच्छ्वास नाम २० वर्ण २१ गध २२ रस २३ स्पर्श २४ निर्माण नाम २५ तैजस शरीर २६ कार्मण शरीर २७ व्रजऋषभ-नाराच संहनन २८ सुस्वर नाम २९ दुस्वर नाम ३०–३१ साता-असाता वेदनीय ३२ मनुष्यायु ३३ सौभाग्य नाम ३४ आदेय नाम ३५ यश नाम ३६ त्रस नाम ३७ वादर नाम ३८ पर्याप्ति नाम ३९ पचेद्रिय जाति ४० मनुष्य गति ४१ जिन-नाम और ४२ उच्च गोत्र ।

ऊपर वताई हुई ४२ प्रकृतियो मे से अनुक्रम से २९ प्रकृतियाँ छोड कर शेष १३ प्रकृतियो का उदय चौदहवे गुणस्थान मे वहुत जीवो की अपेक्षा से होता है और एक-एक जीव की अपेक्षा से एक वेदनीय का उदय होने से १२ प्रकृतियो का उदय होता है ।

११२९ प्रश्न–साध्वी को केवलज्ञान होने के बाद नियठा मे कहे अनुसार छद्मस्थ साधु को वदना की जाती है या नही ? यदि साधु को विदित हो जाय कि साध्वी को केवलज्ञान हुआ है, तो उस केवलज्ञानी साध्वी को वंदन किया जाता है ?

उत्तर–स्थित और अस्थित कल्प सभी नियठो (निर्ग्रंथो) मे है । अत· पुरुष-ज्येष्ठ कल्पानुसार, छद्मस्थ साधु को केवली-साध्वी व्यावहारिक विनय सुचारु रूप से चलाने हेतु हाथ

जोडना, शिर झुकाना आदि विनय प्रवृत्तियाँ करते हैं।" एवा-यरिय उवचिट्ठइज्जा अणतनाणोवगओ वि सतो" दशवै-कालिक अ ९ उ १ गाथा ११ के इस पाठ से भी केवली, छद्मस्थो को वदन करने का अर्थ ध्वनित होता है। श्रीमद् राजचन्द्रजी के दोहे मे भी यही कहा है कि—

जे सद्गुरु उपदेशथी, पाम्यो केवलज्ञान।
गुरु रह्या छद्मस्थ पण, विनय करे भगवान॥१९॥

द्रव्य रूप से विधि वदन केवलज्ञान वाली साध्वी को भी छद्मस्थ साधु नही करते हैं।

११३० प्रश्न—गौतम गणधर जाति से ब्राह्मण थे या राजपूत ?

उत्तर—गौतमस्वामी की जाति ब्राह्मण थी, ऐसा आवश्यक निर्युक्ति आदि मे बताया है।

११३१ प्रश्न—साधु-साध्वी, बिना रजोहरण के कितनी दूर जा सकते हैं ?

उत्तर—साधु-साध्वी को अपने हाथ से ५ हाथ उपरात, बिना रजोहरण के नही जाना चाहिए। निशीथ सूत्र के ५ वे उद्देशे के अर्थ से एसा स्पष्ट प्रतीत होता है ?

११३२ प्रश्न—पर्युषण के दिनो मे प्रभातफेरी निकालना शास्त्र सगत है ? उचित है या अनुचित ? साधु-साध्वी इस विषय मे 'हाँ' या 'नही' कुछ नही कहते हैं। यदि अनुचित है, तो निषेध करने मे क्या आपत्ति है।

उत्तर—पर्युषणादि किसी भी धार्मिक पर्व के निमित्त प्रभात-

फेरी निकालना सूत्रानुकूल नही, सूत्र विरुद्ध है। पहले तो ऐसी प्रथा नही थी। साधु-साध्वी को ऐसे कार्य पर, विशेष रूप से रोक लगानी चाहिए।

११३३ प्रश्न–भगवान् मल्लीनाथ स्त्री-लिंगी थे और तीर्थंकर दीक्षित होने के बाद तो नग्न रहते हैं। अत. स्त्री लिंग अवस्था मे नग्न रहना कैसे संभव हो सकता है? यह बताया जाता है कि वे रात्रि मे साध्वी परिषद मे निवास करते थे, तब दिन मे भी नग्न अवस्था कैसे सम्भव है?

उत्तर–छोटे बालक-बालिकाओ में भी विकार की मदता-शानता होने से उनका नग्न-शरीर विकार का पूज, अशोभनीय एव बेढगा प्रतीत नही होता, तो भला निर्विकारी प्रभु का शरीर तो मुख्य रूप से विकार का कारण, अशोभनीय और बेढगा मालूम हो ही कैसे?

वैसे तो स्त्री के चित्र मे विकार न होते हुए भी उससे प्रबल विकारी को विकार हो सकता है, इसी प्रकार निर्विकारी प्रभु के नग्न तथा वस्त्र युक्त शरीर मे भी विकार हो सकता है, उसका तो उपाय ही क्या?

दिन को तो प्रभु की वैराग्यमय वाणी आदि के कारण विकार का जोर चल नही सकता और रात्रि को कल्पातीत होते हुए भी वे छद्मस्थो के विकार, विचार और व्यवहार की रक्षा के लिए पुरुषों की परिषद मे न रह कर साध्वियो की परिषद मे ही रहते हैं। सूत्रो में उनकी आभ्यतर परिषद साध्वियो की ही बताई है। अत उनका नग्न रहना किसी भी

प्रकार बाधक नही है।

११३४ जब अवसर्पिणी काल के पहले और दूसरे आरे को वर्त्तमान के छठे और पाचवे आरे के समान ही बताया है तो इस पांचवे आरे मे तो इक्कीस हजार वर्ष के अन्त तक चारो सघ का रहना बताया है। तब अवसर्पिणी काल के दूसरे आरे मे चारो सघ कब से चालू होगे और उन्हे कौन, कैसे स्थापेगा ?

उत्तर–अवसर्पिणी काल के पांचवे आरे मे तो २४ वे तीर्थंकर का शासन चालू रहने से चारो संघ मिलते ही रहते हैं, परन्तु उत्सर्पिणी काल के दूसरे आरे मे सघो की स्थापना नही होती है और नही मिलते है। तीसरे आरे मे प्रथम तीर्थंकर होते हैं। वे सघ की स्थापना करते हैं। इसके पूर्व तक चारो सघ नही मिलते। इसका स्पष्टीकरण 'जंबूद्वीपप्रज्ञप्ति' की निम्न टीका व पाठ से होता है–

"सर्व अवसर्प्पिणी दुष्षमारक-मनुज-स्वरूप-वद्भा-वनीय नवर "णसिज्झति" सकलकर्मक्षयलक्षणां सिद्धि न प्राप्तुवन्ति चरणधर्म-प्रवृत्य भावात्।"

११३५ प्रश्न–सवत्सरी पर्व-भाद्रपद शुक्ला पचमी को ही मनाने का क्या कारण है ? यह परम्परा किसने और कब से चलाई है ? क्या चोवीसो तीर्थंकरो के समय यह पर्व इसी दिन मनाने का कही उल्लेख है ?

उत्तर–सित्तरवे समवायाग की टीका, निशीथ चूर्णिका १०

११३७ प्रश्न–तेरहवे गुणस्थान मे जो ईर्यापथिक-क्रिया लगती है, उसके बंध, वेद और निर्जरा मे केवल तीन समय ही मे उपरोक्त तीनो कार्य होते हैं, यह कैसे ? क्योकि बध के बाद वेदना और निर्जरा दानो एक-एक समय मे कैसे हो ? समय तो अति सूक्ष्म होता है। अत यह अनुभव पूर्वक होता है या स्वाभाविक, अपने आप ही हुआ करता है ?

उत्तर–ईर्यापथिक आदि किसी भी प्रकृति का बध योग्यतानुसार स्वयमेव ही जीव-शक्ति मे हुआ करता है। कोई भी जीव, किसी भी प्रकृति का बध इच्छापूर्वक नही करता। हां, १३ वे गुणस्थान मे केवलज्ञान होने से वे अपने ईर्यापथिक बध को भी जानते है, परन्तु बन्ध तो अनायास ही होता है।

११३८ प्रश्न–ससारी अव्रती जीव, दान-पुण्य करके अथवा पापारभ करके जिस गति मे गया हो, उसे चौदह रज्जू लोक की आश्रव-क्रिया लगती है, तो उसे केवल पापाश्रव ही लगता है या पुण्याश्रव भी प्राप्त होता है ? जिस प्रकार कोई व्यक्ति अस्त्र-शस्त्र वना कर यहा छोड जाता है, फिर उससे होने वाली आरभजन्य आश्रव-क्रिया उसे लगती है, इसी प्रकार किसी ने वैद्यशाला, धर्म-स्थानक आदि बनाया, तो उसकी मृत्यु के वाद जो व्यक्ति आरोग्य-लाभ या धर्म ध्यान करते हैं, उनका पुण्य भी उसे होता है ? यदि होता है तो कैसे ?

उत्तर–भगवती सूत्र शतक ५ उ ६ की टीका मे विना विवेक के पुण्य की क्रिया नही लगना वताया है। यह ठीक ही प्रतीत होता है, क्योकि जैसे चढना, सीना, घडना आदि तो

इच्छापूर्वक ही होता है, परन्तु गिरना, फटना, नाश होना आदि इच्छा तथा बिना इच्छा के भी हो सकता है। इसी प्रकार पाप की क्रिया तो आती रहती है, पुण्य की नही। पुण्य की क्रिया तो कर्त्तव्य-क्षण मे ही हो जाती है।

११३९ प्रश्न—वर्त्तमान के वैज्ञानिक मान्यता वालो को यह कैसे समझाया जाय कि सूर्य और चन्द्र घूमते हैं तथा पृथ्वी स्थिर है ?

उत्तर—वर्तमान के कई वैज्ञानिक सूर्य को स्थिर तथा पृथ्वी और चन्द्र का घूमना बताते है। इसके विपरीत कई वैज्ञानिक सूर्य और चन्द्र का घूमना तथा पृथ्वी का स्थिर रहना बताते हैं। शास्त्र और प्रत्यक्ष प्रमाण से पृथ्वी का स्थिर रहना और सूर्य-चन्द्र का घूमना स्पष्ट है। इस प्रत्यक्ष प्रमाण को वैज्ञानिक, रेल-गाडी और दौडते हुए वृक्ष दिखाई देने का दृष्टात देकर दृष्टि-भ्रम बतलाते हैं, परन्तु सूर्य-चन्द्र आदि चर और ध्रुव तारा स्थिर, इस प्रकार दोनो का यथार्थ स्वरूप दृष्टि गोचर होता है। अत यह दृष्टि-भ्रम नही है। इसी प्रकार वृक्ष का पक्षी, पृथ्वी की बताई गई दौड से विपरीत दिशा मे उड कर पुन. उसी वृक्ष पर बैठता हुआ दिखाई देता है। अत पृथ्वी का स्थिर रहना और सूर्य-चन्द्र का चलना ठीक प्रतीत होता है।

११४० प्रश्न—जिन-कल्पी मुनि उत्सर्ग मार्गानुगामी होते है, अत औषधादि का सेवन करना उन्हे नही कल्पता है, तो भगवान् महावीर स्वामी ने स्वय जिन-कल्पी होते हुए औषधी सेवन कैसे की ? क्या यह भी अच्छेरा गिना जा सकता है ?

उत्तर–जिन-कल्पी मुनि औषधादि सेवन नही करते, यह बात ठीक है, परन्तु भगवान् महावीर स्वामी जिन-कल्पी नही थे, वे कल्पातीत थे। अपने ज्ञान मे जिन पुद्गलो की स्पर्शना होने वाली देखते थे, उन्हे वे ग्रहण कर लेते थे। वेदनीय कर्म की उदीरणा करने के लिए उन्होने बिजोरा-पाक नही लिया था। अप्रमत्त जीव वेदनीय कर्म की उदीरणा करते ही नही, परन्तु जिन पुद्गलों का ग्रहण अवश्यंभावी होता है, उन्हे वे ग्रहण कर लेते हैं।

११४१ प्रश्न–भरत चक्रवर्ती, महाराजा कृष्ण और श्रेणिक नृप की क्रमश अयोध्या, द्वारिका एवं राजग्रही नगरी मे, क्रम से जो ९६ करोड, ५६ करोड तथा ३५ करोड की सेना बताई है, उसका समावेश ४८ कोस लम्बी और ३६ कोस चौडी नगरी मे कैसे हो सकता है? सेना के साथ साधारण जनसख्या भी तो होती ही है। ये नगरियाँ तो वर्त्तमान भारत के नगर एक नगर के समान ही है, जब कि सम्पूर्ण भारतवर्ष मे भी इतनी सख्या नही है। अतः उपरोक्त सख्या कैसे समझाई जा सकती है?

उत्तर–चक्रवर्ती आदि की सेना की जो सख्या बताई है, वह केवल एक ही नगरी मे नही समझनी चाहिए, परन्तु बाहर क्षेत्रो मे समझना चाहिए। जैसे भरत चक्रवर्ती के खड साध कर वापिस आते समय नगर प्रवेश के पूर्व, सेना आदि का सभी वर्णन दिया गया है, परन्तु नगर-प्रवेश मे सेना-प्रवेश का निषेध, जंबू-द्वीप पन्नति के इस–"तं चेव सव्वं जहा हेट्ठा णवरि णव-

महाणिहिओ चत्तारि सेणाओ ण पविसति सेसो सो चेवगमो "– पाठ से स्पष्ट बताया है। इसी प्रकार वासुदेवादि सेना के लिए भी समझना चाहिए। आज भी एक सम्राट या राज्य की सेना विभिन्न स्थानो मे रखी जाती है, इसी प्रकार उस युग मे भी रखी जाती थी।

११४२ प्रश्न–कोई साधु, किसी गृहस्थ से कहे कि–"तुम अमुक सस्था या सामग्री खाते मे इतने रुपये दान दो तुम्हे देना होगा। लडाई-झगडे और विवाह आदि मे इतना खर्च होता है। सरकार द्वारा विभिन्न प्रकार के करो के रूप मे वसूल कर लिया जाता है, तब क्या करते हो? यही पर देने की तुम्हारी शक्ति नही है–क्यो?" तब गृहस्थ कहे कि–"अच्छा महाराज! इतनी रकम देता हूँ।" इस पर साधु कहता है–"नही, नही, इतनी रकम से काम नही चलेगा। मैने जितनी रकम कही, उतनी देनी पडेगी।" साधु के इस प्रकार कहने पर गृहस्थ सोचता है कि साधु-सत ने कहा और यदि नही दूगा, तो कही हानि नही हो जाय? इस डर के कारण वह दान करे, तो क्या यह भयदान मे नही गिना जा सकता?

कोइ साधु उपदेश दे कि "खादी के वस्त्र, भारी, घडियें आदि पदार्थों के भण्डार मे दान दो, क्योकि इन पदार्थों को आवश्यकता वालो को देगे और इस निमित्त से तपस्या, कच्चा पानी का त्याग, चौविहार और सामायिकादि व्रत करायेगे, तो इस से धर्म बढेगा और तुम्हे धर्म-वृद्धि का लाभ मिलेगा।" साधु स्वयं ऐसे पदार्थ गृहस्थो को दिला कर त्याग-पचक्खान कराते

कब जन्म लेगा ?

उत्तर–आने वाली उत्सर्पिणी के तीसरे आरे के ३ वर्ष और ८।। महीने बीतने पर पद्मनाभ का जन्म होगा।

११४५ प्रश्न–चतुर्थ गुणस्थान की स्थिति ६६ सागरोपम से कुछ अधिक, किस आधार से कही है ? कोई आचार्य ३३ सागरोपम से कुछ अधिक ही मानते हैं। सम्यग्दृष्टि की स्थिति ६६ सागरोपम से कुछ अधिक मानते हैं, तो इतनी स्थिति भोगने वाला सम्यग्दृष्टि, बीच मे व्रती अवश्य होता है ?

उत्तर–चतुर्थ गुणस्थान की उत्कृष्ट स्थिति जो ३३ सागरोपम से कुछ अधिक कहते हैं, वह पक्ष, विशेष प्रबल प्रतीत होता है। जो ६६ सागरोपम से कुछ अधिक कहते हैं, वे अव्रती सम्यग्दृष्टि मनुष्य १२ वे स्वर्ग के तीन भव करना बताते है।

११४६ प्रश्न-तिर्यंच पचेन्द्रिय श्रावक के ११ व्रत माने हैं, परन्तु राम-चरित्र मे जटाऊ को बारह व्रतधारी कहा है, सो कैसे ? क्या तिर्यंच पचेन्द्रिय के १२ व्रत हो सकते हैं ?

उत्तर–विक्रम की १९ वी या २० वी शताब्दी मे हाथी और साड द्वारा साधु को आहार प्रतिलाभित करने की बात मेवाड मे सुनी है। इस प्रकार कभी ११ व्रतधारी तिर्यंच श्रावक को, साधु को आहार प्रदान करने का अवसर मिल जाय, तो उस के बारह ही व्रत हो सकते हैं। ऐसा अवसर तिर्यंच श्रावक को विशेष रूप से नही मिलता है। कभी अपवाद रूप से मिल भी जाय, तो उसको गौण करके साधारणतया श्रावक के ११ व्रत गिने जाते हैं। यदि इस अपवाद को या दान की भावना

और अनुमोदना को शामिल गिने, तो तिर्यंच श्रावक के बारह व्रत हो सकते हैं।

११४७ प्रश्न—उत्तराध्ययन सूत्र अध्ययन ३६ गाथा १०७ मे तेउकाय और वायुकाय को त्रसकाय के जीवो की योनि मे कहा है, सो किस अपेक्षा से ?

उत्तर—यहाँ त्रस का अर्थ—गति करना है। तेउकाय और वायुकाय के स्थावर नाम कर्म का उदय होते हुए भी गमन करने की अपेक्षा से इनको त्रस कहा है। ईंधन के सयोग से तेउकाय जलती हुई चली ही जाती है और हवा भी दूर तक चली जाती है। अत गति की अपेक्षा से इनको त्रस कहा है।

११४८ प्रश्न—देवो और नैरयिको के वैक्रिय शरीर का च्यवन के बाद क्या होता है ? देवो के वस्त्र और अलकार शाश्वत हैं या अशाश्वत ?

उत्तर—देव और नैरयिक के च्यवन के बाद उनका वैक्रिय शरीर कर्पूर, इत्र, स्प्रिट आदि से भी अति शीघ्र इधर-उधर बिखर जाता है। च्यवन के बाद उनके शरीर के अवयव दिखाई नही देते।

देवो के जो स्वाभाविक वस्त्र और अलकार हैं, वे तो शाश्वत हैं, परन्तु वैक्रिय द्वारा बनाये हुए वस्त्र और अलंकार १५ दिन से अधिक नही रह सकते।

११४९ प्रश्न—आचाराग मे साधु को नाव के बीच मे, (आगे-पीछे नही) बैठने का विधान है, सो किस कारण से ?

उत्तर—साधु-साध्वी को नाव के अग्रभाग पर बैठने का

निषेध है। वहा बैठने से निर्यामक का उपद्रव होने की संभावना रहती है। नाव पर बैठने वाले लोगो के आगे पीछे बैठने के निषेध का कारण यह है कि उन लोगो के साथ अनेक प्रवृत्तियो मे अधिकरण (क्लेश) होने की संभावना रहती है। अत इन स्थानो का निषेध किया है। अनेक शुद्ध प्रतियो मे नाव के पीछे बैठने का निषेध नही है।

११५० प्रश्न—साधु को उतरते-चढते गिरने का प्रसग आ जाय तो वृक्ष, बेल आदि जो भी हाथ मे आ जावे, उसकी सहायता लेकर शरीर बचावे, तो इस मे हिसा होती है, तो उसे सथारा करना क्या ?

उत्तर—लम्बा रास्ता तय कर के जाना चाहिए, परन्तु वृक्षादि का सहारा लेकर नही जाना चाहिए। ऐसे विषम-मार्ग से जाने पर कर्म-बंध होते हैं। अत· भगवान् ने साधु-साध्वियो को जाने का निषेध किया है। निशीथ सूत्र के १२ वे उद्देशे मे सचित वृक्ष पर चढने का, चढने की अनुमोदना करने का, वनस्पति-काय की थोडी भी विराधना करने का तथा वनस्पति से भरे हुए हाथो से आहारादि लेने का लघु-चौमासी प्रायश्चित्त बताया है। अत वृक्षादि को पकड कर उतरने की प्रभु ने आज्ञा नही दी, वल्कि निषेध किया है।

११५१ प्रश्न—हिसा से तय्यार ऊन और रेशम के वस्त्र ग्रहण करना साधु को किस प्रकार कल्पता है।

उत्तर—जिस प्रकार त्रस और स्थावर की हिंसा से आहार, पानी, वस्त्र, पात्रादि अनेक वस्तुएँ निर्मित होती है और साधु

उन्हे कल्पानुसार लेते भी हैं, परन्तु वे वस्तुएँ आधाकर्मादि दोषो से रहित होनी चाहिए। उसी प्रकार ऊन के वस्त्र कल्पते हैं। रेशम के वस्त्र, विभूषा का कारण है, अत नही लेना चाहिए, किन्तु दूसरे वस्त्र नही मिलने पर ग्रहण करना कल्पता है।

११५२ प्रश्न—ठाणाग सूत्र ठा. ३ के पृ. १३८ में लिखा कि देव, बाह्य पुद्गल ग्रहण किये बिना विकुर्वणा कर सकते हैं ?

उत्तर—देव और नारक के जो भवधारणीय शरीर है, उससे बाहर के पुद्गल बिना लिए ही विकुर्वणा समझना तथा विभूषा करने को भी विकुर्वणा कहते हैं। इसमे बाहर के पुद्गल लिए बिना केश-नखादि के सवारने (व्यवस्थित करने) को विकुर्वणा समझना चाहिए अथवा बाहर के पुद्गल लिए बिना ही कृकलास (गिरगिट की क्रीडा) मे लाल रगादि का होना व सर्पादि का फण बनाना आदि को भी विकुर्वणा समझ लेना।

११५३ प्रश्न—भिक्षु की बारह प्रतिमा कितने समय मे पूरी होती है ?

उत्तर—भिक्षु की बारह प्रतिमा मार्गशीर्ष से आषाढ तक आठ महिनो मे समाप्त होती है। इस प्रकार प्राचीन धारणा तथा पू आत्मारामजी म. सा. के दशाश्रुतस्कध एव अन्य कई पुस्तको मे है और यही ठीक प्रतीत होता है। परन्तु टीकाकार पहली प्रतिमा एक मास की, दूसरी दो मास की यावत् सातवी सात मास की बताते हुए उतना ही प्रतिकर्म (जिन-जिन प्रतिमाओ का जितना-जितना समय है उतने-उतने समय तक आहार-उपधि आदि के द्वारा प्रतिमाओ के तुल्य अभ्यास) का समय बताकर

सात प्रतिमाओ का समय ९ वर्ष बताते हैं। प्रतिकर्म (साधना) और प्रतिमा दोनो ही चातुर्मास मे करने का निषेध होने से ९ वर्ष लगते हैं। शेष पाँच प्रतिमाओ के काल मे कोई मतभेद जाना नही।

११५४ प्रश्न—सूर्य के माडले किस प्रकार के होते है और किस प्रकार गति करते हैं ?

उत्तर—सूर्य के माडले गोल बताये हैं। जिस आकाश पर सूर्य भ्रमण करता है उसी आकाश को माडले कहते हैं। परन्तु सडकादि के समान माडले—कोई बनी-बनाई वस्तु नही है। तीस मुहूर्त मे दो सूर्य मिल कर एक माडले को पूरा कर देते है। दो सूर्यो के शामिल रूप से १८४ माडले होते हैं। प्रत्येक माडले का दो-दो योजन का अन्तर है। इस प्रकार का वर्णन चन्द्र-पज्ञप्ति, सूर्यप्रज्ञप्ति और जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति आदि मे है।

११५५ प्रश्न—उत्तराध्ययन सूत्र के ३३ वे अध्ययन की १६ वीं, १७ वी, और १८ वी गाथा का अर्थ क्या है।

उत्तर—प्रश्न कथित गाथाओ का अर्थ इस प्रकार है—

ये मूल-प्रकृतिया और उत्तर-प्रकृतिया कही। अब आगे इनके प्रदेशाग्र (परमाणुओ के परिमाण रूप द्रव्य) क्षेत्र, काल और भाव के स्वरूप का वर्णन किया जायेगा, जिसको ध्यान पूर्वक सुनो।

एक जीव के एक समय में बंधने वाले सभी कर्मों के प्रदेशाग्र अनन्त हैं। वे अभव्य जीवो से अनन्त गुण और सिद्धो के अनन्तवे भाग हैं।

सभी जीव, छहो दिशाओ मे रहे हुए ज्ञानावरणीयादि कर्म-वर्गणाओ को ग्रहण करते हैं। वे आत्मा के सभी प्रदेशो के साथ प्रकृति-स्थिति आदि सभी प्रकार से बाधते हैं।

११५६ प्रश्न–प्रदेश कर्म किस प्रकार भोगे जाते हैं ?

उत्तर–किसी प्रकार के फल अनुभव कराये बिना ही कर्म-पुद्गल आत्म-प्रदेशो से पृथक् हो जाते हैं, वे ही प्रदेश-कर्म कहे जाते हैं। ये फलानुभव तो कराते ही नही, अत. इसे भोगने का दूसरा कोई भी प्रकार नहीं हो सकता।

जिस किसी कर्म-प्रकृति का अबाधाकाल पूर्ण हो गया हो, परन्तु वहा उस प्रकृति के विपाकोदय का स्थान न हो, तो उस प्रकृति के पुद्गल (प्रदेश) बिना फल दिये ही जीव-प्रदेशो से पृथक् हो जाते हैं। जैसे देवगति मे नपुसकवेद, तीसरे देव-लोक से अनुत्तर विमान तक स्त्री और नपुसकवेद, नरक गति मे स्त्री व पुरुषवेद, एक भव से दूसरे भव मे जाते समय के अतिरिक्त आनुपूर्वी नाम तथा प्रत्येक गति मे अपनी गति के अतिरिक्त अन्य गति का इत्यादि प्रकृतियो का उन-उन स्थानो पर विपाकोदय न हो कर प्रसग आने पर प्रदेशोदय ही होता है। इत्यादि प्रकार से प्रदेशोदय भोगा जाता है।

११५७ प्रश्न–दर्शनावरणीय कर्म का आवरण क्या है ?

उत्तर–देखने मे जो वस्तुएँ बाधक बनती हैं उसे 'दर्शना-वारणीय कर्म' कहते हैं जैसे-निद्रा आदि। उस को हटाने का उपाय निद्रादि को कम करना है।

११५८ प्रश्न–निगोद मे रहे हुए तथा सूक्ष्म जीवो ने प्रकृत्ये

जीवो के साथ मातापने, पितापने और पुत्रादिपने सबध किया है ?

उत्तम–अव्यहार राशि के और अल्प काल से व्यवहार राशि मे आये हुए जीवो को छोड कर, शेष सभी जीवो का परस्पर सम्बन्ध हो चुका है ।

११५६ प्रश्न–व्यवहार राशि और अव्यवहार राशि मानने योग्य है ?

उत्तर–व्यवहार और अव्यवहार राशि को मानना, जीवाजीवाभिगम और पन्नवणा की टीका तथा भगवती के २८ वें शतक के मूल पाठ से स्पष्ट होता है ।

११६० प्रश्न–भगवती भाग १ पृ ६० मे लिखा कि–नैरयिक जीव जो आहार करते हैं, वह वर्ण से काला, नीला, दुर्गन्धी, कडुआ और कर्कश पदार्थों वाला होता है । ऐसा आहार मिथ्यात्वी जीव करते होगे, परन्तु तीर्थंकर-नामकर्म बन्धक जीव भी क्या उन अशुभ पुद्गलो का आहार करते हैं ?

उत्तर–नरक मे अशुभ पुद्गलो की प्रचुरता है, परन्तु शुभ पुद्गलो का एकात निषध नही है, जैसे–कोयले की खान मे हीरे भी निकलते हैं । शुभ प्रकृति के प्रभाव से अशुभ पुद्गल भी शुभ बन सकते हैं, जैसे गाय आदि से घास आदि का दूध बनता है । इसी प्रकार भावी तीर्थंकरादि को भी शुभ पुद्गलो का सयोग मिल जाता है ।

११६१ प्रश्न–जीव, रोम आहार करते हैं, इस रोमाहार को बेइन्द्रिय जीव तो पूर्ण रूप से करते हैं–ऐसा भगवती भाग

१ श १ उ. १ पृ. ७२ मे उल्लेख है, किन्तु नारक जीवो के अधिकार मे असख्यातवा भाग का आहार करने का लिखा है। यदि वह भी रोमाहार है, तो इसमे क्या अपेक्षा है ?

उत्तर–यहा भगवती के प्रथम भाग के ७२ वे पृष्ठ के ३५ वे नम्बर की तीसरी पक्ति के इस पाठ से "सेसं तहेव जाव अणत भागं आसायति" –बेइन्द्रिय का वह आहार तो नरक के समान हा बताया है। इसका विशेष खुलासा पन्नवणा के २८ वे पद के प्रथम उद्देशे को देखने से भी हो जाता है। आगे भगवती के ७२ वे पृष्ट ३६ वे नम्बर से दूसरे प्रकार से बेइन्द्रिय जीवो के आहार की पृछा का वर्णन चलता है। ऐसे तो नैरयिको के भी "ते सव्वे अपरिसेसिए आहारेति" ऐसा पाठ पन्नवणा के २८ वे पद के प्रथम उद्देशे मे आया है।

११६२ प्रश्न–भगवान् के समवसरण मे अभव्य जाते हैं या नही ?

उत्तर–अपनी इच्छा, भक्ति, अभिरुचि आदि मे तो भगवान् के समवसरण मे अभव्य जीव नही जाते, परन्तु जीत-व्यवहार और स्वामी की आज्ञा आदि से जाते हैं।

११६३ प्रश्न–चक्रवर्ती के सात एकेन्द्रिय रत्न चल कर, गुफा के द्वार कैसे खोलते है ?

उत्तर–सर्व प्रथम तो चक्रवर्ती, गुफा के देव का तेला करते है। बाद मे सेनापति तेला कर के और गुफा के द्वार की पूजा कर के दण्ड-रत्न से द्वार खोलते है। सात एकेन्द्रिय रत्न चल कर द्वार नही खोलते है।

११६४ प्रश्न—ठाणाग सूत्र मे चार प्रकार के अभिनय आये है, सो उनका क्या आशय ?

उत्तर—शरीर की चेष्टा आदि से हृदय के भाव व्यक्त करने को अभिनय कहते हैं। इनका विशेष विधान भरतादि सगीत शास्त्रो मे है।

११६५ प्रश्न—चौवीस तीर्थंकरो मे से भगवान् वासुपूज्यजी, मल्लीनाथजी, अरिष्टनेमीजी, पार्श्वनाथजी और महावीर स्वामीजी ने कुमार अवस्था मे रह कर संयम ग्रहण किया, सो कैसे ? इनमे से अतिम दो ने विवाह किया था ?

उत्तर—यहा कुमार अवस्था का अर्थ—बिना राज्याधिकार प्राप्त किये दीक्षा धारण की—ऐसा समझना चाहिए, परन्तु विवाह का अर्थ नही समझना चाहिए।

११६६ प्रश्न—छह बोलो मे का एक बोल यह है कि छद्मस्थ आकाश नही देख सकता। जब कि आकाश तो प्रत्यक्ष मे दिखाई देता है। तरवरा क्या है ?

उत्तर—आकाश अरूपी है, अत छद्मस्थ उसे देख नही सकते हैं। धूंअर, बादल आदि अत्यत समीप से नही दिखाई देते हैं, कुछ दूर से दिखते हैं। इसी प्रकार लोक के अन्दर सर्वत्र ऐसे पुद्गल भरे हैं जो समीप से दिखाई नही देते, दूर से उनकी छाया दिखाई देती है। यदि दूर चले जावे, तो वहा भी वैसी छाया दिखाई देगी, क्योकि वैसी छाया देने वाले पुद्गल लोक मे सर्वत्र भरे है, अत यह तरवरापन पुद्गलों का समझना। खास आकाश तो छद्मस्थो को दिखाई नही

काल से कभी स्त्री-तीर्थंकर होते है, लेकिन आश्चर्यभूत होने से नगण्य गिने जाते हैं। "आश्चर्यभूतत्वान्नगण्यते"-ऐसा आशय प्रतीत होता है।

११७० प्रश्न-एकेन्द्रिय जीव श्वास कैसे लेते हैं ?

उत्तर-भगवती श. २ उ. १ मे गौतमस्वामी ने पूछा है कि हे भगवन्! बेइन्द्रिय से यावत् पचेंद्रिय पर्यंत जीवो के अन्दर-बाहर के उच्छ्वास और नि श्वास को तो मैं जानता और देखता हूं, परन्तु पृथ्वी आदि एकेन्द्रिय जीवो के उच्छ्वास आदि मैं जानता-देखता नही, तो क्या उन जीवो के उच्छ्वास नि श्वास है ? इस के उत्तर मे भगवान् ने 'हां' फरमाया। इससे स्पष्ट है कि एकेन्द्रिय जीवो के भी श्वासोच्छ्वास तो है, परन्तु साधारण ज्ञानी इन्हें देख नही सकते। उनके श्वासोच्छ्वास के पुद्गल यावत् आठ स्पर्श वाले है।

११७१ प्रश्न-अवधिज्ञान वाले, दूसरो के मन की बात किस प्रकार जान सकते हैं ?

उत्तर-जघन्य क्षेत्र से लोक का सख्यातवां भाग और काल से पल्योपम का सख्यातवा भाग जानने वाले अवधिज्ञानी को भी दूसरो के मन की बात जानने की लब्धि हो जाती है। उस मनोद्रव्य-वर्गणा की लब्धि से वे दूसरो के मन की बात जान लेते हैं।

११७२ प्रश्न-असंयति भव्य-द्रव्य-देव जघन्य भवनपति, उत्कृष्ट ऊपर की ग्रैवेयक मे कैसे जा सकते हैं ? उन्हे असयति कैसे कहना ?

उत्तर-असंयत-चारित्र के परिणाम से रहित। भव्य-देव

होने योग्य, इसलिए द्रव्य-देव । वे असयत भव्य-द्रव्य-देव, बाह्य श्रमण गुणो के धारक, समस्त साधु समाचारी और अनुष्ठान युक्त द्रव्य-लिंग के धारक, ऐसे भव्य तथा अभव्य मिथ्यादृष्टि जीव ही यहाँ जानना । ऐसे जीव साधु क्रिया के कारण नौग्रे-वेयक पर्यंत जा सकते हैं ।

११७३ प्रश्न—एकेन्द्रिय के एक ही इन्द्रिय होती है, फिर उन्हे क्रोध, मान, माया और लोभ किस प्रकार होता है ?

उत्तर—एकेन्द्रिय जीवो के भी भले और बुरे, दोनो ही प्रकार के अध्यवसाय होते हैं तथा जीवो के क्रोधादि अभ्यस्त एव चिर परिचित हैं । बाह्य इन्द्रियो की सहायता के बिना भी इनका उदय हो सकता है, तो फिर स्पर्शनेन्द्रिय की सहायता मिलने पर उदय हो, तो उसमे आश्चर्य ही क्या ? हा, विशेष इन्द्रियो और मन की सहायता से कषाय अधिक प्रबल तथा प्रकट हो सकता है और कम इन्द्रियो के सयोग से कम, परन्तु कषाय-आत्मा विद्य-मान होने तक तो अवश्य होगी ही । एकेन्द्रिय के चेतना शक्ति सर्वथा कम होने से कषायोदय भी मद-सा होता है, किन्तु केवली तो उसे भी जानते हैं । अत उनमे कषायोदय बताया है ।

११७४ प्रश्न—केवलज्ञान होने के बाद तपस्या करने की आवश्यकता है ?

गर्जारव, भैरी इत्यादि की आवाज कोई व्याघात न हो तो सुनने मे आ सकती है।

११७७ प्रश्न–साधु को ऊँच, नीच और मध्यम घर की गोचरी लेना किस आशय से कहा गया है, क्या वे नीच कुल मे जाते हैं ?

उत्तर–यहा साधु के भिक्षा सम्बन्ध मे धनाढ्य, गरीब तथा मध्यम, इस प्रकार ऊँच, नीच और मध्यम के भेद समझना चाहिए। साधु की भिक्षा के लिए आचाराग सूत्र मे जो कुल बताये हैं, उन्ही कुलो मे उपरोक्त तीन भेद करना चाहिए। इसका अर्थ दुगच्छनीय गर्हणीय कुलो के नही समझना, क्योकि दूसरे आचाराग के प्रथम अध्ययन के दूसरे उद्देशे मे साधु की भिक्षा के जो उग्रादि १२ कुल बताये हैं, वही पर "अण्णयरेसुवा तहप्पगारेसु कुलेसु अदुगच्छिएसु अगरहिए सुवा असणवा ४ फासुय एसणिज्ज जाव पडिग्गाहेज्जा–" ऐसा पाठ बता कर अदुगच्छनीय और अगर्हणीय कुलो मे अशनादि लेना बताया है, तथा दुगच्छनीय कुलो मे अशनादि ४ वस्त्रादि ४ लेवे व उनके मकान मे उतरे, वहा स्वाध्यायादि करे, तो उनको निशीथ के १६ उद्देशे मे लघु चौमासी प्रायश्चित्त बताया है। दुगच्छनीय कुलो मे भिक्षा का निषेध होने से नीच कुल का अर्थ उपरोक्त प्रकार से ही ठीक बैठता है।

११७८ प्रश्न–एक-एक लाख योजन के पाताल-कलश, लवण समुद्र मे किस प्रकार समा सकते हैं, जब कि लवण समुद्र दो लाख योजन का ही है ?

उत्तर–पूर्ण चन्द्राकार एक लाख योजन का जबूद्वीप है। उसके चारो तरफ दो-दो लाख योजन का लवण-समुद्र आया हुआ है। अत. लवण-समुद्र के पूर्व के किनारे के अंत से पश्चिम के किनारे तक का अत, पाँच लाख योजन का हो जाता है। उसी प्रकार दक्षिण-उत्तर के किनारे का अत भी समझ लेना चाहिए। एक महा पाताल-कलश ता जबूद्वीप के पूर्व की ओर लवण-समुद्र के मध्य-भाग मे आया हुआ है। इसी प्रकार शेष तीनो, तीन दिशाओ मे आये हुए हैं। वे कलश लाख-लाख योजन के गहरे हैं। उनके मुँह पृथ्वी के बराबर आये हुए है और दस-दस हजार के चोडे हैं। जबूद्वीप और घातकीखड की ओर पचानवे-पंचानवे हजार योजन की जगह छूटी हुई है। अत वे कलश तो सुगमता से समाये हुए है। इन चार महा पाताल-कलशो के अनिरिक्त ७८८४ लघु पाताल-कलशे भी लवण-समुद्र मे समाये हुए है। लवण-समुद्र की पृथ्वी विशाल होने से कोई कमी नहीं है।

११७९ प्रश्न–इशानेन्द्र ने अज्ञान तप किया, फिर वे आगामी भव मे आराधक होकर मोक्ष मे कैसे जा सकते हैं ?

उत्तर–जीव मिथ्यात्वी का सम्यग्दृष्टि बन कर फिर ज्ञान, दर्शन, चारित्र की आराधना कर के उसी भव मे मोक्ष जा सकता है, तो पूर्व-भव के मिथ्यात्वी जीव, इस भव मे [illegible] कर मोक्ष मे जावे, इसमे तो बाधा ही क्या ? तामली लिए तो ग्रथो मे ऐसा भी वर्णन है कि उसने जैन कर समकित प्राप्त करली थी। फिर इशानेन्द्र

असंख्यात गुने कैसे ? सब से थोडा नो सूक्ष्म नो बादर, उससे बादर अनन्त गुने, उससे सूक्ष्म अनन्त गुने किस आशय से कहे ?

उत्तर–सिद्ध और १४ वे गुणस्थान वाले तथा केवली समुद्घात मे तीसरे, चौथे व पांचवे समय मे जीव अनाहारक होते हैं तथा गत्यातर जीव कोई आहारक होते हैं और कोई अनाहारक। शेष सभी जीव आहारक ही होते हैं, अत सब से थोडा अनाहारक और आहारक असख्यात गुने समझना चाहिए। परतु आहारक से अनाहारक अधिक नही है।

नो सूक्ष्म नो बादर सिद्धो को कहते हैं। सूक्ष्म एकेन्द्रिय के दो भेदो के अतिरिक्त १२ भेदो को बादर और छोडे हुए दो भेदों को सूक्ष्म कहते हैं। इन तीनो मे सब से थोडे, नो सूक्ष्म नो बादर हैं। उनसे बादर (वनस्पति आश्री) अनन्त गुने और उनसे भी सूक्ष्म (वनस्पति आश्री) असख्य गुणे समझना चाहिए।

११८६ प्रश्न–प्रथम समय मे उत्पन्न होने से आत्मा अप्रदेशीय और एक समय से अधिक नेरिया सप्रदेशी कैसे ? आत्मा जिस समय परलोक मे जाती है, उससे पहले समय तक क्या वह अप्रदेशीय रहती है ?

उत्तर–जिसके एक प्रदेश हो, उसे अप्रदेशी कहते हैं। आत्मा असख्य प्रदेशी है। अतः वह सदैव ही सप्रदेशी गिनी जाती है। परन्तु यहां काल की अपेक्षा प्रश्न किया है, इसलिए जीव के एक अवस्था से दूसरी अवस्था मे आने को एक समय ही हुआ हो, ऐसी स्थिति मे वह जीव उस अवस्था आश्री काल की अपेक्षा से अप्रदेशी और एक से अधिक समय हुए हो या वह

असंख्यात गुने कैसे ? सब से थोडा नो सूक्ष्म नो बादर, उससे बादर अनन्त गुने, उससे सूक्ष्म अनन्त गुने किस आशय से कहे ?

उत्तर–सिद्ध और १४ वे गुणस्थान वाले तथा केवली समुद्घात मे तीसरे, चौथे व पांचवे समय मे जीव अनाहारक होते हैं तथा गत्यातर जीव कोई आहारक होते है और कोई अनाहारक। शेष सभी जीव आहारक ही होते हैं, अत सब से थोडा अनाहारक और आहारक असख्यात गुने समझना चाहिए। परतु आहारक से अनाहारक अधिक नही है।

नो सूक्ष्म नो बादर सिद्धो को कहते हैं। सूक्ष्म एकेन्द्रिय के दो भेदो के अतिरिक्त १२ भेदो को बादर और छोडे हुए दो भेदों को सूक्ष्म कहते हैं। इन तीनो मे सब से थोडे, नो सूक्ष्म नो बादर हैं। उनसे बादर (वनस्पति आश्री) अनन्त गुने और उनसे भी सूक्ष्म (वनस्पति आश्री) असख्य गुणे समझना चाहिए।

११८६ प्रश्न–प्रथम समय मे उत्पन्न होने से आत्मा अप्रदेशीय और एक समय से अधिक नेरिया सप्रदेशी कैसे ? आत्मा जिस समय परलोक मे जाती है, उससे पहले समय तक क्या वह अप्रदेशीय रहती है ?

उत्तर–जिसके एक प्रदेश हो, उसे अप्रदेशी कहते हैं। आत्मा असख्य प्रदेशी है। अत वह सदैव ही सप्रदेशी गिनी जाती है। परन्तु यहाँ काल की अपेक्षा प्रश्न किया है, इसलिए जीव के एक अवस्था से दूसरी अवस्था मे आने को एक समय ही हुआ हो, ऐसी स्थिति मे वह जीव उस अवस्था आश्री काल की अपेक्षा से अप्रदेशी और एक से अधिक समय हुए हो या वह

अवस्था अनादि हो, तो उसे सप्रदेशी कहते हैं। जैसे कोई मनुष्य मर कर नरक मे गया। उसको नरक पर्याय प्राप्त किये एक समय हुआ हो, वह उस पर्याय आश्री काल की अपेक्षा से अप्रदेशी और अधिक समय की अपेक्षा सप्रदेशी कहा है। इसी प्रकार अन्यान्य पर्यायो की अपेक्षा है।

११८७ प्रश्न–छह अंगुल का एक पाँव कैसे समझना ?

उत्तर–जिस समय मे जैसे मनुष्य होते हैं, उनके अगुल से उनके पाव छह अंगुल चौडे बताये हैं।

११८८ प्रश्न–केशी-गौतम पृच्छा मे आया है कि हवा में वजन नही है, किन्तु यह कैसे मानना कि वजन नही है ?

उत्तर–राजा प्रदेशी और केशी महाराज की पृच्छा मे जो हवा मे वजन नही बताया है, वह व्यवहार नय की अपेक्षा समझना चाहिए।

११८९ प्रश्न–देव और नैरयिक, अव्रती और अपच्च-क्खाणी क्यो हैं ? अभवी भी अपच्चक्खाणी है क्या ?

उत्तर–देव और नैरयिको के अप्रत्याख्यानी कषाय नहीं हटती है। इसके बिना हटे व्रत-प्रत्याख्यान नहीं आते। अत उनको अव्रती-अप्रत्याखानी कहा है।

अभव्य के तो अनन्तानुवधी कषाय विद्यमान होने से सम-कित भी नही होती, तो फिर प्रत्याख्यान आने की वात ही कहाँ ?

११९० प्रश्न–भगवान् महावीर स्वामी राजग्रही नगरी मे ही अधिक क्यो रहे ? उनका राजग्रही पर मोह था क्या ?

उत्तर–भगवान् महावीर वीतरागी थे। उनका मोह किसी

असंख्यात गुने कैसे ? सब से थोडा नो सूक्ष्म नो बादर, उससे बादर अनन्त गुने, उससे सूक्ष्म अनन्त गुने किस आशय से कहे ?

उत्तर–सिद्ध और १४ वे गुणस्थान वाले तथा केवली समुद्घात मे तीसरे, चौथे व पाँचवे समय मे जीव अनाहारक होते है तथा गत्यांतर जीव कोई आहारक होते है और कोई अनाहारक। शेष सभी जीव आहारक ही होते हैं, अत सब से थोडा अनाहारक और आहारक असख्यात गुने समझना चाहिए। परन्तु आहारक से अनाहारक अधिक नही हैं।

नो सूक्ष्म नो बादर सिद्धो को कहते हैं। सूक्ष्म एकेन्द्रिय के दो भेदो के अतिरिक्त १२ भेदो को बादर और छोडे हुए दो भेदो को सूक्ष्म कहते हैं। इन तीनो मे सब से थोडे, नो सूक्ष्म नो बादर हैं। उनसे बादर (वनस्पति आश्री) अनन्त गुने और उनसे भी सूक्ष्म (वनस्पति आश्री) असख्य गुणे समझना चाहिए।

११८६ प्रश्न–प्रथम समय मे उत्पन्न होने से आत्मा अप्रदेशीय और एक समय से अधिक नेरिया सप्रदेशी कैसे ? आत्मा जिस समय परलोक मे जाती है, उससे पहले समय तक क्या वह अप्रदेशीय रहती है ?

अवस्था अनादि हो, तो उसे सप्रदेशी कहते हैं। जैसे कोई मनुष्य मर कर नरक मे गया। उसको नरक पर्याय प्राप्त किये एक समय हुआ हो, वह उस पर्याय आश्री काल की अपेक्षा से अप्रदेशी और अधिक समय की अपेक्षा सप्रदेशी कहा है। इसी प्रकार अन्यान्य पर्यायो की अपेक्षा है।

११८७ प्रश्न—छह अगुल का एक पाँव कैसे समझना ?

उत्तर—जिस समय मे जैसे मनुष्य होते हैं, उनके अगुल से उनके पाव छह अगुल चौडे वताये हैं।

११८८ प्रश्न—केशी-गौतम पृच्छा मे आया है कि हवा मे वजन नही है, किन्तु यह कैसे मानना कि वजन नही है ?

उत्तर—राजा प्रदेशी और केशी महाराज की पृच्छा मे जो हवा मे वजन नही वताया है, वह व्यवहार नय की अपेक्षा समझना चाहिए।

११८९ प्रश्न—देव और नैरयिक, अव्रती और अपच्चक्खाणी क्यो हैं ? अभवी भी अपच्चक्खाणी है क्या ?

उत्तर—देव और नैरयिको के अप्रत्याख्यानी कषाय नही हटती है। इसके विना हटे व्रत-प्रत्याख्यान नहीं आते। अत उनको अव्रती-अप्रत्याखानी कहा है।

अभव्य के तो अनन्तानुवधी कषाय विद्यमान होने से समकित भी नही होती, तो फिर प्रत्याख्यान आने की वात ही कहाँ ?

११९० प्रश्न—भगवान् महावीर स्वामी राजग्रही नगरी मे ही अधिक क्यो रहे ? उनका राजग्रही पर मोह था क्या ?

उत्तर—भगवान् महावीर वीतरागी थे। उनका मोह किसी

है, परन्तु समभूमी से तो ८०० योजन ही है। अत उसका प्रकाश नीचे सलीलावती तक १८०० और सूर्य-मण्डल से १०० योजन तक ऊँचा जाता है।

११९७ प्रश्न–जब छिपकली की पूछ अलग हो जाती है, तो उसमे के आत्मा के प्रदेश वापिस उसी छिपकली मे आते हैं या उनका क्या होता है ?

उत्तर–छिपकली की पूछ अलग हो जाने पर उसमे के आत्म-प्रदेश वापिस छिपकली मे ही आते हैं।

११९८ प्रश्न–स्त्रीवेदी और नपुसकवेदी को अवधिज्ञान नही होता, यह किस आशय से कहा गया है ?

उत्तर–अवधिज्ञान तीनो ही वेदो मे होता है।

११९९ प्रश्न–द्वारिका नगरी मे ५६करोड यादवो का परिवार था तो उस समय हिन्दुस्तान की जनसख्या कितनी होगी ?

है और क्यो ?

उत्तर-हवा मे देवो की गति बहुत तेज होती है। तीर्थंकरों के जन्म, दीक्षा, केवल-महोत्सव, निर्वाण आदि प्रसंगो पर बारहवे स्वर्ग तक के देव भी अत्यत शीघ्र यहा आ जाते हैं। उनको पाच रज्जु की दूरी से आने मे एक पहर भी नही लगता। एक चुटकी बजाने जितने समय मे तो वे लाखो योजन चले जाते हैं, परन्तु हवा तथा आधी आदि की गति तो अत्यत ही मद दिखाई देती है।

१२०१ प्रश्न-अलोक मे प्रकाश है या अधकार ?

उत्तर-प्रकाश और अंधकार को उत्तराध्ययन के २८ वे अध्ययन की १२ वी गाथा मे पुद्गलो के लक्षण बताये हैं। अलोक मे पुद्गल नही है। अत वहां न तो प्रकाश है और न अधकार। वहा तो केवल आकाश ही है।

१२०२ प्रश्न-'साठ भक्त अनशन का छेदन कर सथारा किया" -इन शब्दो का क्या आशय ?

उत्तर-सथारा करने वाले तो यावत् जीवन का भी संथारा करते हैं, परन्तु जितने दिन सथारा चला हो, उतने दिन का प्रमु बतलाते हैं। अत 'साठ भक्त का.....आशय' ३० दिन का सथारा आया, ऐसा समझना चाहिए।

१२०३ प्रश्न-देश से मरणातिक समुद्घात-आहार लेकर उत्पन्न होना, सर्व से मरणातिक समुद्घात-उत्पन्न होकर आहार लेना, यह किस प्रकार समझना ? हमारी धारणा तो यह है कि

आहार लेकर फिर उत्पन्न होते हैं।

उत्तर—यदि आत्मा के सभी प्रदेश मृत्यु के समय एक साथ उत्पत्ति स्थान पर चले गये हो, तो वहा उत्पन्न होकर फिर आहार लेते है, परन्तु यदि कुछ प्रदेश उत्पत्ति स्थान पर चले गये हो और कुछ प्रदेश पिछले शरीर मे रह गये हो, तो ऐसी अवस्था मे पिछले प्रदेशो के छूटने से पहले ही अगले प्रदेश आहार लेना प्रारम्भ कर देते है। पिछले प्रदेश आते ही उत्पन्न होना गिना जाता है। अतः उत्पन्न होकर आहार लेना और आहार लेकर उत्पन्न होना—ये दोनो ही बाते ठीक है।

१२०४ प्रश्न—एकेन्द्रिय, एकेन्द्रिय का आहार करता है और बेइन्द्रिय बेइन्द्रिय का। इसी प्रकार पाँचो इन्द्रियो का किस प्रकार समझना ?

उत्तर—वैसे तो आहार के लिए बाहर से ग्रहण किये जाने वाले पुद्गल, एकेन्द्रिय आदि जीवो के शरीर से छूटे हुए ही होते हैं परन्तु खास तो तैजस शरीर के द्वारा पुद्गल आहार रूप परिणत होता है। अतः एकेन्द्रिय से यावत् पचेन्द्रिय तक को अपने-अपने तैजस शरीर से ही पुद्गल आने से, अपने-अपने ही

मन की इच्छा पूर्ण कर लेते हैं।

१२०६ प्रश्न—ज्योतिषी अवधिज्ञान मे ज. उ. संख्याता ही कैसे आया कि वे सख्याता द्वीप-समुद्र देख सकते हैं। ज. और उ. एक ही क्यो आया ?

उत्तर—ज्योतिषियो की जघन्य स्थिति पल्योपम के आठवें भाग, उत्कृष्ट एक लाख वर्ष अधिक एक पल्योपम की है। पल्योपम के सख्यातवे भाग मे कई पल्योपम की स्थिति वाले देवो की अवधि मे सख्याते द्वीप-समुद्र देखने की शक्ति ही होती है। अत ज्योतिष देव ज उ सख्यात द्वीप-समुद्र ही देख सकते हैं। परन्तु यहा जघन्य और उत्कृष्ट सख्याता मे भेद अवश्य समझना चाहिए।

१२०७ प्रश्न—ढाई द्वीप के बाहर वर्षा नही होती है, तो वहा के तिर्यंच किसका आहार करते हैं ?

उत्तर—ढाई द्वीप के बाहर अनेक स्थानो पर पृथ्वी मे से पानी निकलता है, उसमे तथा कई स्थानो पर पृथ्वी की सरसता के कारण वनस्पति पैदा होती है। अत उन तिर्यंचो के आहार में विशेष कठिनाई प्रतीत नही होती।

१२०८ प्रश्न—जबूद्वीप के मानचित्र मे हिन्दुस्तान का नाम ही नही है, सो क्या कारण ?

उत्तर—'हिन्दुस्तान' आदि नामो का प्रसगोपात परिवर्तन होता रहता है। अत शास्त्रकार उसको कैसे बतावे ? 'भारत-वर्ष' नाम तो शास्त्र तथा मानचित्र में बताया ही है।

१२०९ प्रश्न—अपने जीव ने कितने तीर्थंकर और केवलियो

आहार लेकर फिर उत्पन्न होते हैं।

उत्तर—यदि आत्मा के सभी प्रदेश मृत्यु के समय एक साथ उत्पत्ति स्थान पर चले गये हो, तो वहा उत्पन्न होकर फिर आहार लेते है, परन्तु यदि कुछ प्रदेश उत्पत्ति स्थान पर चले गये हो और कुछ प्रदेश पिछले शरीर मे रह गये हो, तो ऐसी अवस्था मे पिछले प्रदेशो के छूटते ही अगले प्रदेश आहार लेना प्रारम्भ कर देते है। पिछले प्रदेश आते ही उत्पन्न होना गिना जाता है। अत उत्पन्न होकर आहार लेना और आहार लेकर उत्पन्न होना—ये दोनो ही बाते ठीक है।

१२०४ प्रश्न—एकेन्द्रिय, एकेन्द्रिय का आहार करता है और बेइन्द्रिय-बेइन्द्रिय का। इसी प्रकार पाँचो इन्द्रियो का किस प्रकार समझना ?

उत्तर—वैसे तो आहार के लिए बाहर से ग्रहण किये जाने वाले पुद्‌गल, एकेन्द्रिय आदि जीवो के शरीर से छूटे हुए ही होते हैं, परन्तु खास तो तैजस शरीर के द्वारा पुदगल आहार रूप परिणत होते हैं। अत एकेन्द्रिय मे यावत् पचेन्द्रिय तक को अपने-अपने तैजस शरीर के ही पुद्‌गल आने से, अपने-अपने ही शरीर का आहार ऋजुसूत्र नय की अपेक्षा बताया है।

१२०५ प्रश्न—देवो को क्षुधा का अनुभव होने पर किसका आहार करते हैं ? उनकी क्षुधा किस प्रकार शात होती है ?

उत्तर—देवो के मनोभक्षी आहार की इच्छा होने से तथा-विध शुभ कर्मोदय से तत्काल इष्ट, कात, प्रिय, मनोज्ञ आदि पुद्‌गल मनोभक्षीपने परिणत होते हैं। उन पुद्‌गलो से वे देव

मन की इच्छा पूर्ण कर लेते हैं ।

१२०६ प्रश्न–ज्योतिषी अवधिज्ञान मे ज. उ. संख्याता ही कैसे आया कि वे सख्याता द्वीप-समुद्र देख सकते हैं । ज. और उ. एक ही क्यो आया ?

उत्तर–ज्योतिषियो की जघन्य स्थिति पल्योपम के आठवे भाग, उत्कृष्ट एक लाख वर्ष अधिक एक पल्योपम की है। पल्योपम के सख्यातवे भाग से कई पल्योपम की स्थिति वाले देवो की अवधि मे संख्याते द्वीप-समुद्र देखने की शक्ति ही होती है । अत ज्योतिष देव ज उ सख्यात द्वीप-समुद्र ही देख सकते है। परन्तु यहा जघन्य और उत्कृष्ट सख्याता मे भेद अवश्य समझना चाहिए ।

१२०७ प्रश्न–ढाई द्वीप के बाहर वर्षा नही होती है, तो वहा के तिर्यंच किसका आहार करते हैं ?

उत्तर–ढाई द्वीप के बाहर अनेक स्थानो पर पृथ्वी मे से पानी निकलता है, उससे तथा कई स्थानो पर पृथ्वी की सरसता के कारण वनस्पति पैदा होती है । अत उन तिर्यंचो के आहार में विशेष कठिनाई प्रतीत नही होती ।

१२०८ प्रश्न–जबूद्वीप के मानचित्र मे हिन्दुस्तान का नाम ही नही है, सो क्या कारण ?

उत्तर–'हिन्दुस्तान' आदि नामो का प्रसगोपात परिवर्तन होता रहता है । अत शास्त्रकार उसको कैसे बतावे ? 'भारत-वर्ष' नाम तो शास्त्र तथा मानचित्र मे बताया ही है ।

१२०९ प्रश्न–अपने जीव ने कितने तीर्थंकर और केवलियो

के व्याख्यान सुने ?

उत्तर–अनन्त तीर्थंकर और केवलियो के व्याख्यान, इस जीव ने सुने, ऐसा आगम से सम्भवित होता है।

१२१० प्रश्न–सौधर्म-ईशान देवलोक मे विमान ५००-५०० योजन के ऊँचे हैं। यह योजन ४००० कोस से समझना या ४ कोस से ?

उत्तर–विमान की ऊँचाई आदि शाश्वत (४००० कोस) योजन से समझना चाहिए।

१२११ प्रश्न–परमाधामी देव पहली नरक मे रहते हैं या तीसरी नरक तक ? उनकी देविया कहाँ रहती हैं ? इसका खुलासा किस सूत्र मे है ?

उत्तर–असुरकुमार देवो का निवास-स्थान पहली नरक मे है, ऐसा पन्नवणा के दूसरे पद और भगवती श. २ उद्देशक ८ से स्पष्ट होता है। परमाधामी देव, असुरकुमार जाति के हैं, अतः इनका और इनकी देवियो का निवास भी वही समझना चाहिए। इनका आना-जाना तीसरी नरक तक बताया है।

१२१२ प्रश्न–सूक्ष्म जीव अग्नि मे जले नही, पानी मे डूबे नही, मारने से मरे नही। इनमे और अपर्याप्ता मे क्या अन्तर है ? क्या सूक्ष्म जीव के आयुष्य कर्म नही बन्धता ? यदि उनका आयुष्य है, तो कितना ?

उत्तर–सूक्ष्म जीव तो उस भव में सूक्ष्म ही रहते है, परन्तु कुछ समय बाद अपर्याप्ता के पर्याप्ता उसी भव मे हो सकते हैं। सूक्ष्म जीवो का शरीर अति सूक्ष्म होने से दूसरा शस्त्र उन्हे

आघात नही पहुँचा सकता। इनका जघन्य-उत्कृष्ट आयुष्य अन्तर्मुहूर्त का पन्नवणा के चौथे पद मे बताया है।

१२१३ प्रश्न—सम्मूच्छिम और अपर्याप्ता मे क्या अंतर है?

उत्तर—देव, नैरयिक, स्त्री और पुरुष के संयोग से उत्पन्न होने वालो को छोडकर, शेष सभी ससारी जीव सम्मूच्छिम कहलाते है। अपर्याप्ता और पर्याप्ता तो इन सभी मे मिल सकते हैं।

१२१४ प्रश्न—रति-अरति पाप का क्या स्वरूप है? इससे किस प्रकार बचा जाय?

उत्तर—मनोज्ञ विषयो पर राग और सयम-विरुद्ध कार्यो मे आनन्द मानने को 'रति' तथा अमनोज्ञ विषयो पर द्वेष और सयम सम्बन्धी कार्यों मे उदासीनता को 'अरति' कहते हैं।

पुद्गलो एव जीवो तथा उनकी पर्यायो का वास्तविक स्वरूप जान कर, अशुद्ध एव पर-पर्यायो से अरुचि उत्पन्न करना और स्व-शुद्ध पर्यायो की ओर आकर्षित होना ही, इस पाप से बचने का उपाय है।

१२१५ प्रश्न—उपादान और निमित्त का सरल स्पष्टीकरण बतावे।

उत्तर—उपादान—जो आगे चलकर कार्य रूप मे परिणत हो जाय तथा निमित्त कार्य की सम्पन्नता मे सहायक बनकर अलग हो जाय।

जैसे आत्मा का मुक्त होना कार्य है। ससारी आत्मा, उपा-

मे पूछा है, वे आंशिक सत्य सिद्धात हैं। यदि वे दोनो मिल कर चलते हैं, तो पूर्ण सत्य सिद्धात बन जावेगे। परन्तु यदि एक दूसरे का खडन करके चलते हैं, तो असत्य बन जावेगे। पहला जो निश्चय नय का सिद्धात है, वह हमारी आत्मा मे दूध-पानी की तरह समाया हुआ होना चाहिए, तथा दूसरा हमारे मन, वचन और काया के योगो मे।

जैसे मिट्टी को घडा बनने मे कुम्हार चाक आदि निमित्त-कारण है, उसी प्रकार कुम्हार को धनवान बनने मे मिट्टी, गधा आदि निमित्त-कारण है। अब यदि पहला सिद्धात स्वीकार किया जाता है, तो व्यक्ति का निमित्त बनने का सामर्थ्य और निमित्त से प्रभावित होने का सिद्धात समाप्त हो जाता है, जो उचित नही। देखो उपासकदसा का सद्दालपुत्त अध्ययन ७। साथ ही प्रश्न उपस्थित होता है कि उस मिट्टी को, कुम्हार, चाक आदि का ही सयोग क्यो मिला? किसी दूसरे कुम्हार का सयोग क्यो नही मिला?

अथवा उस कुम्हार को उस मिट्टी, गधा आदि का ही सयोग क्यो मिला? किसी दूसरे मिट्टी, गधा आदि का सयोग क्यो नही मिला? क्योकि उपादान तो किसी निमित्त को उपस्थित नही करता। निमित्त अपने आप ही उपस्थित होता है, तो उस मिट्टी या कुम्हार के लिए वही कुम्हार या मिट्टी का सयोग क्यो नही मिला? किसी दूसरे के मिलने मे किसने रुकावट डाली?

अथवा उपादान के अनुसार ही निमित्त क्यो मिलता है?

(अच्छा उपादान होने पर उचित निमित्त क्यो मिलता है या उचित रूप मे क्यो बदल जाता है ? और उपादान अच्छा न होनें पर अनुचित निमित्त क्यो मिलता है या व्यर्थ क्यो हो जाना है ?) अत यह मानना ही पडता है कि उपादान, निमित्त को उपस्थित करता है और उपादान तथा निमित्त का सयोग आकस्मिक नही वरन् सकारण है। अब यदि दूमरा सिद्धात स्वीकार किया जाता है, तो दोनो मे से किसी एक की मुख्यता और दूमरे की गोणता सिद्ध हो जाती है। परन्तु यह ठीक नही है, क्योकि दोनो अपने आप में मुख्य हैं। मिट्टी की अपेक्षा कुम्हार, भले गोण हो, परन्तु कुम्हार अपने आप की अपेक्षा गोण नही है, क्योकि अपने आपकी अपेक्षा (धनवान वनने की अपेक्षा) उपादान होने से मुख्य है। इसी प्रकार कुम्हार की अपेक्षा मिट्टी भले गोण हो, परन्तु मिट्टी, अपने आप मे गोण नही है, क्योकि वह अपने आप की अपेक्षा (घडा वनने की अपेक्षा) उपादान होने से मुख्य है।

अथवा—दूमरी कल्पना कीजिए कि स्त्री और पुरुष दो हैं। दोनो के सयोग से पुत्र हुआ। एक माता वनी तथा दूमरा पिता। स्त्री को माता वनने मे वह स्वय उपादान कारण है और पुरुष, निमित्त-कारण है। पुरुष को पिता वनने मे वह स्वय उपादान कारण है और स्त्री निमित्त-कारण है। अब यदि "स्त्री को प्राप्त करने के लिए, विना कुछ प्रयत्न किये, पुरुष को स्त्री मिल गई"—यह माना जाय, तो प्रत्यक्ष विरुद्ध होगा, क्योकि स्त्री को प्राप्त करने के लिए पुरुष का व्यवहार में प्रयत्न

देखा जाता है। दूसरी बात–यदि उपादान को निमित्त से सर्वथा पृथक् माना जाय, तो पुरुष को पिता बनने मे स्त्री की कोई आवश्यकता नहीं रह जायेगी ओर यह भी प्रत्यक्ष के विरुद्ध होगा। क्योकि बिना सयोग से पुत्र उत्पन्न नही होता। अब यदि यह माना जाय कि "पुरुष ने स्त्री को प्राप्त किया," तो 'स्त्री ने पुरुष को प्राप्त किया–' यह बात छोडनी होगी, (इसी प्रकार मन से स्त्री विषयक विकल्प घटा लेना चाहिए) जो कि असगत है। अत. दोनो सिद्धातो को सापेक्ष मानना ही शास्त्र सगत है।

१२१९ प्रश्न–एक द्रव्य दूसरे द्रव्य पर प्रभाव डालता है या नही ?

उत्तर–जो द्रव्य समर्थ होता है अर्थात् जिस द्रव्य की शक्ति पूर्ण विकसित होती है, उस पर दूसरा स्थूल द्रव्य असर नही करता। परन्तु जिस द्रव्य की शक्ति आवृत (ढकी हुई) होती है, उस पर दूसरा शक्तिशाली द्रव्य, सूक्ष्म के अतिरिक्त स्थूल असर भी करता है। जैसे–पक्का घडा समर्थ द्रव्य है, उस पर पानी, भिगोने के अतिरिक्त स्थूल असर नही कर सकता। परन्तु कच्चा घडा असमर्थ द्रव्य है। उस पर पानी बहुत असर कर जाता है, अर्थात् गला देता है। जीव-द्रव्य के विषय मे भी यही बात है। जबतक वह सिद्ध-बुद्ध और मुक्त नही बन जाता–समर्थ नही बन जाता, तबतक उस पर अजीव द्रव्य, सूक्ष्म और स्थूल दोनो प्रकार के असर कर पाता है। उसे बांध सकता है, जकड सकता है, उस पर सवार हो सकता है, बोझीला बना

सकता है, उसे घुमा सकता है, दु ख दे सकता है, धक्के दिला सकता है, यावत् परवश तक वना सकता है। परन्तु सिद्ध, वुद्ध और मुक्त वन जाने के वाद नही।

ससारी जीवो पर सूक्ष्म और स्थूल दोनो असर करते हैं। इसमे शास्त्रीय प्रमाण इस प्रकार है–

क–वाधना–"अट्ठ कम्माइं वोच्छामि, आणुपुव्वि जहक्कमं। जेहि वद्धो अयं जीवो, संसारे परिवट्टई।" (उत्तरा.। ३३–१)

ख–ग–जकडना, सवार होना–"अजीवा जीवपइट्ठिया। जीवा कम्मपइट्ठिया। अजीवा जीवसंगहिया, जीवा कम्मसंगहिया" (भगवती श. १–६)

घ–वोझीला वनाना–"गोयमा! पाणाइवाएणं, मुसावाएण"–(पाप रूपी एव जड है) (भगवती १२।५)

"एवं खलु गोयमा! जीवा गरुयत्तं हव्वमागच्छन्ति" (भगवती १–६)

ङ–घुमाना–"एव भवसंसारे, संसरइ सुहासुहेहिं कम्मेहिं" (उत्तराध्ययन १०–१५)

च–छ–दु ख देना, धक्के दिलाना–

"कम्म संगेहि सम्मूढा, दुक्खिया वहुवेयणा।
अमाणुसासु जोणीसु, विणिहम्मति पाणिणो॥"
(उत्तरा. ३–६)

ज–वेवसी–" सकम्मवीओ अवसोपयाइ, परं भवं

सुंदर पावगं वा" (उत्त अ. १३ गा. २४)

इसीलिए शास्त्रकार ने मुमुक्ष जीवो को, जीव सयुक्त या जीव वियुक्त प्रभावशाली अर्जीव-द्रव्य से दूर रहने का कहा है। इसके शास्त्रीय प्रमाण इस प्रकार है-धन से दूर रहने के लिए उत्त. अ १६ गा. ६८ तथा उत्त. अ. ३५ गाथा १३ इत्यादि।

क-नारी तथा शब्द, रूप, रस, गंध, स्पर्श से दूर रहने के लिए उत्त १६ सम्पूर्ण और दशवैकालिक अध्ययन ८ गाथा ५३ से ६०। इत्यादि।

१२२० प्रश्न-महाव्रत और अणुव्रत धारण करने से केवल शुभ भाव का लाभ मिलता है या निर्जरा का लाभ मिलता है?

उत्तर-धारणा के दो अर्थ होते हैं-१ पालन करने के लिए हृदय से प्रतिज्ञा करना और २ आत्म-भाव से साक्षात् पालन करना। यदि प्रथम अर्थ की अपेक्षा ली जाय तो भी मात्र शुभ-भावना के अतिरिक्त निर्जरा होती है, क्योकि प्रतिज्ञा ग्रहण करने से अप्रत्याख्यानो कषायो की निर्जरा होती है और यदि दूसरा अर्थ लिया जाय तो भी निर्जरा होती है, क्योकि उसके पालन से अनुक्रमश अष्ट-कर्म क्षय होते हैं (ज्ञाताधर्मकथाग अ. ५) और तो क्या, प्रतिज्ञा ग्रहण कर भाव मात्र उत्पन्न होने से भी अप्रत्याख्यानी कषायो की निर्जरा होती है (स्थानाग ठा ४)।

आश्रव होता है वह तत्स्थानीय बंध स्वभाव समझना चाहिए) २–अधिकांश पुण्य का आश्रव (जो अल्पघातिक बंध रूप अवस्था मे पहुँचाने के लिए सहायक रूप है (दानो के लिए देखो प्रमाण उत्त. अ. २६। ४, ५, १० इत्यादि) तथा ३ मुख्यत: कर्मों की निर्जरा (देखो प्रमाण उत्त. अ. २६। ७, से १८ से ३३ तक। उववाई तपाधिकार मे शुभ योग उदीरणा तथा स्वाध्याय अधिकार।

१२२२ प्रश्न- व्यवहार सम्यग्दर्शन और निश्चय सम्यग्‌-दर्शन की स्पष्ट व्याख्या क्या है?

उत्तर–अनन्तानुबंधी ४ और दर्शन-मोहनीय ३–इन ७ प्रकृतियो का क्षय, उपशम आदि 'निश्चय सम्यक्त्व' है, तथा सम, सवेग आदि एव देव, गुरु, धर्म पर अटल विश्वास की प्रवृत्ति 'व्यवहार सम्यक्त्व' है।

अरिहतोमहदेवो, जावज्जीवं सुसाहुणो गुरुणो।
जिण-पण्णत्तं तत्त, इय सम्मत्त मएगहियं ॥१॥

१२२३ प्रश्न–सम्यक्त्व रहित तप से निर्जरा होती है? यदि नही होती है, तो उस तप से क्या लाभ होता है?

उत्तर–सम्यक् ज्ञान के अभाव मे किये गये तप से (स्थिति को समाप्ति से होने वाली समय-समय की निर्जरा के अति-रिक्त भी) निर्जरा होती है, परन्तु वह मोक्ष प्राप्ति के लिए सहायक नही। अत उसका मोक्ष-मार्ग मे कोई मूल्य नही। इस प्रकार के तप से दूसरा लाभ पुण्य-प्रकृति का बंध है।

१२२४ प्रश्न–जीवो के बंधा हुआ आयुष्य, पूर्ण किये विना

सुंदर पावगं वा" (उत्त अ. १३ गा २४)

इसीलिए शास्त्रकार ने मुमुक्ष जीवो को, जीव सयुक्त या जीव वियुक्त प्रभावशाली अर्जाव-द्रव्य से दूर रहने का कहा है। इसके शास्त्रीय प्रमाण इस प्रकार है-धन से दूर रहने के लिए उत्त. अ १६ गा. ६८ तथा उत्त. अ. ३५ गाथा १३ इत्यादि।

क-नारी तथा शब्द, रूप, रस, गंध, स्पर्श से दूर रहने के लिए उत्त १६ सम्पूर्ण और दशवैकालिक अध्ययन ८ गाथा ५३ से ६०। इत्यादि।

१२२० प्रश्न-महाव्रत और अणुव्रत धारण करने से केवल शुभ भाव का लाभ मिलता है या निर्जरा का लाभ मिलता है?

उत्तर-धारणा के दो अर्थ होते हैं-१ पालन करने के लिए हृदय से प्रतिज्ञा करना और २ आत्म-भाव से साक्षात् पालन करना। यदि प्रथम अर्थ की अपेक्षा ली जाय तो भी मात्र शुभ-भावना के अतिरिक्त निर्जरा होती है, क्योकि प्रतिज्ञा ग्रहण करने से अप्रत्याख्यानो कषायो की निर्जरा होती है और यदि दूसरा अर्थ लिया जाय तो भी निर्जरा होती है, क्योकि उसके पालन से अनुक्रमश अष्ट कर्म क्षय होते हैं (ज्ञाताधर्मकथाग अ ५) और तो क्या, प्रतिज्ञा ग्रहण करे भाव मात्र उत्पन्न होने से भी अप्रत्याख्यानी कषायो की निर्जरा होती है (स्थानांग ठा ४)।

१२२१ प्रश्न-शुभ-भाव को 'सवर' कह सकते हैं ?

उत्तर-सम्यक्त्व सहित शुभ-योग (भाव) से तीन बाते होती है। १ अधिकाश पाप का सवर (जो यत्किंचित् पाप का

आश्रव होता है वह तत्स्थानीय वध स्वभाव समझना चाहिए) २-अधिकाश पुण्य का आश्रव (जा अल्पवातिक वध रूप अवस्था मे पहुँचाने के लिए सहायक रूप है (दानो के लिए देखो प्रमाण उत्त. अ. २९। ४, ५, १० इत्यादि) तथा ३ मुख्यत. कर्मों की निर्जरा (देखो प्रमाण उत्त. अ. २९। ७, से १८ से ३३ तक। उववाई तपाधिकार मे शुभ योग उदीरणा तथा स्वाध्याय अधिकार।

१२२२ प्रश्न- व्यवहार सम्यग्दर्शन और निश्चय सम्यग्दर्शन की स्पष्ट व्याख्या क्या है ?

उत्तर-अनन्तानुबधी ४ और दर्शन-मोहनीय ३-इन ७ प्रकृतियो का क्षय, उपशम आदि 'निश्चय सम्यक्त्व' है, तथा सम, सवेग आदि एव देव, गुरु, धर्म पर अटल विश्वास की प्रवृत्ति 'व्यवहार सम्यक्त्व' है।

अरिहतोमहदेवो, जावज्जीवं सुसाहुणो गुरुणो।
जिण-पण्णत्तं तत्तं, इय सम्मत्त मएगहियं ॥१॥

१२२३ प्रश्न-सम्यक्त्व रहित तप से निर्जरा होती है ? यदि नही होती है, तो उस तप से क्या लाभ होता है ?

उत्तर-सम्यक् ज्ञान के अभाव मे किये गये तप से (स्थिति को समाप्ति से होने वाली समय-समय की निर्जरा के अतिरिक्त भी) निर्जरा होती है, परन्तु वह मोक्ष प्राप्ति के लिए सहायक नही। अत उसका मोक्ष-मार्ग मे कोई मूल्य नही। इस प्रकार के तप से दूसरा लाभ पुण्य-प्रकृति का वध है।

१२२४ प्रश्न-जीवो के वधा हुआ आयुष्य, पूर्ण किये विना

सात कारणो से टूट सकता है क्या ?

उत्तर–बंधा हुआ आयुष्य पूर्ण होने के पहले कि· कारण से नही टूटता । जो सात कारण बताये हैं, वे व्यावह दृष्टि से बताये हैं । इतना अवश्य है कि जीव यदि १०० वर्ष का निरुपक्रम आयुष्य बाध कर आता है, तो वह वर्ष से ही उसका भोग समाप्त करता है, परन्तु यदि उत दल लेकर सोपक्रम आयुष्य बाध कर आता है, तो १०० व पहले जितना समय निश्चित किया हुआ होता है, उत· समय मे उसका भोग समाप्त कर लेता है । जो बाह्य नि। प्राप्त होते हैं, वे निरुपक्रम आयुष्य वाले को (जैसे-सगर · वर्ती, कृष्ण वासुदेवादि) प्राप्त हो या सोपक्रम आयुष्य वाले प्राप्त हो, वे पूर्व जन्म से ही निश्चित होते हैं, नये प्राप्त · होते ।

१२२५ प्रश्न–परिणाम से वंध कहते हैं, तो परिणाम अ प्रवृत्ति को साथ मे ही रखनी चाहिए ?

उत्तर–परमार्थ मे परिणाम से ही वध होता है, तथा व्यवहार मे प्रवृति पर भार देना चाहिए, क्योकि शुभाशु परिणाम की उत्पत्ति (जैसे घेवरिया मुनि) रह· (जैसे प्रसन्

इत्यादि की आई)। 'प्राय' से यहां दो तात्पर्य है–१ यदि आयुष्य अल्प काल का हो, तो वैसी प्रवृत्ति नहीं आती, जैसे मरुदेवी माता आदि। २ यदि निदान हो या भोगावली-कर्म शेष हो, तो भी वैसी प्रवृत्ति नहीं आती। जैसे–कृष्ण वासुदेव, ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती या मनोरथ वाले श्रावक-श्राविकादि।

१०२६ प्रश्न–भगवती सूत्र में चेटक राजा तथा कोणिक के बीच जो महायुद्ध बतलाया है, उसका शरणागत की रक्षा और न्याय का समर्थन रूपी राज-धर्म तथा भवितव्यता के अतिरिक्त और कोई कारण हो सकता है?

चेटक जैसे श्रावक, केवल हार-हाथी के लिए महायुद्ध में लाखों मनुष्यों का संहार करे। यदि वे चाहते तो समझौता करा सकते थे?

उत्तर–इन दो कारणों के अतिरिक्त विशेष कारण यह ध्यान में आया है कि महाराजा चेटक का पक्ष न्याय पर आधारित तथा कोणिक की अपेक्षा अधिक बलशाली था। अतः उन्हें अपने पक्ष पर विश्वास था एवं विजय की पूर्ण आशा थी। दस दिनों तक ऐसा हुआ भी था। उन्हें यह कल्पना भी नहीं हुई होगी कि "कोणिक की सहायता में स्वयं चमरेन्द्र एवं शक्रेंद्र आजायेंगे और ऐसा घमासान युद्ध होगा कि दो दिन में एक करोड़ अस्सी लाख मनुष्य का संहार हो जायेगा। इसके पश्चात् भी न हाथी रहेगा और न हार।" यदि उन्हें इस का आभास भी हुआ होता, तो वे ऐसा युद्ध नहीं करते–ऐसा संभव है।

सात कारणो से टूट सकता है क्या ?

उत्तर–बधा हुआ आयुष्य पूर्ण होने के पहले किसी भी कारण से नही टूटता । जो सात कारण बताये हैं, वे व्यावहारिक दृष्टि से दताये हैं । इतना अवश्य है कि जीव यदि १०० (सौ) वर्ष का निरुपक्रम आयुष्य बाध कर आता है, तो वह १०० वर्ष से ही उसका भोग समाप्त करता है, परन्तु यदि उतने ही दल लेकर सोपक्रम आयुष्य बाध कर आता है, तो १०० वर्ष के पहले जितना समय निश्चित किया हुआ होता है, उतने ही समय मे उसका भोग समाप्त कर लेता है । जो बाह्य निमित्त प्राप्त होते हैं, वे निरुपक्रम आयुष्य वाले को (जैसे-सगर चक्रवर्ती, कृष्ण वासुदेवादि) प्राप्त हो या सोपक्रम आयुष्य वाले को प्राप्त हो, वे पूर्व जन्म से ही निश्चित होते हैं, नये प्राप्त नही होते ।

१२२५ प्रश्न–परिणाम से बंध कहते हैं, तो परिणाम और प्रवृत्ति को साथ मे ही रखनी चाहिए ?

उत्तर–परमार्थ मे परिणाम से ही बध होता है, तथापि व्यवहार मे प्रवृति पर भार देना चाहिए, क्योकि शुभाशुभ परिणाम की उत्पत्ति (जैसे घेवरिया मुनि) रक्षा (जैसे प्रसन्नचद्र राजर्षि, आषाढभूति) तथा वृद्धि मे (जैसे–ज्यो-ज्यो दीक्षा-पर्याय की वृद्धि होती है, त्यो-त्यो परिणामो की वृद्धि होती है) प्रवृत्ति का कम हाथ नही रहता । वैसे तो जहा जैसे परिणाम होते हैं, प्राय वहा वैसी प्रवृत्ति आ ही जाती है । वह भले उसी क्षण आये या थोडी देर से (जैसे भरत चक्रवर्ती, एलापुत्र

इत्यादि को आई)। 'प्राय' से यहा दो तात्पर्य है-१ यदि आयुष्य अल्प काल का हो, तो वैसी प्रवृत्ति नही आती, जैसे मरुदेवी माता आदि। २ यदि निदान हो या भोगावली-कर्म शेष हो, तो भी वैसी प्रवृत्ति नही आती। जैसे-कृष्ण वासुदेव, ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती या मनोरथ वाले श्रावक-श्राविकादि।

१२२६ प्रश्न-भगवती सूत्र मे चेटक राजा तथा कोणिक के बीच जो महायुद्ध बतलाया है, उसका शरणागत की रक्षा और न्याय का समर्थन रूपी राज-धर्म तथा भवितव्यता के अतिरिक्त और कोई कारण हो सकता है?

चेटक जैसे श्रावक, केवल हार-हाथी के लिए महायुद्ध मे लाखो मनुष्यो का सहार करे। यदि वे चाहते तो समझौता करा सकते थे?

उत्तर-इन दो कारणो के अतिरिक्त विशेष कारण यह ध्यान मे आया है कि महाराजा चेटक का पक्ष न्याय पर आधारित तथा कोणिक की अपेक्षा अधिक बलशाली था। अतः उन्हे अपने पक्ष पर विश्वास था एवं विजय की पूर्ण आशा थी। दस दिनो तक ऐसा हुआ भी था। उन्हे यह कल्पना भी नही हुई होगी कि "कोणिक की सहायता मे स्वयं चमरेन्द्र एवं शकेंद्र आजायेंगे और ऐसा घमासान युद्ध होगा कि दो दिन मे एक करोड अस्सी लाख मनुष्य का सहार हो जायेगा। इसके पश्चात् भी न हाथी रहेगा और न हार।" यदि उन्हे इस का आभास भी हुआ होता, तो वे ऐसा युद्ध नही करते-ऐसा सभव है।

१२२७ प्रश्न–व्यवहारराशि और अव्यवहारराशि किस शास्त्र से सिद्ध हाती है ? भगवती सूत्र और पन्नवणा सूत्र से तो सिद्ध होती है, परन्तु जीवाभिगम से सिद्ध नही होती ?

उत्तर–जीवाजीवाभिगम की पहली प्रतिप्रत्ति के अत की टीका मे व्यवहार-राशी स्पष्ट बताई है। वह टीका यह है–

"एषोऽपि च वनस्पतिकायस्थितिकालः साव्यवहारिक-जीवानधिकृत्यप्रोच्यते, असाव्यवहारिकजीवानांतु काय-स्थितिरनादिरवसेयाइति।" तथा इसी टीका मे जिनभद्रगणि क्षमाश्रमण कृत विशेषणवति ग्रथ की दो गाथा भी दी है–

"अत्थि अणता जीवा, जेहिं न पत्तो तसाइ परिणामो।
तेवि अणंताणंता निगोयवासं अणुवसति ॥१॥

सिज्झंति जतिया किरइह, सव्यवहारजीवराशिमज्झाओ।
इति अणाइवणस्सइ, रासीओततियातंमि ॥२॥"

१२२८ प्रश्न–सूत्र श्री पन्नवणाजी के तीसरे पद मे १०२ बोल का वासठिया चलता है, उसमे पहला द्वार ही नो बोलो की अल्पावोध की है, जिसमे सातवें बोल मे देवताओ को असंख्यात गुणा बताया है जो कैसे है ? क्योकि इनके पहले तिर्यञ्चिनो असंख्यात गुणी बतलाई है, अठाणु बोल मे यह सेतीसवां बोल है, तो इससे आगे असंख्यातो का बोल नही आते हुए यहां पर असख्याता लिया है सो कैसे समझना ? पू. श्री अमोलकऋषिजी म. कृत प्रनो मे भी असख्याताओ का विवरण है ।

उत्तर—सख्यात गुण के कई बोल मिल कर असख्यात गुण हो सकते हैं। ६८ बोलो मे अतिम ४० वाँ बोल देवो का आया है, वह ३७ वे बोल मे तीन बोल आगे है। उन तीन बोलो को मिलाने से तथा पिछले देवो के बोलो को मिलाने से असख्य गुण हो जाते है। अत कई सख्याते बोल मिलाकर कही असख्यात बताये हो, तो वहा शका नही करना।

१२२९ प्रश्न—आज-कल वैज्ञानिक लोग चन्द्र-लोक की सैर करने की कोशीश कर रहे हैं, तो जैन सिद्धान्तो के आधार से क्या वे चन्द्र-लोक की सैर कर सकेगे ?

उत्तर—जैन सिद्धान्तानुसार आज-कल के वैज्ञानिक चन्द्र-लोक की सैर करने मे सफल नही हो सकेगे—ऐसा सभव है।

१२३० प्रश्न—वर्त्तमान समय मे पृथ्वी से तारा-मडल, सूर्य और चन्द्रमा की ऊँचाई कितने कोस की है ? यो तो तारा-मडल पृथ्वी से ७९० योजन, सूर्य ८०० योजन तथा चन्द्रमा ८८० योजन सम-भूमि से ऊँचा—थोकडो के आधार से बतलाते हैं, परन्तु यहाँ पर कोनसा योजन व कितना समझना चाहिए ?

उत्तर—प्रमाण अगुल के योजन से तारा-मंडल, सूर्य ओर चन्द्र की ऊँचाई है। उच्छेद-अगुल के योजन से यह योजन १ हजार गुणा बडा बताया है। परन्तु आज का योजन उच्छेद-अगुल के योजन से बडा है। अत. अभी के योजन से व चन्द्र-सूर्य की ऊँचाई वाला प्रमाण अगुल का योजन करीब ६। सो गुणा होने का अनुमान है।

१२३१ प्रश्न—अरिहंतो के बारह गुणो का वर्णन किस सूत्र मे है ?

उत्तर—अरिहन्तो के १२ गुणो का वर्णन पृथक् रूप मे तो किसी भी सूत्र मे देखने मे नही आया, परन्तु ३४ वे समवायाग, उववाई सूत्र आदि मे जो तीर्थंकरो के गुण (अतिशय) वर्णन किये हैं, उनसे मिलान करने पर अरिहन्तो के १२ गुण सूत्रानुकूल ही प्रतीत होते हैं।

१२३२ प्रश्न—वीतराग भाव-तीर्थंकर मे कितने दोष नही होते हैं और वे कौन-कौन से हैं ?

उत्तर—तीर्थंकरो मे निम्न १८ दोष नही होते हैं—ऐसा 'हेम काप' आदि मे बताया है और यह बात आगमानुसार भी है। दोषो के नाम हैं—अन्तराय ५, हास्यादि ६, काम-विकार, मिथ्यात्व, अज्ञान, निद्रा, अविरति, राग और द्वेष।

१२३३ प्रश्न—नाक से निकली हुई हवा से जीवो की विराधना होती है या नही ? यदि होती हो, तो निकली हुई हवा को कैसी समझनी चाहिये ? इसका प्रमाण विस्तार सहित लिखावे।

उत्तर—दौड, छींक, खांसी आदि से होने वाली क्रिया को छोड कर प्राणी की श्वासोच्छ्वास क्रिया शात गति से होती है। उस योग क्रिया मे होने वाली स्वाभाविक विराधना के अतिरिक्त कोई नवीन विराधना सभव नही। उसे सयोगी अवस्था तक रोका नहीं जा सकता।

१२३४ प्रश्न—१३ काठियो के नाम क्या है ?

उत्तर–तेरह काठियो के नाम इस प्रकार हैं–

१ आलस काठिया २ मोह काठिया ३ प्रज्ञा काठिया ४ मान काठिया ५ क्रोध काठिया ६ प्रमाद काठिया ७ कृपण काठिया ८ भय काठिया ९ शोक काठिया १० अज्ञान काठिया ११ व्याक्षेप (व्याकुलता) काठिया १२ कुतूहल काठिया और १३ विषय काठिया ।

इनके बारे मे निम्न दोहे प्रचलित है–

जुआ आलस सोग भय, कुकथा कौतुक कोह ।
(आ) कृमण वुध अज्ञानता, भ्रम निद्रा मद मोह ।।
जे वट पाडे वाट में, करे उपद्रव जोर ।
जिणे देश गुजरात में, कहे काठिया चोर ।।२।।

१२३५ प्रश्न–"अन्त लिक्खोदय"–आनन्द श्रावक, आकाश से गिरा हुआ पानी ही पीते थे, सो इसमे क्या विशेषता थी?

उत्तर–आकाश से वरसा हुआ पानी ही पीने के लिये रखने से शेष कुआं, वावडी, पुष्करणी, तालाब आदि के पानी का उनके परित्याग हो गया । दूसरा आकाश के पानी मे सन्नी पचेन्द्रिय भी नही होते, अत उनका पाप भी रुक जाता है ।

१२३६ प्रश्न–आनन्द श्रावक शरद ऋतु का घृत खाते थे, सो इसका क्या कारण ?

उत्तर–प्रतिदिन प्रात:काल के समय को भी 'शरद ऋतु' कहते हैं । अत सुबह के ताजे मक्खन का तपाया हुआ ताजा घी, शरद ऋतु का होने की धारणा है ।

१२३७ प्रश्न–'अनन्त' का क्या अर्थ ?

उत्तर–उत्कृष्ट असख्याते के आगे की संख्या को 'अनन्त'

कहते हैं। उसका अन्त असंख्य वर्ष की आयु मे भी नही हो सकता।

१२३८ प्रश्न—दो खमासणा और दो नमोत्थुण देते हैं, सो इसका क्या कारण ?

उत्तर—जिस प्रकार राजा को निवेदन करने वाला पहिले नमस्कार कर फिर निवेदन करता है और बाद मे नमस्कार करके वापिस लौट जाता है, इसी प्रकार गुरु को निवेदन करने के पहले व पीछे वदन स्वरूप दो खमासणा देना बताया है। पहिला नमोत्थुण सिद्धो को और दूसरा अरिहतो को दिया जाता है।

१२३९ प्रश्न—'पुरुषान्तर' किसे कहते हैं।

उत्तर—आहार, वस्त्र, पात्र, मकान आदि को दूसरा पुरुष अपने उपयोग के लिये अपना लेवे, उसे "पुरिसंतरकड" कहते हैं।

१२४० प्रश्न—'असोच्चा केवली' किसे कहते हैं।

उत्तर—केवली आदि किसी से भी धर्म का स्वरूप बिना सुने ही धर्म प्राप्त करके यावत् केवली बन जाते हैं, उन्हे 'असोच्चा केवली' कहते हैं।

१२४१ प्रश्न—पडित मरण मे आराधक सर्व-विरत-देश-विरत ही है या अविरत सम्यग्दृष्टि भी लिया जा सकता है ?

उत्तर—पंडित मरण तो सर्व या देश विरति वालो का ही गिना जाता है। अविरत सम्यग्दृष्टि जीव के मृत्यु के प्रसंग पर भी यदि भाव-विरति—हिंसादि के त्याग आजावे, तो उसको अविरत न मान कर विरत मानते हैं और उसका पंडित-मरण

भी हो सकता है, परन्तु विरति के अभाव मे नही।

१२४२ प्रश्न-पडित-मरण मे सलेखना की नियमा है या भजना ?

उत्तर-पडित मरण मे सलेखना की भजना है।

१२४३ प्रश्न- मोक्ष प्राप्ति का उत्कृष्ट काल १५ (७-८) भव, किस प्रकार के पडित-मरण वाले के लिये माना जाता है- एक भव या सभी भव ?

उत्तर-आराधक होने के बाद जो उत्कृष्ट १५ भव बताये हैं, उन सभी भवो मे पडित-मरण नही होता, क्योकि ७ भव, जो देवो के हैं, उनमे तो पडित-मरण होता ही नही और मनुष्य के शेष ८ भवो मे प्राय पडित-मरण होता है। किसी कारण से कोई जीव के बीच के किसी भव मे पडित-मरण व आराधना नही हो पाकर बाल-मरण भी हो जाता है। जैसे-पन्नवणा पद १५ मे बताया है कि चार अनुत्तर विमान के देव, पुरेकडा। आगे ८ तथा १६-तथा २४ व सख्यात द्रव्य-इन्द्रिया कर सकेगे। इसमे विचारना यह है कि जो अनुत्तरविमान मे जाते हैं, वे आराधक होकर ही जाते हैं। वहाँ से निकल कर जो १६ द्रव्य-इन्द्रिया करेंगे, वे मनुष्य मर कर अवश्य मनुष्य होगे। जो मनुष्य मर कर मनुष्य होते हैं, उनका बाल-मरण गिना जाता है और उनको कुछ समय के लिये मिथ्यात्व भी अवश्य आ जाता है। अत किसी बीच के भव मे विराधक भी हो सकते हैं।

१२४४ प्रश्न-एक भव मे पंडित-मरण करने के बाद विराधक होने पर भी मृत्यु आराधक ही होगी या विराधक

भी हो सकती है ? उसका मोक्ष कब होगा ?

उत्तर–एक भव मे पडित मरण होने के बाद उस जीव के यदि किसी मनुष्य के भव मे वर्तते हुए ज्ञानादि की विराधना हो जाय, तो वह जीव प्राय मृत्यु समय आराधना प्राप्त कर लेता है और कोई जीव ऊपर बताये अनुसार नही भी करता, परन्तु वह १५ भव से अधिक तो ससार मे नही रहेगा।

१२४५ प्रश्न–सर्व विरति देशविरति तो देव-भव मे है ही नही और सम्यक्त्व भी ६६ सागरोपम से अधिक नही रह सकती, तो पडित-मरण करने वाले की क्या अवस्था रहेगी ?

उत्तर–पडित-मरण होने के बाद अविरति, देश-विरति और सर्व-विरति एव तीनो अवस्था मिला कर यदि १५ भव मे ६६ सागरोपम से विशेष अधिक समय लगने का प्रसग हो, तो उसके बीच मे उसको अल्प समय के लिये मिथ्यात्व आ जाता है।

१२४६ प्रश्न–निदान, आर्त्त-ध्यान मे ही बधता है या धर्म-ध्यान मे भी ?

उत्तर–काम भोग, ऋद्धि आदि के निदानो मे आर्त्त-ध्यान की मुख्यता और भवातर मे श्रावक तथा साधु होने के निदानो मे आर्त्त-ध्यान की गौणता होते हुए भी निदानो मे आर्त्त-ध्यान तो होता ही है।

१२४७ प्रश्न–त्रेसठशलाका पुरुषो मे निदान की नियमा किस मे है ?

उत्तर–वासुदेव और प्रतिवासुदेव, निदान वाले ही होते हैं। तीर्थंकर और बलदेव बिना निदान वाले और चक्रवर्ती दोनो

उत्तर–क्षयोपशम सम्यक्त्व वाला जीव, किसी देव-भव मे ३३ सागरोपम की स्थिति प्राप्त कर सकता है और किसी मे प्रत्येक पल्योपम की भी, परन्तु सभी देव और मनुष्यो के भवो को मिला कर १५ भव के ६६ सागरोपम से कुछ अधिक से विशेष अधिक न होने चाहिये। यदि इससे अधिक होने का प्रसंग हो, तो कही बीच मे ही अल्प काल के लिए उसको मिथ्यात्व आ जाएगा।

१२५१ प्रश्न–चतुर्थ गुणस्थान की उत्कृष्ट स्थिति तो देव के भव की ३३ सागरोपम ही रहेगी या २२ के ३ भव आदि भी लिए जावेगे ?

उत्तन–चतुर्थ गुणस्थान की उत्कृष्ट स्थिति जो ३३ सागरोपम से अधिक कहते हैं, वह पक्ष विशेष प्रवल प्रतीत होता है +। जो ६६ सागरोपम से अधिक कहते हैं, वे अविरति सम्यग्दृष्टि मनुष्य के १२ वे स्वर्ग के तीन भव करना बताते हैं।

१२५२ प्रश्न–पुण्य को सावद्य निरवद्य या मिश्र, क्या समझें ?

उत्तर–पुण्य का बंध जिन कार्यों से होता है, वे कार्य तीनो प्रकार के दिखाई देते हैं। अत उन कार्यों की अपेक्षा से यदि गिने तो पुण्य सावद्य आदि तीनो ही प्रकार के हो सकते हैं।

१२५३ प्रश्न–श्रीदेवी के कमल के वर्णन मे जंबूद्वीपप्रज्ञप्ति के चौथ वक्षस्कार मे पद्मद्रह के वर्णन मे श्रीदेवी का

+ 'पंचसंग्रह' २-८३ मे–"वेयग अविरयसम्मो तेत्तीससायराइ साइरेगाइं"–स्पष्ट उल्लेख है–डोशी।

तथा उसके परिवार का वर्णन है। वहा पर कमल के वर्णन में मूल कद का वर्णन किया है। उसमे टीकाकार प्रश्न करके खुलासा करते हैं कि–"कमलान्यत्र न वनस्पतिपरिणामानि किन्तु पृथिवीकायपरिणामरूपा. कमलाकारवृक्षास्तेन तेषामिमौ (मूल कन्दौ) न विरुद्धाविति," इसके बाद 'सेकेणट्ठेणं' की टीका मे लिखते हैं कि–"वानस्पतितानि पद्महृदाकाराणि पद्मानि बहूनिसन्ति, नतु केवलं पार्थिवानि" तो वनस्पति सबधी कमल, आप मानते हैं कि नही ?

उत्तर–पद्महृद के १, २०, ५०, १, २०, इतने कमल तो पृथ्वीकाय के हैं और शाश्वत हैं। आसपास मे वनस्पति के कमल भी मिलते हैं। वे अशाश्वत हैं।

१२५४ प्रश्न–तेरापथी, दया, दान, पुण्य आदि का निषेध किन शब्दो को लेकर करते हैं ?

उत्तर–वे कहते हैं कि जीवो को बचायेंगे, तो वह बचा हुआ जीव जो पाप-कर्म करेगा उसकी अनुमोदना रूप पाप उस बचाने वाले को लगेगा। इसलिए वे मारने वाले को एक और बचाने वाले को १८ पाप लगने का भी कहते हैं। जीवो का जीवित रहना और मरना नही वांछना, किन्तु तिरना वाछना,– ऐसा कहते हैं। वनस्पति आदि जीवो की विराधना के जो भी वे त्याग करते हैं, उनमे वे कहते हैं कि हम जीवो को बचाने के लिये त्याग नही करते। हमारे त्याग मे जीवो को बचाने का

उद्देश्य नही है। जीवो का जीवित रहना और मरना उनके कर्माधीन है। हम तो केवल हमारा पाप त्यागने के लिए ही त्याग करते है। जीवो को नही मार के अपना पाप टालना ही दया है, इत्यादि शब्दो से दया का निषेध करते हैं।

भारत के साधुओ मे तेरापथी साधुओ के अतिरिक्त अन्य को वे साधु नहीं मानते। साधुओ के अतिरिक्त सभी ससारी जीवो को वे असयति कहते है और असयती को दान देने से वे एकान्त पाप, अधर्मदान, कर्मादान, नरकादि दुर्गति का कारण आदि बता कर दान का निषेध करते हैं।

उपरोक्त विचारानुसार वे तेरापंथी साधुओ के अतिरिक्त दूसरो को दिये हुए दानादि से पुण्य नही मानते है, तथा पुण्य कर्म भी ससार मे रोकने वाला है, इसके क्षय बिना मुक्ति नही, यह त्यागने योग्य है, इत्यादि प्रकार से इनका निषेध करते हैं। इनकी मान्यताओ का विशेष विवरण इनके बनाये हुए 'भ्रम विध्वसन' नामक ग्रथ मे है।

१२५५ प्रश्न—बाडे मे आग लग जाने पर श्रावक पास मे नही हो, तो पशुओ की अनुकम्पा के लिए साधु उनके बन्धनो को काट कर बाडे मे बाहर निकाल सकते हैं या नही ?

उत्तर—ऐसी परिस्थिति मे साधु, पशुओ को बाहर निकाल सकता है, जिसका खुलासा निशीथ के १२ वे उद्देशे के भाष्य मे है।

१२५६ प्रश्न—छद्मस्थ भगवान मे गलती नही हो सकती, तो फिर उपदेश क्यो नही देते ?

उत्तर–तीर्थंकर, केवली होने के बाद ही। उनकी दी हुई त्रिपदी से विशेष क्षयोपशम वाले पुरुष, दृष्टिवाद की रचना रच सकते है और दृष्टिवाद की रचना रचने मे उनको 'गण-धर' पद की प्राप्ति होती है, तथा चार तीर्थ की स्थापना भी तभी होती है। पूर्ण ज्ञान के अभाव में वे तीर्थ स्थापित नही करते। परन्तु इस बात पर से, उनमे गलती होने की मिथ्या कल्पना करके–'इसी कारण वे उपदेश नही देते'–ऐसा बताना असगत प्रतीत होता है, क्योंकि दीक्षा लेने के बाद छद्मस्थ तीर्थंकरो से भी गलती नही होती। यह बात भगवती के २५ वे शतक मे स्पष्ट सिद्ध होती है। तथा महावीर स्वामी नही चूके, यह आचाराग के ९ वे अध्ययन से स्पष्ट है।

१२५७ प्रश्न–जिस प्रकार गोशाला की भगवान् ने शीत-लेश्या के द्वारा रक्षा की, वैसी अन्य तीर्थंकरो ने व मुनियो ने भी की होगी ? प्रमाण के साथ समझावे।

उत्तर–जिस प्रकार गोशालक की रक्षा भगवान् ने की, उसी प्रकार अनेको की रक्षा तीर्थंकरो और मुनियो के द्वारा पहले हुई है। उदाहरण तो प्रसग आने पर ही गणधर फरमाते हैं। उदाहरण न होते हुए भी अनेक बाते मानने योग्य होती है। जैसे–लोकातिक देवो में से तथा सूक्ष्म पृथ्वीकायादि में से किन्ही के आने का और उनमे उत्पन्न होने का उदाहरण नही मिलते हुए भी उनमे से आना तथा उनमे उत्पन्न होना माना जाता है। इसी प्रकार साध्वी को दान देने से ससार परित्त भी बिना उदाहरण माना जाता है। अत यहाँ दूसरा उदाहरण न

मिलने पर भी मानना चाहिए। यहां तो ज्वलंत उदाहरण यह है कि–केवली होने पर भगवान् ने फरमाया कि–" मैंने अनुकम्पा करके गोशालक की रक्षा की।" यदि मोह या भूल आदि से करते, तो केवली ऐसा क्यों फरमाते ? तथा दूसरों को ऐसा करने का निषेध भी कर देते। अतः गोशालक को जो बचाया, यह " केवली अभिमत है "–ऐसा समझना।

१२५८ प्रश्न–खरगोश की दया पालने वाले हाथी की कथा, केवल ग्रंथकार ही कहते हैं या शास्त्रकार भी ?

उत्तर–इसकी बात तो ज्ञातासूत्र के प्रथम अध्ययन के मूल-पाठ में है। इसी प्रकार विवाह के प्रसंग में जीवों की रक्षा के लिये भगवान् नेमीनाथ का वापिस लौटना, उत्तराध्ययन के २२ वें अ. और धर्म रुचि म. के कड़वे तुंबे का आहार करना, ज्ञाता सूत्र के १६ वें अ. के मूलपाठ में बताया है। इत्यादि अनेक शास्त्रीय बातें देखते हुए जीवों की रक्षा करना धर्मानुकूल है। इसीलिए भगवान् ने रजोहरण और मुखवस्त्रिका बताई है। संक्षेप में उत्तर यह है। विशेष के लिये सिद्धांतसार, सद्धर्ममंडन, अनुकम्पा-विचार आदि ग्रंथ देखें।

१२५९ प्रश्न–आपने जो तीर्थंकरों को केवली-वंदना, विनय प्रवृत्ति करते हैं, उसमें उत्तराध्ययन की कथा का प्रमाण दिया है, सो वह कौन-सी कथा है और कौन सा अध्ययन तथा पृष्ठ है ?

उत्तर–उत्तराध्ययन के १० वें अध्ययन का मूल-पाठ प्रारंभ होने से पहले ही टीकाकार ने जो साल, महासाल, गागलि

आदि की कथा दी है, उससे केवली, तीर्थंकरो को सिर झुकाना प्रदक्षिणादि रूप विनय प्रवृत्ति करते हैं-ऐसा सिद्ध होता है। तथा "ऐवायरियं उवचिट्ठएज्जा, अणत नाणोवगओविसतो" दशवै-कालिक अध्ययन ९ उ. १ गाथा ११ के इस पाठ मे केवली, छदमस्थो का वदन करने का अर्थ ध्वनित होता है। तथा रायचद्रजी के दोहे मे भी यही कहा है कि-

"जे सद्‌गुरु उपदेशथी, पाम्यो केवल ज्ञान।
गुरु रह्या छदमस्थ पण, विनय करे भगवान्॥१।१९।

प्रसंगोपात छद्‌मस्थो का भी केवली सिर झुकानादि रूप विनय प्रवृति करते हैं, तो फिर तीर्थंकरो की करे, उसमे तो आश्चर्य ही क्या ?

१२६० प्रश्न-मल्लीनाथ भगवान् ने स्त्री-गोत्र किस गुणस्थान मे बाधा ? पहिले गु. मे तो नपुसक-वेद का बध पडता है और दूसरे गु मे २१ प्रकृति का बंध करता है, वहाँ स्त्री-वेद का बध होता है। छटठे गु. मे सिर्फ १३ प्रकृति का ही बध होता है, तो मल्लीनाथ भगवान् तो छट्‌ठे गु. मे थे। वहा स्त्री-वेद सभव नही लगता ?

उत्तर-मल्लीनाथ भगवान् के जीव महाबल अनगार के स्त्री-नाम-गोत्र कर्म का बध हुआ, उस समय पहले या दूसरे गुणस्थान मे हुआ समझना चाहिए। मिथ्यात्व और अनंतानुबधी के निमित्त से स्त्री नाम कर्म का बध होता है। इस प्रकार के भाव ज्ञाताधर्मकथाग के ८ वे अध्ययन की निम्न टीका से

स्पष्ट होते हैं। "तत्काले च मिथ्यात्व सास्वादनं वा अनुभूतवान, स्त्रीनामकर्मणो मिथ्यात्वानन्तानुबंधी प्रत्ययत्वात्" यह पहले या दूसरे गुणस्थान सम्बंधी भाव साधु होने के बाद, तपस्या मे माया करने से हुए है और तभी स्त्री नाम कर्म का बंध हुआ है।

१२६१ प्रश्न–उपशम-श्रेणी वाला गिर कर के एक बार दो बार या कितनी बार फिर क्षपक-श्रेणी प्राप्त कर सकता है?

उत्तर–जीव को उपशम-श्रेणी चार बार से अधिक प्राप्त नही होती। पाचवी बार क्षपक-श्रेणी ही प्राप्त करेगा। साथ मे यह बात भी ध्यान मे रखने योग्य है कि एक जीव को एक भव मे दो बार से अधिक श्रेणी प्राप्त नही होती।

१२६२ प्रश्न–सामान्य केवली मे और तीर्थंकरो मे कितनी प्रकृतियाँ सत्ता मे रहती है? उनमे अन्तर कितना है अर्थात किसमे कम और किसमें अधिक होती है? और उदय में दोनों मे कितनी रहती है?

उत्तर–सयोगी केवलियो में जो ८५ प्रकृतियो की सत्ता बताई है, उन्ही ८५ प्रकृतियो की सत्ता तीर्थंकर केवलियो में और जिन-नाम बिना ८४ प्रकृतियो की सत्ता सामान्य क[illegible]

उत्तर–शेष सभी पुदगल परावर्तनो से वैक्रिय पुद्‌गल परावर्तन का काल अधिक है, अत. शास्त्रो मे जहां कही अर्द्ध पुद्‌गल तथा ढाई पुद्‌गल परावर्तनादि का वर्णन हो, वहां वैक्रिय पुद्‌गल परावर्तन का हिसाब ही समझना चाहिये।

१२६६ प्रश्न–सकाम-निर्जरा मे कर्मों के पुद्‌गल निर्जरने के बाद पीछे कर्म रूप नही लगने का कथन है, सो इसका प्रमाण क्या है, तथा मिथ्यात्व मे जाने के बाद भी उपरोक्त क्रम ही चालू रहता है या निर्जरे हुऐ पुद्‌गल पीछे लगने लग जाते हैं ?

उत्तर–जिन कर्म-पुद्‌गलो की निर्जरा, सम्यग्‌दृष्टिपन मे हुई हो, वे पुदगल पुन कर्म रूप से उस जीव के, मिथ्यात्व आदि किसी भी अवस्था को प्राप्त करने पर भी नही लगते हैं–ऐसा महासतीजी श्री पानकुवरजी तथा श्री इन्द्रमलजी आदि द्वारा सुना है। इसका वर्णन सम्भवत दिगबर ग्रथो मे होगा। कवि बनारसीदासजी की निम्न कविता इसी बात को स्पष्ट करती है

"ज्ञानीजन को भोग निर्जरा हेतु है।
अज्ञानी को भोग बंध फल देतु है॥
यह अचरज की बात हिये नहीं आवही।
पूछे कोउ शिष्य गुरु समझावही" ॥१॥

श्वेताम्बर ग्रथो मे भी ऐसा वर्णन कही होगा, परन्तु मेरे ध्यान मे नही है। हां "द्वात्रिंशद् द्वात्रिंशिका" (१५ वी), योगबिन्दु, दर्शनशुद्धि आदि ग्रथो मे वर्णन आया है कि समकित प्राप्ति के बाद मिथ्यात्व अवस्था प्राप्त होने पर भी अंत कोटा-

कोटि से अधिक कर्मों का बंध नहीं होता।

नोट—यह शास्त्रकारों का मत है, कर्म ग्रंथकार तो स्थिति-बंध होना बताते हैं, परन्तु उनके मत से भी अच्छे परिणाम होने के कारण उस प्रकार के रस का अभाव तो रहता ही है—ऐसा अभिधान-राजेन्द्र कोष भा ७. पृ. ५०६ में बताया है।

१२६७ प्रश्न—रूपी अजीव के ५३० भेद कैसे समझना? जो वर्ण वाला है, उसमें गंध आदि भी कोई न कोई होगी तथा गंधवान में वर्णादि होगा, तो इनको भिन्न भिन्न कैसे समझना?

उत्तर—भगवती श. २० उ. ५ के अनुसार बादर अनंत प्रदेशी स्कन्ध, जघन्य एक वर्ण, एक गंध, एक रस और अविरोधी चार स्पर्श वाले और उत्कृष्ट सभी वर्णादि वाले हो सकते हैं। इसलिये उन स्कन्धों के वर्ण, गंध, रस इत्यादि का परस्पर संवेध (मिश्रता) बताने से ५३० भेद बनते हैं। जैसे कई काले रंग वाले स्कन्ध, सुगन्ध युक्त और कई दुर्गंध युक्त होते हैं। इसी प्रकार तीखे रस युक्त यावत् कोई मीठे रस युक्त होते हैं, वे ही काले वर्ण वाले कोई पूरे स्कन्ध कर्कश स्पर्श वाले होते हैं जिनमें मृदु स्पर्श नहीं होता, कई पूरे मृदु स्पर्श वाले होते हैं, जिनमें कर्कश स्पर्श नहीं होता। शेष छह स्पर्श भी इसी प्रकार समझ लेना एवं संस्थान भी। किसी में कोई और किसी में कोई होने से काले वर्ण के स्कन्ध २० प्रकार के होते हैं। इस प्रकार अमुक वर्ण, रस और संस्थान वाले स्कन्ध तो बीस बीस प्रकार के और गंध तथा स्पर्श वाले तेवीस तेवीस प्रकार के होने से ५३० भेद होते हैं।

समझना चाहिये ? जीव को उसका अनुभव हो उसी को विपाक कहते हैं या अन्य तरह से ? जैसे जिस समय निद्रा नही आती, उस समय भी उसका उदय रहता है या नही ?

उत्तर–अपने अपने उदय स्थान तक ध्रुवोदयी प्रकृतियो का निरतर उदय रहता है और अध्रुवोदयों का उदय कभी रहता है और कभी नही। जैसे दर्शनावरणीय कर्म की ९ प्रकृतिया है, जिनमे से चक्षुदर्शनावरणीयादि ४ ध्रुवोदयी प्रकृतियो का उदय अपने उदय स्थान (१२ वें गुणस्थान) तक निरतर रहता है और ५ निद्रा अध्रुवोदयी है, उनका उदय स्थान विद्यमान रहते हुए भी कभी किसी जीव के एक भी निद्रा का उदय नही मिलता और कभी मिलता है, तो भी पाचो मे से एक का ही। क्योकि ये उदय परस्पर विरोधी हैं। यह बात छठे कर्मग्रथ की ८ वी गाथा से स्पष्ट होती है।

कर्म के रस (विपाक) भोगने को ही विपाकोदय कहते हैं। विपाकोदय होते हुए भी प्रगट अनुभव तो किसी जीव को, किसी प्रकृति का होता है और किसी का नही भी। निद्रा का अनुभव नही होने वाले समय मे भी किसी को सूक्ष्म (मद) निद्रा का उदय होता है और किसी को नही। मदोदय होने से उसको पता नही लगता, जैसे–देव और नारक के प्रकट निद्रा दिखाई नही देती। परन्तु उनके निद्रा और प्रचला एवं दो निद्रा का उदय, उदय की ६२ मार्गणा मे बताया है।

१२७० प्रश्न–तीर्थंकर, केवली-समुद्घात करते हैं या नही ?

उत्तर–छठे कर्मग्रथ की अठाइसवी गाथा के अर्थ मे तीर्थं-

का उदय रूप सातवे भागे की स्थिति ६६ सागरोपम से अधिक होने का संभव है। साती ही प्रकृति का उपशमात रूप जो समकित है, उसकी स्थिति अंतर्मुहूर्त की होती है और उसमें साती ही प्रकृति का विपाक और प्रदेशोदय नही होता। सातवें भागे मे छह प्रकृति का विपाक और प्रदेशोदय बंद रहता है और समकित-मोहनीय का चालू रहता है। मिथ्यात्व के दलिकों मे से चौठाणिया, तिठाणिया और दुठाणिया रस के दलिकों का हटा कर शेष एकठाणिया रस के तीसरे पुंज रूप दलिकों के उदय को समकित-मोहनीय कहते हैं, तथा मिथ्यात्व के चौठाणियादि रस का उदय हटने के कारण इस भंग को क्षयोपशम मे लिया-ऐसा संभव दिखाई देता है।

१२७४ प्रश्न—ऋतु-बद्ध (शेष) काल मे पीढ फलक को काम मे लेने का निषेध ज्ञाता के ५ वे अध्ययन के—"**ओसन्नो-ओसन्न विहारी एवं पासत्थे २ कुसीले २, पमत्ते संसत्ते उउबद्ध पीढ़फलग-सेज्जा-सथारए पमत्ते या वि विहरइ**—" इस पाठ से बताते हैं, सो कैसे समझना ?

उत्तर—इस पाठ का उक्त भाव निकालना सिद्धातानुकुल नही है। प्रस्तुत प्रकरण मे मडूक राजा, जैन श्रमणोपयोगी प्रवृत्तियो से परिचित है, ऐसा—"**अहापवित्तेण ओसहभेसज्जेण.. ....,फासुअं एसणिज्ज पीढ-फलग-सेज्जा-सथारगं**" आदि पाठो से ज्ञात होता है। उन्होने शैलक राजर्षि से योग्य चिकित्सा के साथ पीढ-फलक आदि भी ग्रहण करने के लिए निवेदन किया। शैलक राजर्षि ने उनके निवेदन के अनुसार

शीतादि दुःख के हेतु का अभाव है अर्थात् वहा शीतादि दुःख के कारण न होने से उसे सभी को सुख देने वाली बताई है।

१२७९ प्रश्न—भाव मन रूपी है या अरूपी ? यदि अरूपी हो, तो सिद्ध भगवान् के भी होना चाहिए, परन्तु उनके तो नही है ?

उत्तर—भगवती सूत्र के श. १३ उ ७ मे मन को आत्मा से अन्य, रूपी, अचित्त, अजीव स्वरूप आदि बताया है तथा १२ वे शतकके ५ वें उ मे मन को चार स्पर्श वाला रूपी बताया है। इसी उद्देशक मे लेश्या सम्बन्धी प्रश्न के उत्तर मे लेश्या के भेद करके भाव लेश्या को अरूपी और द्रव्य लेश्या को आठ स्पर्श वाली रूपी बताई है। यदि यह अन्तर मन के भेदो मे भी होता, तो अवश्य भेद करके फरमा देते, परन्तु ऐसा न कह कर के केवल रूपी ही बताया है। पन्नवणा तथा नंदी की टीका मे मे—द्रव्य मन (मन के ग्रहण किये हुए पुद्गल) भाव मन के बिना भी हो सकता है, परन्तु भाव मन (उन ग्रहण किये पुद्गलो से मनन करना) बिना द्रव्य मन के नही हो सकता—ऐसा बताया है। इत्यादि प्रमाणो को देखते भाव-मन भी रूपी समझ मे आता है।

१२८० प्रश्न—भाव लेश्या को अरूपी किस आधार से बताई है ?

उत्तर—कृष्णादि द्रव्यों के सम्बन्ध से होने वाले आत्मा के परिणाम विशेष को भाव-लेश्या कहते हैं। भाव-लेश्या परिणाम स्वरूप होने से अरूपी बताई है।

१२८४ प्रश्न–मिश्र समकित की स्पष्ट व्याख्या क्या हो सकती है ?

उत्तर–जिस प्रकार नालिकेर द्वीप के मनुष्यों को अन्न पर अत्यन्त आदर तथा अप्रीति नही होती, उसी प्रकार मिश्र-मोहनीय कर्म के उदय से जिन-वचनों पर आभ्यन्तर रुचि रूप राग और आभ्यन्तर अरुचि रूपी द्वेष–ये दोनो ही नही होते। इसमे मिथ्यात्व के दलिको का चौठाणिया और तिठाणिया रस न रह कर दोठाणिया रहता है (समकित मोहनीय मे तो दोठाणिया रस भी हट कर केवल एक ठाणिया रस ही रहता है। पृथक्त्व श्वोच्छ्वास रूप अंतर्मुहूर्त की इसकी स्थिति होती है। इसमें जीव काल नही करता और आयु-कर्म भी नही बाधता। यह मिश्र गुणस्थान रूप मिश्र-समकित सन्नी पचेन्द्रिय के पर्याप्ता मे ही मिल सकती है। समकित प्राप्ति के बाद ही मिश्र प्राप्त हो सकती है। अत: मिश्र वाला जीव, अर्द्ध पुद्गल परावर्तन के अन्दर अवश्य मोक्ष जाता है।

१२८५ प्रश्न–सूयगडांग सूत्र के दूसरे अध्ययन के तीसरे शतक की आठवी गाथा का अर्थ क्या है ?

उत्तर–प्रश्न-कथित गाथा का अर्थ इस प्रकार है–इस मृत्यु लोक मे और वस्तुओ की तो बात ही क्या है, समस्त सुखो का स्थान अपने जीवन को ही पहले देखो। यह जीवन अनित्यता से युक्त है और अवीचिमरण से प्रतिक्षण विनाशी है। समस्त आयु क्षीण होने पर अथवा अध्यवसान (अत्यंत हर्ष और विषाद के कारण अति चिन्ता करना) निमित्त स्वरूप उपक्रम

कारी भाषा बोलने का निषेध किया है। शुद्धि का पूरा ध्यान रखते हुए भी जिस मुनि के अनजान मे आधाकर्मी आहारादि भोगने मे आ गया हो, उस मुनि के तथा (२) प्रथम तीर्थंकर के साधु वर्ग के अतिरिक्त अन्य तीर्थंकरो के साधु-वर्ग मे जिनके लिए आहारादि किया गया है, उनको छोड कर शेष मुनि के काम मे आया हो उसके और (३) अनैषणीय आहारादि आने पर छेदोपस्थापनीय चारित्र देने योग्य नव-दीक्षित को देने का विधान होने से, उसे दिया जाने पर, वह उसको काम मे लेता हो, तो उसके—इन सब के कर्म बन्धन हुए, ऐसा कैसे कहा जा सकता है ? ऐसी परिस्थिति मे उनके तत्सम्बन्धी कर्म बन्धन नही होने पर भी—'कर्म बन्ध हुए'—ऐसा कहना तथा उपरोक्त प्रकार के मुनियो के अतिरिक्त जिसने आधाकर्मी आहारादि जान-बूझ कर भोगा हो, उनके तत्सम्बन्धी कर्म-बन्ध होने पर भी—'कर्म बन्ध नही हुए'—ऐसा कहना—अनाचीर्ण बतलाया है। इस गाथा मे चारित्राचार सम्बन्धी अनाचार का वर्णन किया गया है ॥८॥

ये जो औदारिक, आहारक और कार्मण आदि शरीर हैं, वे सब एक ही हैं अथवा वे एकान्त रूप से भिन्न-भिन्न हैं—ये दोनो एकान्त रूप वचन नहीं कहने चाहिए। क्योकि ये पाचो शरीर कथचित् भिन्न और कथचित् अभिन्न हैं। एव सभी पदार्थों मे सभी पदार्थों की शक्ति विद्यमान है, अथवा सभी मे सभी की शक्ति नही है—ये वचन भी नही कहने चाहिए। क्योकि सभी पदार्थ कथचित् अभिन्न और कथचित् भिन्न भी

का अन्त और काल का अन्त है, उसी प्रकार भव्य की दृष्टि मे उसकी स्थिति अनादि सान्त है।

"सव्वे वि भव्वसिद्धिया जीवा सिज्झिस्सति" का अर्थ प्राचीन धारणा मे इस प्रकार भी किया जाता है कि—जो मोक्ष जावेगे वे सभी भव्य-जीव ही जावेगे।

१२८६ प्रश्न—पन्नवणा सूत्र के पर्याय पद मे चक्षुदर्शन मे छह स्थान पतित कहे हैं, तो वहाँ पर अनन्त गुण अधिक किस अपेक्षा से मिलते हैं? चक्षुदर्शन से देख सकते हैं कि लोक असख्यात कोटा-कोटि योजन का है, तो छह भेद किस प्रकार मिलते हैं?

उत्तर—लोक का क्षेत्र तो असख्य है, किन्तु इतना क्षेत्र भी नेत्र का विषय एक साथ नही हो सकता। नेत्र का विषय तो अधिक से अधिक कुछ अधिक लाख योजन का ही है, परतु उसमे द्रव्य अनन्त हैं। दूसरे द्रव्यो का तो कहना ही क्या, परन्तु आठ स्पर्शी द्रव्य भी अनन्त हैं। अत द्रव्यो की अपेक्षा छह भेद हो सकते हैं। जैसे—मन पर्यवज्ञान का विषय मनुष्य क्षेत्र होते हुए भी छट्ठाणवडिया बताया है। इसी प्रकार चक्षु-दर्शन के मन्दतम क्षयोपशम से उत्कृष्ट क्षयोपशम मे अनन्त गुण अन्तर—द्रव्यो की अपेक्षा पडता है, अवगाहना की अपेक्षा नही।

१२९० प्रश्न—अवगाहना पद मे अनन्त प्रदेशी स्कन्ध मे भी छह भेद बताये हैं, सो किस प्रकार?

उत्तर—अनन्त प्रदेशी स्कन्धो मे भी अवगाहना की अपेक्षा

१२६३ प्रश्न–सम्मूच्छिम मनुष्य का विरह २४ मुहूर्त का किस अपेक्षा से कहा है? कारण कि गर्भज मनुष्य सदा काल है और उनकी अशुचि में मुहूर्त के बाद असंख्यात गण सम्मूच्छिम मनुष्य उत्पन्न होते है–इस प्रकार परम्परा कहती है, तो विरह किस अपेक्षा से है?

उत्तर–गर्भज मनुष्य तथा उनमे उत्पन्न होने वाले मल, मूत्र आदि की अशुचि तो सदा मिलती ही है, परन्तु सम्मूच्छिम मनुष्यो मे उत्पन्न होने वाले जीव कभी कभी लोक मे नही भी मिलते हैं। अत अशुचि विद्यमान होते हुए भी उसमे सम्मूच्छिम मनुष्य कभी उत्पन्न होते है और कभी नहीं भी।

१२६४ प्रश्न–पन्नवणा के योनि पद मे पृथ्वी आदि पाचो एकेन्द्रिय मे सम्वृत योनि कही, सो किस अपेक्षा से? अल्प-बहुत्व मे सवृत योनि विशेष कही। सवृत का अर्थ ढकी हुई हो, तो पृथ्वी, पानी और वनस्पति मे तीनो कैसे नही मिलती? वनस्पति मे सवृत होती है। यहा सवृत का अर्थ–'ढकी हुई' करना या 'छद्मस्थ को दिखाई न दे'–करना? इसी सूत्र मे सूक्ष्म एकेन्द्रिय की योनि दिखाई नही देती, अत सवृत कही गई है। इसका स्पष्टीकरण करावे।

उत्तर–सूक्ष्म-बादर सभी एकेन्द्रिय जीवो की योनि सवृत ही है। सवृत का अर्थ–'ढकी हुई और साधारण छद्मस्थो के द्वारा स्पष्ट नही दिखाई देने वाली योनि'–प्रतीत होता है। पाचो ही स्थावर जीवो का खास उत्पत्ति स्थान दृष्टिगत नही होता है। इसलिए अल्प-बहुत्व मे अतिम बोल संवृत योनि

१२६३ प्रश्न–सम्मूच्छिम मनुष्य का विरह २४ मुहूर्त का किस अपेक्षा से कहा है? कारण कि गर्भज मनुष्य सदा काल है और उनकी अशुचि मे मुहूर्त के बाद असख्यात गुण सम्मूच्छिम मनुष्य उत्पन्न होते है–इस प्रकार परम्परा चलती है, तो विरह किस अपेक्षा से है?

उत्तर–गर्भज मनुष्य तथा उनमे उत्पन्न होने वाले मल, मूत्र आदि की अशुचि तो सदा मिलती ही है, परन्तु सम्मूच्छिम मनुष्यो मे उत्पन्न होने वाले जीव कभी कभी लोक मे नही भी मिलते है। अत अशुचि विद्यमान होते हुए भी उसमे सम्मूच्छिम मनुष्य कभी उत्पन्न होते है और कभी नहीं भी।

१२६४ प्रश्न–पन्नवणा के योनि पद मे पृथ्वी आदि पाचो एकेन्द्रिय मे सम्वृत योनि कही, सो किस अपेक्षा से? अल्प-बहुत्व मे सवृत योनि विशेष कही। सवृत का अर्थ ढकी हुई हो, तो पृथ्वी, पानी और वनस्पति मे तीनो कैसे नही मिलती? वनस्पति मे सवृत होती है। यहा सवृत का अर्थ–'ढकी हुई' करना या 'छद्मस्थ को दिखाई न दे'–करना? इसी सूत्र मे सूक्ष्म एकेन्द्रिय की योनि दिखाई नही देती, अत सवृत कही गई है। इसका स्पष्टीकरण करावे।

उत्तर–सूक्ष्म-बादर सभी एकेन्द्रिय जीवो की योनि सवृत ही है। सवृत का अर्थ–'ढकी हुई और साधारण छद्मस्थो के द्वारा स्पष्ट नही दिखाई देने वाली योनि'–प्रतीत होता है। पाचो ही स्थावर जीवो का खास उत्पत्ति-स्थान दृष्टिगत नही होता है। इसलिए अल्प-बहुत्व मे अतिम बोल सवृत योनि

का ही अनन्त गुण आया है।

१२६५ प्रश्न—वेदनीय कर्म की जघन्य स्थिति बारह मुहूर्त की और नाम तथा गोत्र की आठ मुहूर्त की कही है, जब कि उत्तराध्ययन मे वेदनीय की स्थिति अन्तर्मुहूर्त की तथा पन्नवणा मे बारह मुहूर्त की कही, सो कैसे ?

उत्तर—वेदनीय कर्म की जघन्य स्थिति बारह मुहूर्त की जो कही है, वह सम्पराय साता-वेदनीय की अपेक्षा है और जो अन्तर्मुहूर्त (दो समय के रूप) की कही है, वह ईर्यापथिक साता-वेदनीय की अपेक्षा है। श्री पन्नवणा के तेइसवे पद मे उपरोक्त दोनो स्थितियाँ स्पष्ट बता दी है। उत्तराध्ययन सूत्र के २९ वे अध्ययन के ७२ वे बोल मे भी ईर्यापथिक की स्थिति दो समय की बताई है। इसी के ३३ वे अ मे जो अन्तर्मुहूर्त की स्थिति कही है, वह दो समय रूप अन्तर्मुहूर्त की समझना चाहिए। अत दोनो स्थानो मे परस्पर कोई विरोध नही है।

१२६६ प्रश्न—पू श्री अमोलकऋषिजी म कृत ठाणाग मे लवण समुद्र को दस हजार योजन गहरा बताया है, तो क्या यह छपाई की भूल है ?

उत्तर—लवण समुद्र की भूमि जम्बूद्वीप की ओर से और उधर धातकीखण्ड द्वीप की ओर से ९५-९५ हजार योजन गोतीर्थ (ढलाऊ) है, बीच मे बराबर मध्य भाग मे दस हजार योजन की समभूमि है। लवण समुद्र की गहराई तो एक हजार अर्थात दस सौ योजन की ही है।

१२६७ प्रश्न—समवायाग सूत्र मे उल्लेख है कि १२००

वर्ष का आयुष्य व्यतीत कर राम बलदेव देवलोक मे गये, जब कि 'बडी साधु वन्दना' मे आठ राम मोक्ष मे गये-ऐसा कहा है। दोनो मे से सत्य कौन सा है ?

उत्तर-प्रत्येक उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी मे इस भरत क्षेत्र मे बलदेव नौ होते हैं। बलदेवो को 'राम' भी कहते हैं। तदनुसार इस अवसर्पिणी मे भी नौ हुए, जिसमे से आठ तो मोक्ष गये और एक नौवे बलदेव, पाचवे स्वर्ग मे गये है। इस प्रकार कहने मे कोई बाधा नही है।

१२९८ प्रश्न-समवायाग सूत्र मे निवृत्ति-बादर गुणस्थान के २१ प्रकृति सत्ता मे कही, सो कैसे सम्भव है ?

उत्तर-निवृत्ति-बादर नामक आठवे गुणस्थान मे जिसने दर्शन-सप्तक (अनन्तानुबन्धी की ४ और दर्शन मोहनीय की ३) का क्षय कर दिया है, उस जीव के सत्ता मे मोहनीय-कर्म की २१ प्रकृतियो के अश होते है। मोहनीय-कर्म की कुल २८ प्रकृतियां हैं, उनमे से सात का क्षय कर देने पर शेष २१ ही रहती है।

१२९९ प्रश्न-नैरयिक, वर्तमान भाव की अपेक्षा पाच इन्द्रिय वाले जीव का आहार करता हैं-यह कथन किस अपेक्षा से है ?

उत्तर-यो तो आहार के लिए बाहर से ग्रहण किये जाने वाले पुद्गल एकेन्द्रिय आदि के शरीर के छूटे हुए ही होते हैं, परन्तु खास तो तैजस-शरीर के द्वारा पुद्गल आहार रूप परि. णित होते हैं। अत एकेन्द्रिय से यावत् पचेन्द्रिय तक को अपने-

अपने तैजस शरीर के ही पुद्गल आने से अपने-अपने ही शरीर का आहार ऋजुसूत्र नय की अपेक्षा बताया है। यहां नैरयिक पंचेन्द्रिय है, इसलिए पंचेन्द्रिय के शरीर का आहार लेते हैं।

१३०० प्रश्न—भगवती सूत्र श. ६ उ. ३ में बताया है कि जब तक अबाधा-काल हो तब तक सात कर्म जीव को कोई उपद्रव नहीं कर सकते हैं, परन्तु जब से आयुष्य-कर्म का बंध होता है, तभी से कर्म का निषेक प्रारम्भ होता है। यह बात समझ में नहीं आई। आबाधा-काल तो आयुष्य कर्म का भी होता है।

उत्तर—भगवती श. ६ उ. ३ में स्वयं टीकाकार ने आयुष्य कर्म का अबाधा-काल माना है और मानना उचित ही है। चालू भव में जितना आयुष्य शेष रहते जीव ने आगामी भव का आयुष्य बांधा हो, उतना ही उस जीव के आगामी आयुष्य का अबाधा काल समझना चाहिए। दो आयुष्यों का भोग तो एक साथ होता ही नहीं है।

'पंच संग्रह' में अबाधा-काल नहीं भी माना है, किन्तु अबाधा काल मानना ही उचित है।

झना चाहिए। कालोदधि मे वर्षा का निषेध नही है।

१३०२ प्रश्न—भगवती श ८ उ ६ के प्रयाग बध के अधिकार मे जीव के ८ रुचक-प्रदेशो का बध अनादि-अपर्यव-सित बताया है। इस अपेक्षा से ८ रुचक-प्रदेशो का आवरण किस प्रकार हो सकता है?

उत्तर—आठ रुचक-प्रदेशो मे जो अनादि-अपर्यवसित बध बताया है, इससे तो उन प्रदेशो का परिवर्तन नही होना सिद्ध होता है, परन्तु उन प्रदेशो पर कर्म-बध होने मे कोई बाधा प्राप्त नही होती। टीकाकार तो आठ रुचक-प्रदेशो को निर्लेप मानते हैं, परन्तु शास्त्रीय पाठो मे सभी प्रदेशो पर कर्म लगना सिद्ध होता है और यही बात ठीक प्रतीत होती है।

१३०३ प्रश्न—भगवती श ८ उ. ६ मे तिर्यंच पचेन्द्रिय के सर्व-बध का अन्तर समयाधिक पूर्व-कोटि का बताया है, परन्तु क्या तीन पल्योपम का नही मिलता?

उत्तर—तिर्यंच पचेन्द्रिय के सर्व-बध का अन्तर जो समया-धिक पूर्व-कोटि का बताया, वह ठीक है। तीन पल्योपम का नही हो सकता, क्योकि तीन पल्योपम की आयुष्य वाले भव (वैक्रिय) से तो देव मे उत्पन्न होता है और यहा तो औदारिक के सर्व-बध के अन्तर का प्रश्न है।

१३०४ तीर्थंकर भगवन्तो के जन्म से ही कौन-से चार अतिशय होते हैं?

उत्तर—निरोग और निर्मल शरीर, मास और रुधिर का गो-दुग्ध के समान श्वेतपना, श्वासोच्छ्वास में सुगन्ध और

चर्म चक्षु से आहार-निहार का नही दिखाई देना—ये चार अतिशय तीर्थंकरो के जन्म से ही होते हैं।

१३०५ प्रश्न—भगवान ने मोक्ष पधारते समय विपाक सूत्र का प्ररूपण किया, तो इसके पूर्व ग्यारहवा अग कौन-सा था?

उत्तर—प्रत्येक तीर्थंकर के समय में सूत्र (अगो) के नाम तो वे ही रहते हैं, परन्तु कथाओ के नामो में परिवर्तन होता रहता है। विपाक सूत्र मे पुण्य और पाप के विपाक (फल) बताने वाली कथाओ का वर्णन किया जाता है। नाम वे ही हो, ऐसी कोई खास आवश्यकता नही है।

पुण्य और पाप के विपाक बताने वाली अनेक जीवो की कथाएँ, भगवान फरमाते हैं। उनमे से कोई गणधर किन्ही जीवो की कथाओ को और कोई गणधर अन्य किन्ही जीवो की कथाओ को गुथन कर के विपाक सूत्र की रचना करते हैं।

भगवान् महावीर के शासन मे नौ विपाक सूत्र रचे गये थे। इसी प्रकार आचाराग आदि अग भी नौ-नौ ही रचे गये थे। प्रत्येक तीर्थंकर के समय अनेक विपाक नये-नये रचे जाते हैं।

मोक्ष पधारते समय तो भगवान् ने जो विपाक सूत्र कहा, उसके तो ५५-५५ करके ११० अध्ययन फरमाये, किन्तु सुधर्मा स्वामीजी की वाचना मे तो विपाक सूत्र के १०–१० करके २० अध्ययन हैं। अत मोक्ष पधारते समय जो विपाक सूत्र कहा, वह इनसे भिन्न होने की सभावना है।

१३०६ प्रश्न—त्रायस्त्रिंश देव, पुरोहित स्थानीय होते हैं

या पुत्र स्थानीय ?

उत्तर-"तायत्तीसग" शब्द की टीका-१ "इन्द्राणा पूज्ये महत्तरकल्पे" तथा २ "त्रयस्त्रिशा मन्त्रिकल्पा." एव दोनो प्रकार की मिलती है।

१३०७ प्रश्न-सामानिक देव, कलत्र तुल्य होते हैं या नही ? यदि हा, तो कैसे ?

उत्तर-"समानया इन्द्र तुल्य या ऋद्धयाचरन्ति इति सामानिका" (इन्द्रनी सरखी ऋद्धि वडे चरनार (रहनार) ते सामानिक) भगवती श ३ उ १ की टीका। अत कलत्र तुल्य नही समझना। तथा "सामाने द्युतिवैभवादो भवा सामानिका" ऐसी टीका भी मिलती है। जहा जिसके सामानिक बताये हो वहा उसके सदृश द्युति वैभव वाले देव समझना चाहिए।

१३०८ प्रश्न-चैत्य-वृक्ष की क्या विशेषता है ?

उत्तर-चैत्य-वृक्ष के चलन (कंपन) से अरिहन्तो के जन्म, दीक्षा आदि का ज्ञान हो सकता है तथा वह वृक्ष मुरझाया हुआ दृष्टिगोचर होने से देव अपने च्यवन (मरण) को जान लेते है। इत्यादि विशेषताएँ चैत्य-वृक्ष की होती है।

१३०९ प्रश्न-तपस्या मे एक साथ दो, तीन, चार, पाच आदि करने मे पाच गुणित कर प्रायश्चित्त उतारने की विधि बताई गई है, तो क्या स्वाध्याय मे भी ऐसा नियम लागू किया जा सकता है कि एक साथ दो, चार, छह या आठ हजार

गाथाओ के स्वाध्याय से पाच गुणित कर प्रायश्चित्त उतारने की गणना हो सके ?

उत्तर–स्वाध्याय के लिए यह नियम लागू नही किया जा सकता।

१३१० प्रश्न–एकेन्द्रिय के स्पर्श होने का प्रायश्चित्त है, तो बेइन्द्रिय आदि के स्पर्श का क्यो नही ? यदि एकेन्द्रिय जीवो की मृत्यु को न जानने की आशका से ही प्रायश्चित्त है, तो दड भी शका युक्त प्रकार से होना चाहिए, निश्चयात्मक नही ?

उत्तर–पृथ्वी, पानी, अग्नि, कोमल हरी, फूलन आदि कई एकेन्द्रिय जीवो के स्पर्श से अनेक जीवो की विराधना हो जाती है, परन्तु बेइन्द्रिय आदि के स्पर्श से विराधना का एकान्त नियम नही है। हा, यदि वे बेइन्द्रिय आदि मर जावे या उनको ज्यादा तकलीफ पहुँचे, तो उसका भी दण्ड आता है। रही बात धान्य के कण आदि के पैर से दबने की, सो वे दबने से मरे या नही भी मरे, परन्तु पैर आदि से दबने से उन एकेन्द्रिय जीवो को बहुत पीडा होती है। भगवान् ने भगवती श. १६ उ. ३ मे वट का दृष्टात देकर समझाया है। अत उन एकेन्द्रिय जीवो को पीडा होने के कारण प्रायश्चित्त लेना आवश्यक हो जाता है। यह बात शका युक्त नही है।

१३११ प्रश्न–केवलज्ञानी, समुद्घात करते है या स्वाभाविक होती है ? सातवी कर्त्तव्य को असख्यात समय लगते है। यदि इसे स्वाभाविक मानी जाय, तो सभी को होना चाहिए।

कर्मों की इस प्रकार समुद्घात स्वाभाविक होना असगत लगता है ?

उत्तर–उत्थान आदि जीव की शक्ति की अपेक्षा तो केवली का समुदघात करना ही बताया है, परन्तु हस्त, पाद आदि की प्रवृत्ति से नही। हस्त, पाद आदि की प्रवृत्ति के कार्य को असख्य समय लगते हैं। अतरग उत्थान आदि शक्ति के कार्य तो जीव एक और अनेक समय मे भी कर सकते हैं। अत आठ समय मे करने मे वाधा नही।

आयु अल्प हो और वेदनीय आदि कर्मों की स्थिति अधिक हो, वे ही केवली, केवली-समुद्घात करते हैं, अन्य नही।

१३१२ प्रश्न–क्या असुरकुमार असख्य वर्ष पूर्व की वात या वाद में होने वाली वात जान सकते हैं ? यदि हा, तो क्या सभी जान सकते हैं और यदि नही, तो क्यो ?

उत्तर–जो असुरकुमार सागरोपम की स्थिति वाले होते है, वे असख्य वर्ष पूव की और आगे होने वाली वात को जान सकते हैं, परन्तु पल्योपम की स्थिति वाले नही जान सकते।

१३१३ प्रश्न–भवनपति देवो के अपर्याप्त अवस्था मे कितने गुणस्थान पाये जा सकते हैं ?

उत्तर–किन्ही भवनपति देवो के अपर्याप्ता मे प्रथम, किन्ही मे द्वितीय और किन्ही मे चतुर्थ, इस प्रकार तीन गुण-स्थान मिल सकते हैं।

१३१४ प्रश्न–भवनपति देवो के अपर्याप्त अवस्था मे कितने प्राण होते हैं ? उनके मन, वचन और श्वासोच्छ्वास नहीं

होता है, तो वे बिना श्वासोच्छ्वास के कैसे जीते है ?

उत्तर-बाटे बहते भवनपति मे एक आयुष्य बल प्राण होता है। कोई काय बल प्राण युक्त दो बल प्राण बाटे बहते मे मानते है। शरीर पर्याप्ति पूर्ण होने से काय-बल प्राणयुक्त दो प्राण होते है, इन्द्रिय पर्याप्ति पूर्ण होने से पाच इन्द्रियो के पाच प्राण बढने से सात प्राण हो जाते है, श्वासोच्छ्वास पर्याप्ति पूर्ण होने से श्वासोच्छ्वास युक्त आठ प्राण होते है, भाषा और मन पर्याप्ति पूर्ण होने से पर्याप्त हो जाते हैं। अत दस ही प्राण होते हैं। चौथी पर्याप्ति पूर्ण हुए पहिले सभी जीव बिना श्वासोच्छ्वास के ही जीवित रहते हैं।

१३१५ प्रश्न-तिलोक प्रज्ञप्ति की २८२ वी गाथा मे क्षयोपशम को छोड कर छह सम्यक्त्व नारकी मे बताई, सो कैसे ?

उत्तर-तिलोक प्रज्ञप्ति तो देखने मे नही आई, परन्तु प्रत्यक्ष मातो हो सम्यक्त्व नरक मे बताई है, किसी को भी छोडा नही।

१३१६ प्रश्न-नारायण प्रतिनारायण बलभद्र और चक्रवर्ती नरक से निकल कर नही होते, फिर चक्रवर्ती की आगत ८२ की बताई, सो कैसे ?

उत्तर-प्रज्ञापना पद २० के प्रमाण से प्रथम नरक मे निकल कर चक्रवर्ती तथा प्रथम और द्वितीय नरक से निकल कर नारायण और बलभद्र हो सकते हैं।

१३१७ प्रश्न-पन्द्रह परमाधामी देव क्या असुरकुमार

जाति के ही है ?

उत्तर–पन्द्रह परमाधामी, असुरकुमार जाति के ही देव हैं।

१३१८ प्रश्न–"केई देवाहितो धम्माणे वद्धा कहा व सोइण"–कोई धर्म से सम्बन्ध रखने वाली कथाओं को सुन कर सम्यक्त्व प्राप्त करते हैं, सो नैरयिकों को धर्म-कथा श्रवण का योग कैसे मिलता है ?

उत्तर–प्रज्ञापना पद २० के प्रमाण से स्पष्ट है कि देवों के संयोग से नैरयिकों को वहीं धर्म-श्रवण का अवसर मिलता है।

१३१९ प्रश्न–अणिमादि ऋद्धि किसे कहते है ?

उत्तर–आठ ऋद्धि का अर्थ स्तवन में निम्न प्रकार देखने में आया है–

"प्रथमा ऋद्धि अणिमा नाम, नान्हो रूप करे सुख काम ।
कमल-नाल में पैसी जाय, चक्री केरो सुख भुगताय ॥१॥
दूजी महिमा ऋद्धि अभिराम, मेरु थकी मोटो तनु ताम ।
विष्णुकुमार तणी परे होय, सुर-नर देख डरे सहु कोय ॥२॥
लघिमा वायु परे तनु थाय, गरिमा वज्र सो शरीर बनाय ।
इन्द्रादिक नही सके उठाय, चौथी गरिमा नाम कहाय ॥३॥
प्राप्ति पंचमी ऋद्धि की वात, फेरे भू बैठा मेरु पर हाथ ।
प्राकाम्य छठी ऋद्धि गुण एह, जल पर भू पर ज्यूं फिरे जेह ॥४॥
ईशित्व सप्तमी ऋद्धि का नाम, तीर्थंकर ऋद्धि करे सुख धाम ।
अष्टमी वशित्व जग वश थाय, सुर-नर पूजे तेहना पाय ॥५॥
अष्ट सिद्धि प्रभु नामे मले, प्रभु नामे लक्ष्मी अविचले ।
प्रभु नामे हुवे मंगल माल, मुनिराम कहे सब टले जंजाल ॥६॥

१३२० प्रश्न—सभी भवनो के चैत्य-वृक्ष नियम से जीवो की उत्पत्ति और विनाश के हेतु होते हैं, सो कैसे ?

उत्तर—चैत्य वृक्षो की कुम्हलावट और प्रफुल्लता से देव-देवियो को तत्सम्बन्धित मृत्यु तथा उत्पत्ति का ज्ञान हो सकता है, परन्तु स्वयं चैत्य-वृक्षो को जीवो की उत्पत्ति और विनाश का हेतु नही समझना चाहिए ।

१३२१ प्रश्न—"**सम्मत्त रयणजुत्ता, णिब्भरभत्तीय णिच्चमच्चति । कम्मखवणनिम्मत देवा, जिणणाह पडिमाओ ।।५४।।**" तो फिर मानवो को मोक्षार्थ जिन-प्रतिमा पूजन क्यो नही करना चाहिए ?

उत्तर—उनकी मान्यतानुसार वे तिलोकप्रज्ञप्ति मे कहते हैं, परन्तु यह शास्त्र-सगत नही है । आनन्द आदि श्रावको के वर्णन मे इस पूजा आदि का वर्णन नही है और साधुओ को भी दर्शन आदि करने की आज्ञा तथा नही करने पर प्रायश्चित्त नही बताया है । अत यह बात उन्होने व्यक्तिगत मान्यतानुसार रची प्रतीत होती है । आगम-प्रमाण मे यह प्रामाणिक नही है ।

१३२२ प्रश्न—आचारांग सूत्र के द्वितीय श्रुतस्कन्ध मे कहा गया है—"जाणमाणोवि ण जाणत्तिवये ।" सो क्या यह कायरता नही सिखलाना ? उलटा, यह होना आवश्यक था कि—"जाणमाणोवि ण वदिज्जामो" इस प्रकार कहा जा सकता है । अत यह पाठ किन प्राणियों को उद्देशित करके कहा गया है ?

उत्तर-" जाणआ णा जाणति वएज्जा " पाठ का अर्थ-जानता हुआ भी मैं जानता हूँ ऐसा न कहे अर्थात् मौन ही रहे। यही अर्थ ठीक लगता है। ऐसा अर्थ करने पर ही इस आलापक के सन्दर्भ के साथ ठीक रूप से मेल बैठता है।

१३२३ प्रश्न-गहरी उष्णता और गहरी शीत को पा कर भी धान्य निर्जीव नहीं हो पाता, तो केवल स्पर्श मात्र से निर्जीव हो जाने की कल्पना करना कहां तक उचित है ?

उत्तर-गहरी उष्णता, गहरी शीत और स्पर्श से भी कोई-कण निर्जीव हो सकते हैं। निर्जीव होने का एकान्त निषेध नहीं करना चाहिए। कभी कोई निर्जीव नहीं भी हो, तो भी पीडा तो अवश्य होती है। अतः प्रायश्चित्त लेना आवश्यक हो जाता है।

१३२४ प्रश्न-भगवती सूत्र में कहा है कि छह महिने में 'निमित्त' घायल मरे, तो प्राणातिपात क्रिया लगती है, तो जिनका आयुष्य स्वाभाविक कम हो और निमित्त मिल जाय, तो प्राणातिपात क्रिया नहीं लगनी चाहिए ?

उत्तर-छह महिने मे मरने से जो पाचवी क्रिया बताई है, वह व्यवहार नय से समझना चाहिए, परन्तु वास्तविक तो यह समझना चाहिए कि उसी प्रहार समय मे मरने से पाचवीं क्रिया लगती है। इस प्रकार का स्पष्टीकरण भगवती श. १ उ. ८ की टीका मे दिया है।

१३२५ प्रश्न-नास्तिक व्यक्ति मानते हैं कि 'शरीर के विनाश के साथ आत्मा का भी विनाश हो जाता है। तप-जप,

करने की कोई आवश्यकता नही है।' यद्यपि राजप्रश्नीय सूत्र मे इसका किंचित् समाधान है, परन्तु केवल दृष्टांत रूप मे है। यदि आत्मा का विनाश होना मान लिया जाय, तो कौन-कौन से दोष लगते है ?

उत्तर-शरीर के प्रत्येक परमाणु का विचार करने से उनकी जडता स्पष्ट दिखाई देती है। अत उसमे से चेतन की उत्पत्ति होना शक्य नही है और न उसमे नाश होना ही शक्य है।

देह, रूपी स्थूल आदि परिणाम वाला है और चेतन दृष्टा है, तब उसके संयोग से चेतन की उत्पत्ति और उसमे विनाश होवे ही कैसे ? जिसमे कभी भी जानने का स्वभाव न हो, वह जड और जिसमे सदा जानने का स्वभाव हो, वह चेतन। इस प्रकार दोनो का स्वभाव अत्यत भिन्न-भिन्न है, दोनो का एक स्वभाव कभी हो ही नही सकता अर्थात् जड का चेतन और चेतन का जड कभी नही बन सकता।

अभी इस युग में भी किसी-किसी को जातिस्मरण का अंश होता हुआ सुनने में आता है। इससे भी पूर्व जन्म की सिद्धि और जीव की अविनाशिता प्रकट होती है।

द्रव्य का अवस्थान्तर हो सकता है, परन्तु सम्पूर्ण रूप से नाश नहीं होता। जो कभी सम्पूर्ण नाश नहीं होते हैं, वे ही द्रव्य कहलाते हैं। जीव भी द्रव्य है। अतः वह अनादि से था, है और रहेगा तथा कभी भी उसका समूल नाश नहीं होगा।

आत्मा को अविनाशी नहीं मानने से कई दोषो की प्राप्ति होती है, जिनमे से निम्न मुख्य हैं—

मूल से जीव की उत्पत्ति और नाश माने, तो जीव किस चीज का बनता है और उसका नाश होने के बाद क्या बनता है आदि अनेक दोष खडे होते हैं।

मूल से ही जीव की उत्पत्ति और विनाश मानने से सद्-भाव का नाश और असद् भाव की उत्पत्ति आदि दोष भी उत्पन्न होते हैं। इत्यादि अनेक बातो का विचार करने से

मात्मा की अनादिता और अविनाशिता स्पष्ट प्रतीत होती है।

१३२६ प्रश्न–सिद्ध भगवान् को ईश्वर माने, तो बहुत ईश्वर हो जायेंगे। लगभग सभी मत वाले मानते हैं कि एक ऐसी शक्ति है जिसको ईश्वर मानना चाहिए। इस युक्ति का खडन किस प्रकार हो सकता है?

उत्तर–सम्यक् पुरुषार्थ से जिस किसी जीव का शुद्ध स्वरूप प्रकट हो जाय, उसको ईश्वर (सिद्ध) समझना चाहिए। इस प्रकार जो भी जीव, शुद्ध स्वभाव को प्रकट कर लेते हैं, वे सभी ईश्वर कहलाने योग्य होते हैं, न कि एक ही।

इस प्रकार के जीवो मे से एक को ईश्वर मान कर, अन्य को ईश्वर नही मानना, यह न्याययुक्त नही है।

हा, जिस प्रकार ठाणाग मे "एगेसिद्धे" शब्द से सभी सिद्धो का ग्रहण किया है, उसी प्रकार यदि सग्रह नय से उन मुक्त जीवो मे से किसी का भी न छोडते हुए जाति-वाचक (गुण समान) की अपेक्षा उन सभी को एक शब्द मे ग्रहण करे तो कोई बाधा नही, परन्तु गणना मे एक मानने मे ईश्वर का पूर्वोक्त वास्तविक स्वरूप विद्यमान नही रहेगा। ईश्वर क्या चीज है? किस चीज का बना हुआ है? वैसा दूसरा क्यो नही हो सकता? होने मे रुकावट डालने वाला कौन है? क्या वह ईश्वर ईर्षालु और अहकारी है? आदि-आदि अनेक दोष खडे होगे। अत ईश्वर को उपरोक्त प्रकार से एक तथा अनेक मानना ठीक है।

उस कर्म-रहित शुद्ध ईश्वर को जगत्-कर्ता मानना भी

भ्रम पूर्ण और अनेक दोष उपस्थित होने का कारण है। जैसे—ईश्वर निराकार है, तो उसमे साकार चीजे कहा से आई? तथा जगत् किस जीव का बनाया? वह निर्विकल्प-सदानन्दी है, उसमे जगत बनाने का विकल्प कैसे उत्पन्न हुआ और उसे बनाने की चिन्ता क्यो हुई? वह त्रिकालज्ञ पूर्ण ज्ञानी है, तो उसने चोर, जार, हिंसक, नास्तिक आदि क्यो बनाये? उसकी शक्ति हिंसा आदि दुष्कार्य रोकने मे सफल क्यो नही हुई? क्या वह ईश्वर दुरगी नीति वाला है, जो पहले तो व्यक्तियो से दुष्कार्य करावे और फिर दड दे? क्या ईश्वर हिंसादि दुष्कार्य का कर्त्ता नही ठहरेगा? क्योकि उसकी शक्ति से बनी हुई चीजो से ही दुष्कार्य होते हैं, आदि-आदि।

"पुढो विस्संभिया पया"—इस पाठ के अनुसार विभिन्न रूपो के निर्माता ऐसे जगत् के जीवो को ही यदि ईश्वर मान लिया जाय, तो अपने कर्मानुसार जगत्-जीव, विभिन्न रूपो का कर्त्ता है ही। क्योकि नाना योनियो मे जन्म लेकर अनेक रूप धारण करता ही है, परन्तु ऐसा ईश्वर कोई नही है, जो ससार के पदार्थों को बनाता हो।

१३२७ प्रश्न—जैन मान्यता है कि ईश्वर कर्त्ता नही है, सुख-दुःख अपने कर्मों के अधीन है, तब 'लोगस्स, नमोत्थुण' आदि के पाठ तथा पूर्वाचार्यों और वर्तमान आचार्यों आदि के स्तोत्र इत्यादि मिथ्या ठहरते हैं। क्योकि उनके पाठो से स्पष्ट होता है कि सिद्ध भगवान् कर्त्ता हैं?

उत्तर—किसी दूसरे को मित्र, शत्रु, विरोधी, अनुयायी,

दुःखदाता, सुखदाता आदि मानना, निमित्त-कारण रूप व्यवहार-दृष्टि का है, निश्चय का नही। निश्चय-दृष्टि से तो जीव अपने सुख-दुःख का कर्त्ता आप ही है। जिस प्रकार अपने पैरो से अटवी पार करने पर भी मार्ग भूला हुआ दिग्मूढ पुरुष, सही मार्ग बताने वाले पुरुष को अटवी-सस्तारक, सुख एव जीवन-दाता मानता है, ठीक उसी प्रकार उपदेश आदि के निमित्त से तीर्थंकर आदि महापुरुषो को तारक, अभयदाता, जीवनदाता आदि बताने तथा मानने मे कोई बाधा नही है। इस अपेक्षा से लोगस्स, नमोत्थुण और आचार्यों आदि कृत स्तोत्रो मे भगवान् को लोक-हितकर, चक्षुदाता, मार्गदाता, शरणदाता, मोचक आदि मानना ठीक है।

१३२८ प्रश्न—जितने जीव सिद्ध होते हैं, उतने जीव कम हो जाते है, तब किसी एक समय मे जीवो का अन्त आ जावेगा। यदि निगोद-राशि मे सिद्ध होते है, उतने ही जीव व्यवहार-राशि मे आ जाते हैं, तो किसी समय निगोद के जीवो का भी अन्त आ जायगा। वास्तव मे व्यवहार-राशि और अव्यवहार-राशि क्या वस्तु है?

से कम होते ही है, यह भी ठीक है, परन्तु भव्य जीव इतने अनन्त है कि किसी भी काल मे उनकी समाप्ति नही होगी, इसीलिए मोक्ष-मार्ग बन्द नही होगा और न ही कभी ससार भव्यशून्य बनेगा।

१३२६ प्रश्न—ऐसा माना जाता है कि सभी भव्य जीव तो मोक्ष मे नही जाते, तो नही जाने वाले भव्य-जीवो मे और अभव्य जीवो मे क्या अन्तर रहता है और मोक्ष मे नही जाने वाले भव्य-जीव कैसे पहिचाने जा सकते हैं ?

उत्तर—जिन जीवो मे मोक्ष जाने की योग्यता हो, उन्हे 'भव्य' और जिनमे योग्यता नही हो, उन्हे 'अभव्य' कहते हैं। जिन भव्य-जीवो को ज्यो-ज्यो सभी प्रकार की अनुकूल सामग्री प्राप्त होती जाती है, त्यो-त्यो वे मोक्ष प्राप्त करते जाते हैं। इस प्रकार मोक्षमार्ग अनादि से चालू है और चालू ही रहेगा। ऐसा कोई समय नही आएगा कि जब इन रहे हुए भव्यो मे से कोई मोक्ष नही जायेगा। केवलज्ञानी भगवन्तो ने भव्य-जीवो की स्थिति "अणाइया सपज्जवसिया" ही बताई है। अत ऐसा समय कभी भी नही होगा कि जब ये मोक्ष नही जाने वाले "भव्य" रहेगे। भव्य और अभव्य की सम्पूर्ण पहिचान तो विशिष्ट ज्ञानी ही जान सकते हैं।

१३४० प्रश्न—कर्म और ग्रह क्या वस्तु है ? इनके परस्पर क्या सम्बन्ध है और क्या अन्तर है ? ज्योतिष जानने वाले कर्मों का हाल जान कर ग्रहो का फल बताते हैं क्या ? जिस की जन्म-पत्रिका ठीक बनी हुई हो और जो ज्योतिष-विद्या

दुखदाता, सुखदाता आदि मानना, निमित्त-कारण रूप व्यवहार-दृष्टि का है, निश्चय का नही। निश्चय-दृष्टि से तो जीव अपने सुख-दुख का कर्त्ता आप ही है। जिस प्रकार अपने पैरो से अटवी पार करने पर भी मार्ग भूला हुआ दिग्मूढ पुरुष, सही मार्ग बताने वाले पुरुष को अटवी-सस्तारक, सुख एव जीवन-दाता मानता है, ठीक उसी प्रकार उपदेश आदि के निमित्त से तीर्थंकर आदि महापुरुषो को तारक, अभयदाता, जीवनदाता आदि बताने तथा मानने मे कोई बाधा नही है। इस अपेक्षा से लोगस्स, नमोत्थुण और आचार्यों आदि कृत स्तोत्रो मे भगवान् को लोक-हितकर, चक्षुदाता, मार्गदाता, शरणदाता, मोचक आदि मानना ठीक है।

१३२८ प्रश्न—जितने जीव सिद्ध होते हैं, उतने जीव कम हो जाते हैं, तब किसी एक समय मे जीवो का अन्त आ जावेगा। यदि निगोद-राशि से सिद्ध होते हैं, उतने ही जीव व्यवहार-राशि मे आ जाते हैं, तो किसी समय निगोद के जीवो का भी अन्त आ जायगा। वास्तव मे व्यवहार-राशि और अव्यहार-राशि क्या वस्तु है ?

उत्तर—जो जीव अनादि से निगोद मे ही हो, उन जीवो की राशि को अव्यवहार-राशि और नरक आदि चारो गति मे भ्रमण करने वाले जीवो की राशि को व्यवहार-राशि कहते हैं। जितने जीव मोक्ष मे जाते हैं, लगभग उतने ही जीव अव्यवहार राशि से व्यवहार राशि मे आ जाते हैं, यह बात ठीक है। जितने जीव मोक्ष जाते है, उतने जीव तो सासारिक जीवो मे

से कम होते ही है, यह भी ठीक है, परन्तु भव्य जीव इतने अनन्त हैं कि किसी भी काल मे उनकी समाप्ति नही होगी, इसीलिए मोक्ष-मार्ग बन्द नही होगा और न ही कभी ससार भव्यशून्य बनेगा।

१३३९ प्रश्न—ऐसा माना जाता है कि सभी भव्य जीव तो मोक्ष मे नही जाते, तो नही जाने वाले भव्य-जीवो मे और अभव्य जीवो मे क्या अन्तर रहता है और मोक्ष मे नही जाने वाले भव्य-जीव कैसे पहिचाने जा सकते है ?

उत्तर—जिन जीवो मे मोक्ष जाने की योग्यता हो, उन्हे 'भव्य' और जिनमे योग्यता नही हो, उन्हे 'अभव्य' कहते हैं। जिन भव्य-जीवो को ज्यो-ज्यो सभी प्रकार की अनुकूल सामग्री प्राप्त होती जाती है, त्यो-त्यो वे मोक्ष प्राप्त करते जाते हैं। इस प्रकार मोक्षमार्ग अनादि से चालू है और चालू ही रहेगा। ऐसा कोई समय नही आएगा कि जब इन रहे हुए भव्यो मे से कोई मोक्ष नही जायेगा। केवलज्ञानी भगवन्तो ने भव्य-जीवो की स्थिति "अणाइया सपज्जवसिया" ही बताई है। अत ऐसा समय कभी भी नही होगा कि जब ये मोक्ष नही जाने वाले "भव्य" रहेगे। भव्य और अभव्य की सम्पूर्ण पहिचान तो विशिष्ट ज्ञानी ही जान सकते है।

१३४० प्रश्न—कर्म और ग्रह क्या वस्तु है ? इनके परस्पर क्या सम्बन्ध है और क्या अन्तर है ? ज्योतिष जानने वाले कर्मों का हाल जान कर ग्रहो का फल बताते हैं क्या ? जिस की जन्म-पत्रिका ठीक बनी हुई हो और जो ज्योतिष-विद्या

मे प्रवीण हो, वह सुख दुःख, लाभ-अलाभ का यहाँ तक कि आयुष्य भी ठीक ठीक बतला सकता है। यह कैसे सम्भव है?

उत्तर-कर्म चतुःस्पर्शी पुद्गल है। मिथ्यात्व आदि रूप स्वयं के भावो से ही वे पुद्गल जीव के प्रदेशो के साथ सम्बन्धित होकर योग्यतानुसार अनुभाग बता कर पुनः पृथक् भी होते हैं। ग्रह ज्योतिषी देव हैं। कर्मों का सम्बन्ध जैसा अन्य ससारी जीवो के साथ है, वैसा ही ग्रह रूप ज्योतिषी देवो के साथ भी है। दूसरा कोई विशेष सम्बन्ध ज्ञात नही।

जिस प्रकार नेत्र आदि अग स्वयं कुछ नही समझते हैं, परन्तु उनके फडकने पर से शुभ, अशुभ, लाभ, अलाभ आदि का अनुमान बुद्धिमानो ने निकाला है और विशेष ज्ञानियो ने तो तद्रूप मिलान भी मिलाया है। इसी प्रकार छींक, जानवरो की बोली, शस्त्रादि के शकुन, बिजली, घुअर, मोघ, उदकमत्स्य, कपि-हास्य, प्रकाश के चिन्ह, भूकम्प, असमय वृक्षो का फलना आदि वस्तुओ पर से शुभाशुभ आदि के फल बताये हैं। उस पर से साधारण ज्योतिष भी निकालते हैं। वैसे कर्म होने पर ही वैसे सयोग मिलते हैं, अन्यथा किसी भी प्रकार उन पर प्रतिबन्ध लग जाता।

१३४१ प्रश्न-पूर्व तीर्थंकरो के समय मे 'लोगस्स' कैसा था?

उत्तर-महाविदेह क्षेत्र की जिस किसी विजय में जिस तीर्थंकर का शासन चलता हो, उस तीर्थंकर के नाम का लोगस्स होता है। भरत और एरवर्त क्षेत्र मे वर्तमान चोवीसी मे

करना चिकने कर्म-बंध का कारण बताया है। निशीथ मे इसका चौमासी प्रायश्चित्त वर्णित किया है।

ग्रामीण लोगो मे एव शोक-सन्ताप के समय नागरिको मे भी इनका उपयोग वर्जित-सा दिखाई देता है। साबुन-सोडा आदि मे खार की मुख्यता है। खार को ठाणाग के नोवे ठाणे मे शस्त्र (हिंसा का साधन) बताया है। अत त्यागी-वैरागी साधु-वर्ग द्वारा इनका उपयोग कैसे योग्य हो सकता है ?

साधु को बिना कारण वस्त्र धोना ही नही, तो बार-बार धोने का तो प्रश्न ही कहा ? हा, बार-बार धोने की सम्भावना भी साबुन-सोडे के प्रयोग से हो सकती है। यहा कम धोने के प्रसग मे तो समय अधिक लगने का प्रश्न उपस्थित ही नही होना चाहिए, परन्तु कहीं आगमोक्त विधि से कार्य करने मे अधिक समय लग भी जाय, तो भी वह अधिक समय लगना, अविधि के कम समय से ठीक है। जैसे सामने लाए हुए का लेने की अपेक्षा गवेषणा मे अधिक समय लगना हितकर है।

१३४४ प्रश्न–बडी नीति आदि की असज्झाय छाटा रूप मे मिटा ली जाती है। बहुत सम्भव है बडी-नीति के समय अथवा रात्रि के समय या परठने के समय कुछ असज्झाय के पैरो मे छीटे लग जाते हैं, जो दृष्टि-गोचर नही होते। इससे तो प्रतीत होता है कि पैरो का धोना लाभप्रद है, एव परठने का ओघा भी भिन्न होना आवश्यक है। क्या ऐसा सोचना ठीक है ?

उत्तर–सावधानी से निपटते हुए तथा परठते हुए साधु को असज्झाय का छाटा लग जाय, तो उस छाटे को तथा लगे हुए

लौकिकानुसार श्रावण, भाद्रपद और आश्विन मे से कोई महीना बढेगा, तो होली-चौमासी चैत्र-पूर्णिमा का, आषाढी-चौमासी श्रावण-पूर्णिमा को और सवत्सरी आश्विन मे मनानी पडेगी।

कभी सिद्धान्तानुसार आषाढ बढे और लौकिकानुसार चैत्र, वैशाख तथा ज्येष्ठ मे से कोई महीना बढेगा, तो आषाढी चौमासी लौकिक ज्येष्ठ-पूर्णिमा को करनी पडेगी। उस समय सवत्सरी मनाने की स्थिति कैसी रहेगी, सो भी विचारणीय है। यदि लौकिकानुसार श्रावण, भाद्रपद और आश्विन मे से कोई महीना बढेगा, तो आषाढी-चौमासी लौकिक श्रावण की और सवत्सरी आश्विन मे मनानी पड़ेगी।

कभी सिद्धान्तानुसार पौष अधिक होगा और लौकिकानुसार कुछ भी अधिक न होगा, तो होली-चौमासी चैत्र पूर्णिमा की, आषाढी चौमासी श्रावण-पूर्णिमा की और सवत्सरी आश्विन की आवेगी। एव सिद्धातानुसार आषाढ अधिक होगा और लौकिक मे कुछ भी अधिक न होगा, तो आषाढी-चौमासी श्रावण-पूर्णिमा की और सवत्सरी आश्विन की होगी।

सिद्धान्तानुसार कभी अधिक मास न हो और लौकिकानुसार अधिक मास हो, तो ऐसी परिस्थिति मे चौमासी और सवत्सरी मनाने की क्या अवस्था रहेगी ?

४९ वे दिन सवत्सरी मनाने का उल्लेख कही भी सिद्धात मे देखने मे नही आया और प्रत्यक्ष मे भी इसमे अनेक बार अन्तर देखने मे आता है। ७० दिन का वर्णन सूत्र मे है, परन्तु कई वार तो सवत्सरी से कार्तिक-चौमासी तक ६८ दिन ही

काला-बाजार आदि अनीति एव अन्याय पूर्वक कपडे आदि का व्यवसाय करता है । इन दोनो मे विशेष पाप किसको लगता है ?

उत्तर–व्यवहार-दृष्टि से तो अनीति एवं अन्याय से व्यापार करने वाला अधिक पाप का भागी दिखाई देता है । उनके विचारो का निश्चय तो ज्ञानी ही जान सकते है ।

१३४९ प्रश्न–शख, पुष्कली आदि ने भोजन करके दया-पौषध अगीकार किया या पौषध अंगीकार करने के बाद भोजन किया ?

उत्तर–प्रश्न कथित श्रावको ने पौषध (दया रूप पौषध) मे भोजन किया–ऐसा भगवती श १२ उ. १ से स्पष्ट है ।

१३५० प्रश्न–श्रावक के लिए सर्वथा वनस्पति, कच्चा पानी तथा स्नान आदि का त्याग किस शास्त्र मे है ?

उत्तर–"वनस्पति के समारभ के त्यागी श्रावक से पृथ्वी खोदते वृक्ष की जड छेदन हो जाय, तो उसके व्रत का उल्लघन नही होता"–आदि वर्णन भगवती श. ७ उ. १ मे है । इससे स्पष्ट होता है कि कोई-कोई पृथ्वी खोदने वाले श्रावक भी वनस्पति के समारंभ के त्यागी होते हैं, तो फिर दूसरे श्रावको मे वनस्पति, कच्चा पानी और स्नान के त्यागी मिल जाय, जिसका तो कहना ही क्या ? ज्ञाताधर्मकथा अध्ययन १३ मे जिस प्रकार नन्द मणियार सेठ का जीव, मेढक के भव मे आजीवन बेले बेले की तपस्या स्वीकृत करके भी पारणे मे प्रासुक जल आदि का ही ग्रहण करता था, उसी प्रकार अनेक श्रावक सम्पूर्ण सचित्त वस्तुओ के खान-पान के त्यागी होते हैं ।

की कोई आवश्यकता नही रहती। जहा जिन मुनि को मुनि-विधि से भिक्षा मिले, वे वहा से ग्रहण कर लेते। तीनो सघाडो के मुनि अन्यत्र भिक्षा लेते-लेते देवकी महारानी के यहा भी पहुँच गये थे। वे ही मुनि पुन. पधार रहे हैं—ऐसा जानने से देवकी को शका हुई। दूसरे-दूसरे मुनियो का पधारना जान लेती, तो शका नही होती।

१३५२ प्रश्न—श्री नमस्कार मन्त्र के पहले और पीछे बीज अक्षर लगाये जाते हैं एव लोगस्स का भी कल्प है, तो क्या ये मूल पाठ के स्मरण से कर्म काटने में अधिक लाभप्रद हैं? यदि कहा जाय कि सासारिक कार्यों की सिद्धि के लिए आचार्यों ने बनाये हैं, तो ऐसा करना मिथ्यात्व का हेतु है। प्रश्न यह है कि मिथ्यात्व लगने वाली प्रवृत्तियो का विधान आचार्यों ने क्यो किया?

उत्तर—नमस्कार मन्त्र आदि के आगे और पीछे बीजाक्षर लगाने की कोई आवश्यकता नही है। इनके लगाने से कर्म काटने में अधिक लाभ का हेतु भी जाना नही। इसी प्रकार लोगस्स आदि के कल्प के विषय में भी समझना चाहिए।

इन मन्त्रो का साधन सासारिक कार्यों की सिद्धि के लिए करना, लोकोत्तर प्रवृति मिथ्यात्व माना गया है, किन्तु लौकिक और कुप्रावचनिक देवो की आराधना रूप मिथ्यात्व की अपेक्षा यह बहुत ही मद है। अत. हो सकता है कि किसी आचार्य ने उस महा मिथ्यात्व से जीवों की रुचि हटाने के लिए यह बीजाक्षरादि बनाये हो।

१३५३ प्रश्न–भावी तीर्थंकरो को नमस्कार करना चाहिए या नही ?

उत्तर–कृष्ण-वासुदेव और श्रेणिक नरेश आदि का भविष्य मे तीर्थंकर होने का खुलासा हो जाने पर भी उनको किसी भी साधु साध्वी आदि ने वन्दना नही की थी। इस प्रमाण से स्पष्ट है कि भावी तीर्थंकरो को पहिले नमस्कार नही किया जाता है।

१३५४ प्रश्न–ग्रहण के समय जो असज्भाय रखी जाती है, वह ग्रहण के अच्छे होने पर क्यो रखी जाती है, ग्रहण के पहले क्यो नही ? अन्य मतावलम्बी सूतक लगने पर ही कितनेक भोजन आदि बन्द कर देते है। यह सूतक क्या है ?

उत्तर–जैन सिद्धान्त मे ग्रहण का सूतक नही बताया और असज्भाय भी ग्रहण लगने के पूर्व नही बताई, परन्तु ग्रहण के समय मे और समाप्ति के कुछ समय बाद तक रखने का खुलासा दिया है। अत: उसी प्रकार ही असज्भाय रखी जाती है।

१३५५ प्रश्न–कई पूर्णिमा तथा प्रथमा को असज्झाय रखी जाती है, तो शेष पूर्णिमाओ और प्रथमाओ को क्यो नही रखी जाती है ?

उत्तर–भाद्रपद, आश्विन, कार्तिक, चैत्र और आषाढी पूर्णिमा और इनके आगे की तिथियो पर इन्द्र, स्कन्द, यक्षादि देवो के महोत्सवो के कारण असज्भाय रखी जाती है, शेष पर नही।

१३५६ प्रश्न–आर्द्रा नक्षत्र लगने पर गाजबीज आदि की असज्भाय नही रखने का क्या कारण है ?

थे और वे कितने ही समय बाद कई मोक्ष में और कुछ रहे हुए तिर्यंच गति मे चले गये हो और काल क्रमागत तीन गति के सभी जीव तिर्यंच गति में से ही आये हुए हो, वैसे प्रसग में वे सभी जीव तिर्यंच योनि मे थे, इस प्रकार कहा जाता है। उन्होने वहा नरक गति आदि के हेतुभूत पाप-कर्म का समर्जन और समाचरण किया। यह बात प्रथम शतक के दूसरे उद्देशे मे (तीन गति मे) बताये हुए शून्य काल से भी पुष्ट होती है। तिर्यंच गति मे रहे हुए सभी जीव कभी नही निकल सकते, इसलिए वहा शून्य काल नही हो सकता ।

१३६० प्रश्न–कर्म कहा बाधने व भोगने के ६ बोल मे यह आया है कि तिर्यंच, नरक और देव मे होवे। यह किस प्रकार हो सकता है? जब कि नरक से जीव देवलोक मे और देवलोक मे से नरक मे उत्पन्न नही होते ?

उत्तर–पाप-क्रिया के आचरण द्वारा जीवों ने पाप-कर्म का ग्रहण किस गति मे किया, इसके उत्तर के छठे विकल्प की शका का उत्तर निम्न प्रकार है–नरक के जीव सीधे देवलोक मे और देवलोक के सीधे नरक मे उत्पन्न नही होते, यह बात सही है, परन्तु इस छठे विकल्प मे भी तिर्यंच तो शामिल ही है। अत नरक के जीव तिर्यंच मे होकर देवो मे और देवो के जीव तिर्यंच मे हो कर नरक मे जा सकते हैं। यह बात बाहुल्यता से समझाई है।

नही दे सकते थे ?

उत्तर–कुकडी (कुकुटी) का अर्थ शरीर और उदर तथा अडग का अर्थ मुंह (मुंह मे समाये उतना कवल) भी होता है। इस प्रकार का भी अर्थ सुनने व धारने मे आया है। रही बात ऐसे शब्द बोलने की, सो प्रदेश विशेष मे किसी शब्द का प्रयोग अनुचित भी माना जाता और अन्य प्रदेश मे वही शब्द सामान्य माना जाता है।। जैसे-पजाब में कुकडी का अर्थ भुट्टा होता है और सामान्य रूप से कुकडी खाना–ऐसा वे प्रयोग करते हैं। इत्यादि कई शब्द कोई देश में आदर वाचक और कहीं गाली-वाचक और लज्जा-जनक होते हैं। अत प्रसगोपात ऐसे शब्दो का प्रयोग करने मे ज्ञानियों ने कोई बाधा नही समझी। हा, अर्थ करते समय उन शब्दो का भाव समझाने का लक्ष्य रखने की अत्यंत आवश्यकता है।

१३६२ प्रश्न–भगवती सूत्र के ३० वे शतक में चार समवसरण किस आशय से कहे गये हैं ? समवसरण तो भगवान् का होता है। अक्रियावादी तथा अज्ञानवादी, समकित एव ज्ञान में किस प्रकार पाये जाते हैं–जब कि ये दोनो खराब हैं ?

उत्तर–अनेक प्रकार के परिणाम वाले जीव जिसमे रहे, उसे 'समवसरण' 'मत' अथवा दर्शन कहते हैं। जीवादि पदार्थों के अस्तित्व को मानने वाले क्रियावादी हैं। यहाँ बताये हुए सभी क्रियावादी सम्यग्दृष्टि ही हैं। शेष तीन समवसरण वाले सम्यग्दृष्टि नही हैं। जीवादि पदार्थों के अस्तित्व को नहीं मानने वाले अक्रियावादी हैं, अज्ञान को श्रेष्ठ मानने वाले

अज्ञानवादी और एक विनय को ही श्रेष्ठ मानने वाले विनयवादी हैं। ऐसे तो सम्यक्त्व और ज्ञान मे एक समवसरण क्रियावादी ही माना है, परन्तु विकलेन्द्रिय के समकित व ज्ञान मे अक्रियावादी और अज्ञानवादी, ऐसे दो समवसरण बताये हैं, जिसका कारण यह सम्भवित है कि—यदि कोई सम्यक्त्व से गिरते हुए सन्नी पचेन्द्रिय जीव मरकर विकलेन्द्रिय मे उत्पन्न हुए हो, उन विकलेन्द्रिय जीवो मे अल्प समय के लिए अपर्याप्तावस्था मे गिरती हुई सास्वादन सम्यक्त्व और वैसे ही गिरते हुए ज्ञान का अश माना है। परन्तु वे असंज्ञी होने से उन ज्ञानादि का उन्हे भान नहीं होता है तथा वे मिथ्यात्व के अभिमुख हैं, शीघ्र ही मिथ्यात्व मे जावेगे। अत उनमे उपरोक्त दो समवसरण बताये हैं। विकलेन्द्रिय को लेकर ही सम्यक्त्व व ज्ञान मे बीच के दो समवसरण कहे हैं, अत ठीक है।

१३६३ प्रश्न—अपर्याप्त सूक्ष्म पृथ्वीकाय कितनी कर्म-प्रकृतियो का बध करता है ? १४ प्रकृतियां कैसी है ?

उत्तर—अपर्याप्त सूक्ष्म पृथ्वीकाय और एकेन्द्रिय जीव १४ कर्म प्रकृतियो को वेदते (भोगते) हैं—ज्ञानावरणीय से लेकर अतराय पर्यन्त ८ कर्म की ८ प्रकृति, तथा ९ श्रोत्रेन्द्रिय वध्य (श्रोत्रेन्द्रिय का आवरण) अर्थात् श्रोत्रेन्द्रिय के अभाव का दु ख भोगते हैं, १० चक्षुइन्द्रिय आवरण ११ घ्राणेन्द्रिय आवरण १२ रसनेन्द्रिय आवरण और १४ पुरुषवेद आवरण, इन १४ प्रकृतियो को वेदते (भोगते) हैं। स्पर्श इन्द्रिय और नपुंसक वेद उनके हैं, अत इनका अभाव नही बताया है।

१३६४ प्रश्न—शर्कराप्रभा के पूर्व के चरमान्त मे मनुष्य-क्षेत्र मे उत्पन्न होने की समश्रेणी नही है, यह किस आशय से कहा ?

उत्तर—रत्नप्रभा पृथ्वी तो यहा है अर्थात् अपन रत्नप्रभा पृथ्वी के ऊपरी भाग (छत) पर ही बैठे हुए है। अत इस पृथ्वी के पूर्वादि चरमान्त मे एकेन्द्रिय जीवो का मनुष्य-क्षेत्र मे उत्पन्न होने के लिए सम (बराबर सीध मे) श्रेणी (स्ट्रेट-लाइन) हो सकती है—मिल सकती है, परन्तु शर्करादि प्रभा पृथ्विये तो नीचे आई हुई है, उनके पूर्वादि चरमान्तो मे एकेन्द्रिय जीवो का मनुष्य-क्षेत्र मे आने के लिए समश्रेणी लग नही सकती। इसलिए समश्रेणी का निषेध बताया है।

१३६५ प्रश्न—आकाश के एक देश मे एकेन्द्रिय के पर्याप्ता व अपर्याप्ता है। रत्नप्रभा व सिद्धशिला की अपेक्षा यह किस आशय से कहा ? क्या सारे देश मे नही है ? (भगवती पृ. ३०१४)

उत्तर—पृ. ३०१४ के भाव इस प्रकार समझना—हे भगवान् पर्याप्त बादर पृथ्वीकायिक जीवो के स्थान कहा कहे हैं ? हे गौतम ! स्व-स्थान की अपेक्षा से रत्नप्रभादि आठ पृथ्वियो मे है इत्यादि वर्णन पन्नवणा सूत्र के दूसरे स्थान पद मे बताये अनुसार जानना—ऐसा कहकर पन्नवणा की भलामण दे दी है और कह दिया है कि पर्याप्त बादर पृथ्वीकाय के स्थानो से लेकर यावत् पर्याप्त और अपर्याप्त वे सब सूक्ष्म वनस्पति कायिक जीव एक ही प्रकार के हैं। उनमे कोई विशेषता या भिन्नता नही, हे आयुष्मन् श्रमण ! वे सब लोक मे व्याप्त हैं। इस प्रकार सक्षेप मे यहा एकेंद्रिय के २० बोलो के स्थान आदि की भलामण

पन्नवणा की दे दी है, पन्नवणा मे तो इनका वर्णन भिन्न २ दिया है। यहाँ सक्षेप में यही समझना कि बादर एकेन्द्रिय के १० भेद लोक मे कही है और कही नही भी, परन्तु सूक्ष्म एकेन्द्रिय के १० ही भेद सम्पूर्ण लोक मे हैं। नोट–यदि उस स्थल पर अर्थकार कुछ स्पष्टीकरण कर देते, तो वाचक सशय मे नही पडते।

१३६६ प्रश्न–चरिम समय कृतियुग्म एकेन्द्रिय मे देव उत्पन्न नही होना, यह किस आशय से कहा ?

उत्तर–यहा चरम शब्द से एकेद्रियो का मरण-समय विवक्षित है और वह उसके पर (अगले) भव के आयुष्य का प्रथम समय है। जब एकेद्रिय के भव का अतिम समय बता दिया और वे आगामी भव मे जाते हैं, तब उनमें देवो का उत्पन्न होना कैसे सम्भव है ? वहा तो उत्पन्न होने वाले वे ही एकेद्रिय हैं।

१३६७ प्रश्न–प्रथम चरिम समय और चरिम-अचरिम समय किसे कहते हैं ?

उत्तर–विवक्षित सख्या की राशि के अनुभव के और भव के भी अतिम समयवर्ती एकेन्द्रियो को चरम–चरम-समय कृत-युग्म २ एकेन्द्रिय कहे जाते हैं।

विवक्षित सख्या की राशि के अनुभव के प्रथम समयवर्ती और भव के अतिम समयवर्ती एकेद्रियो को प्रथम चरम-समय कृतयुग्म २ कहते हैं।

विवक्षित संख्या की राशि के अनुभव के अतिम समयवर्ती

और अपने भव के प्रथमादि समयवर्ती एकेंद्रियो को चरम-अचरम समय कृतयुग्म २ कहते हैं। इस प्रकार से उन-उन शब्दो को देखकर शब्दानुसार अर्थ समझना चाहिए। अप्रथम और चरम समय का बोल तो यहा कोई आना नही।

१३६८ प्रश्न—श्रेणिक नरेश का पूर्वभव वर्णन किस सूत्र मे आया है ?

उत्तर—श्रेणिक नृप के पूर्वभव का वर्णन किसी सूत्र में देखने में नही आया।

१३६९ प्रश्न—श्री कृष्ण-वासुदेव के प्रद्युम्नकुमार प्रमुख साढे तीन करोड कुमार थे, तो ये सभी कृष्ण-वासुदेव के ही पुत्र थे ?

उत्तर—प्रद्युम्नकुमार आदि साढे तीन करोड़ कुमार—अंतगड और ज्ञाता में बतलाये हैं। ये सभी कृष्ण-वासुदेव के पुत्र थे—ऐसा नही समझना चाहिए, किन्तु इनके राज्य (परिवार) मे, सब स्थानो के मिला कर इतने कुमार थे। यह बात वहीं बताये हुए दशार, महावीर, दुर्दांत, वीर आदि की संख्या और वर्णन से स्पष्ट होती है।

१३६९ प्रश्न—माता के घर जाने पश्चात् थावच्चापुत्र ने १००० पुरुषो के साथ स्वयं पंच-मुष्ठी लोच करके दीक्षा ली। उन्होने माता की उपस्थिति मे ही दीक्षा क्यो नही ली ?

उत्तर—जिस प्रकार थावच्चापुत्र की माता, दीक्षा की आज्ञा दे कर चली गई और बाद मे उन्होने दीक्षा ली। उसी प्रकार मेघकुमार और जमालि क्षत्रिय-कुमार आदि के माता-पिता

इच्छा की बात है। उस समय किसी की इच्छा होती, तो वे भगवान् के साथ दीक्षा ले सकते थे, इसमे भगवान् की कोई रुकावट नही थी। किसी भी व्यक्ति की इच्छा उस समय दीक्षा लेने की नहीं हुई, अत. भगवान् ने अकेले ही दीक्षा ली।

१३७५ प्रश्न—समवायाग सूत्र सववाय ११ वा सूत्र पाठ इस प्रकार—"**लोगंताओ इक्कारसएहिं एक्कारेहिं जोयणेहिं आबाहाए जोइसते पण्णत्ते।**" इसमे 'लोकान्त' शब्द का क्या अर्थ है ? ज्योतिषात ज्योतिषचक्र का अन्त भाग लोकान्त से ११११ योजन आबाधा से किस हिसाब से बैठता है ?

उत्तर—सममूमि भाग से ७९० योजन ऊपर से ज्योतिषी देवो के विमान प्रारम्भ होते हैं और ९०० योजन की ऊँचाई तक है। कुल ११० योजन की मोटाई मे ज्योतिषियो के विमान आये हुए हैं। वहा तिर्च्छा लोक की लम्बाई-चोडाई एक रज्जू परिमाण है। जिसमें से चारो ओर ११११ योजन किनारे का भाग छोड कर ज्योतिषियो के विमान आए हुए हैं अर्थात् तिर्च्छा लोक के ११११ योजन अन्तिम भाग में ज्योतिषियो के विमान नही हैं। यहा "**जोइसंते**" का अर्थ यह है कि ज्योतिषियो के जो अन्तिम दो विमान हैं उनसे आगे चारो ओर ११११ योजन पर तिर्च्छा लोक का अन्त है। उस ११११

उत्तर–वस्तु के असली स्वरूप को 'निश्चय' और उसके अनुकूल पोषक बाह्य शुद्ध साधनो को 'व्यवहार' कहते है।

१३७७ प्रश्न–निश्चय मोक्षमार्ग निर्विकल्प और व्यवहार मोक्षमार्ग सविकल्प और आश्रव सहित है ?

उत्तर–यद्यपि निश्चय मोक्षमार्ग निर्विकल्प है और व्यवहार मोक्षमार्ग सविकल्प एवं पुण्याश्रव सहित है, तथापि आवश्यकता दोनो की है। जैसे कहा भी है–

"निश्चय वाणी सामली, साधन तजवा नोय।
निश्चय राखी लक्षमा, साधन करवा सोय॥
नय निश्चय एकातथी, आमां नथी कहेल।
एकाते व्यवहार नहीं, बन्ने साथ रहेल॥
उपादाननु नाम लई, ए जे तजे निमित्त।
पामे नहीं सिद्धत्व ने, रहे भ्रान्ति मा स्थित॥
अथवा निश्चय नय ग्रहे, मात्र शब्दनी माय।
लोपे सद् व्यवहार ने, साधन रहित थाय॥
त्याग विराग न चित्त मा, थाय न तेने ज्ञान।
अटके त्याग विराग मा, तो भूले निज भान।"

उत्तर–अपेक्षा से व्यवहार मोक्षमार्ग मुक्ति का हेतु होता है। जैसे कि उत्तराध्ययन अध्ययन २८ गाथा २५ मे क्रिया-रुचि का मोक्षमार्ग का हेतु बताया है, तथा भगवती शतक २ उद्देशक ५ व ठाणाग ठा ३ मे मुनि-सेवा का फल धर्म श्रवण से लेकर मोक्ष पर्यन्त बतलाया है। इत्यादि अनेक प्रमाण हैं।

१३७९ प्रश्न–क्या द्रव्य अपने-आप मे स्वतन्त्र है ? क्या एक द्रव्य, दूसरे द्रव्य की कुछ सहायता कर सकता है और यदि कर सकता है तो कैसे ?

उत्तर–निश्चय नय से द्रव्य अपने आप मे स्वतत्र है, किंतु व्यवहार से परतत्र भी होते हैं और एक-दूसरे को अनुकूल एवं प्रतिकूल रूप से सहायता भी कर सकते हैं। जैसे जीव, कर्म के सयोग से नर, नारकादि रूप धारण करता है, भारी बनता है, भव भ्रमण करता है, मूढ बनता है और परवश बन जाता है। एक द्रव्य दूसरे द्रव्य पर असर करता है, तभी भगवान् ने विकारी शब्द, रूप आदि से बचने का फरमाया है।

धर्मोपकरण सयम साधना मे तथा शुभयोग स्वाध्याय, सेवा, धर्मोपदेश आदि मे सहायक बनते हैं।

अजीव द्रव्य को ले कर जीव, शरीर, इन्द्रिय, योग आदि बनाता है। जीव की सहायता से घट-पटादि अजीव द्रव्यो की विभिन्न आकृतियां तैयार होती हैं, इत्यादि प्रकार से द्रव्य एक दूसरे के सहायक होते हैं।

१३८० प्रश्न–दिखाई देने वाली जितनी भी वस्तुएँ हैं, वे प्रयोग-परिणत और मिश्र-परिणत ही है, या विस्रसा परिणत

भी है ? हमें पृथ्वी, पानी आदि स्थावर व त्रस जीव, मकान, कुरसी, टेबल, आदि जीव प्रयोग-परिणत और मिश्र परिणत पुद्गल दिखाई देते हैं-बद्धेलक और मुक्केलक दिखते हैं, वैसे विस्रसा भी दिखाई देते और पकड में आते है क्या ?

उत्तर-विस्रसा परिणत पुद्गलो में से कई पुद्गल दिखाई देते हैं। जैसे धूप, छाया, अभ्र (बादल), अभ्रवृक्ष (बादल रूप वृक्ष), अमोघ, इन्द्रधनुष, उदक-मत्स्य, जल-कुण्ड, वायु-कुण्ड आदि अनेक विस्रसा परिणत पुद्गल भी दिखाई देते है।

१३८१ प्रश्न-अजीव के उदय-भाव होना प्रज्ञापना सूत्र पद ५ सूत्र १ की टीका मे लिखा है। गोंडल सम्प्रदाय के पूज्य श्री पुरुषोत्तमजी म. ने भी कुछ वर्षों पूर्व ऐसा ही कहा था। क्या यह ठीक है ?

जो पुद्गल जीवाश्रित नही है, अपितु केवल जड रूप ही हैं, उनमे उदय-भाव नही होता, क्यो कि उदय-भाव का होना कर्म के उदय से ही माना गया है। इसका स्पष्टीकरण अनुयोग-द्वार टीका पत्र २१४ मे तथा भगवती भा. ४ पृष्ट ३२ के टिप्पण मे है।

१३८२ प्रश्न–क्या ऐसा कोई नियम है कि जिस दिन (वार) को अष्टमी हो, उसी वार को पक्खी होनी चाहिए और जिस वार को पक्खी हो, उसी वार को अष्टमी होनी चाहिए ?

उत्तर–एकात ऐसा कोई नियम नही है कि अष्टमी और पक्खी का एक ही वार हो। कई बार अष्टमी और पक्खी का एक वार मिल भी जाता है और कई बार नही भी मिलता।

१३८२ प्रश्न–क्या कही मोक्ष को अष्टम गति भी लिखा है ? पचम गति तो ध्यान मे है। अष्टम का कही उल्लेख हो तो बताने की कृपा करे ?

उत्तर–श्री पन्नवणा सूत्र के तीसरे पद मे २७ द्वार चलते हैं, उनमे से दूसरे गति द्वार मे गति की अपेक्षा अल्प-बहुत्व बतलाया गया है, जिसमें पहले सिद्ध-गति सहित पाच गति की और फिर सिद्ध-गति सहित आठ की अल्प-बहुत्व बताई गई है। वह पाठ यह है।

"एएसि णं भंते ! णेरइयाणं तिरिक्ख जोणियाणं तिरिक्ख जोणिणीणं मणुस्साणं मणुस्सीणं, देवाणं देवीणं सिद्धाणं य अट्ठगति समासेणं कयरे कयरे कयरेहिं

तो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?"

इस अपेक्षा से सिद्ध-गति को अष्टम गति कहा जा सकता है।

ठाणाग सूत्र के आठवें ठाणे मे आठ गति बताई गई है, परन्तु उसमे तो सिद्ध-गति का नम्बर पांचवा ही है। आगे तीन गति दूसरी बताई गइ है। वह पाठ यह है–

"णिरयगई तिरयगई मणुयगई देवगई सिद्धि गई, गुरुगई पणोल्लगई पब्भारगई।"

१३८३ प्रश्न– उत्तर भरत मे तीर्थंकरादि होते है या नही? नही तो क्यो?

उत्तर–दक्षिण भरत मे जिन तीर्थंकरो का शासन होता है, उन्ही का शासन उत्तर भरत मे भी समझा जाता है। उत्तर भरत मे तीर्थंकर, चक्रवर्ती, बलदेव, वासुदेव (प्रतिवासुदेव) नहीं जन्मते हैं। जन्मते हैं केवल दक्षिण भरत के मध्य खण्ड में ही, तथा तीर्थङ्कर इस खण्ड मे ही विचरण करते हैं। जो तीर्थंकर चक्रवर्ती भी होते हैं, वे चक्रवर्ती अवस्था मे खण्ड साधने के लिए उत्तर भरत मे जाते हैं।

बारह ही चक्रवर्तियो के समय मे उत्तर भरत के लोगों का इधर आना-जाना तो रहता ही है। उस समय तीर्थंकर, साधु आदि के उपदेश एव ससर्ग मे धर्म का बोध उनमे से किसी को हो सकता है या जाति-स्मरण आदि से भी। उनमें से कोई दीक्षा भी ले सकता है। कोई अपने घर पर उत्तर भरत मे श्रावकपना पालन कर सकता है, किन्तु साधुपना

लेकर वहा विचरण करना कठिन होता है। यदि किसी का अन्तिम समय मे साधुपने के भाव हो जाय और यहा दक्षिण भरत मे आने जितना आयुष्य न हो, तो वही पर चारित्र प्राप्त कर सथारा ग्रहण कर जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति के प्रमाणानुसार मोक्ष भी जा सकते हैं। वैताढय पर्वत पर विद्याधरो की दोनो श्रेणियो मे चारो ही तीर्थ मिल सकते हैं। वहा विद्याधर साधु साध्वी विचर भी सकते है। पूर्वोक्त सभी दक्षिण भरत के तीर्थंकर के शासन के ही कहलायेगे।

१३८४ प्रश्न–सवत्सरी तक सभी प्रायश्चित्त ले लेना, बाकी नही रखना, ऐसा भी कही विधान है क्या ?

उत्तर–सवत्सरी तक सभी प्रायश्चित्त ले लेना–ऐसा स्पष्ट पाठ तो देखने मे नही आया, परन्तु प्रायश्चित्त तो शीघ्र ही उसी समय ले लेना चाहिए। ऐसा विधान तो आगम मे मिलता है। कदाचित् ऐसा नहीं हो सका हो, तो दिन के दोषो की देवसी प्रतिक्रमण के समय मे और रात्रि के दोषो की रायसी प्रतिक्रमण के समय मे शुद्धि कर ही लेनी चाहिए। यदि ऐसा भी नही हो सका हो, तो पाक्षिक पर्व के दिन वैराग्य भावना की वृद्धि करके, सूक्ष्म बुद्धि से अतिचारो का निरीक्षण करके दोषो का परिहरण कर देना चाहिए। यदि ऐसा भी नही हो सका हो, तो चौमासी पर तथा उस समय भी नही हो सका तो सवत्सरी पर उत्तरोत्तर वैराग्य की वृद्धि कर के प्रायश्चित्त लेकर शुद्ध हो जाना चाहिए। प्रतिक्रमण तो देवसी आदि ५ ही बताये है, अत. सवत्सरी पर अवश्य प्रायश्चित्त ले लेना

चाहिए ।

व्यक्तिगत दोषो को तो साधक की आत्मा और ज्ञानी ही जान सकते हैं । अत उन दोषो की शुद्धि उसकी स्वयं की आत्मा पर निर्भर है, परन्तु प्रसिद्ध दोषो को अनेक जानते हैं, इसलिए उनका प्रायश्चित्त सवत्सरी तक तो अवश्य ले लेना चाहिए ।

१३८५ प्रश्न— सुना है कि "जितने तीर्थंकर नाम-कर्म के बन्ध वाले हैं, उतने वतमान मे गर्भज-मनुष्य भी नहीं है ।" क्या यह बात सही है ?

उत्तर— तीर्थंकर का विरह (अन्तर) लोक के अन्दर कभी भी नही पडता । लोक मे कभी भी २० तीर्थंकर से कम नहीं मिलते हैं । तीर्थंकरो की दीक्षा-पर्याय एक लाख पूर्व से अधिक नही होती है । तीर्थंकर, नरक या वैमानिक देव के आये हुए ही होते हैं । वैमानिक देव की स्थिति एक पल्योपम से कम नहीं होती है । एक पल्योपम के करोड पूर्व असख्य होते हैं । अत.

१३८६ प्रश्न– विपाक श्रुत स्कन्ध २ मे वर्णित दसो प्राणी काल कर के किस गति मे गये ? इनमे से कोई सीधा मोक्ष गति मे भी गया है क्या ? यदि नही, तो पाचवे आदि अध्ययनो मे " **जाव सिद्धे** " बताया, उसका क्या अर्थ ? नंदी की हुंडी मे सुखविपाक का वर्णन करते हुए " **देवलोगगमणाइ, सुहपरपराओ सुकुल ...** " इससे तो सभी का देवलोक गमन ही सिद्ध होता है।

उत्तर– विपाक श्रुत स्कन्ध २ के दस प्राणियो मे से प्रथम के तीन और दसवे–इन चारो का वर्णन समान और शेष छहो जीव उसी भव मे मोक्ष गये–ऐसी कइयो की धारणा है। इसका टीका मे कोई विशेष खुलासा नही है। केवल " **एवमुत्त-राणि नवाप्यनुगन्तव्यानीति** ' ऐसी टीका दी है। इससे तो दसो का ही समान वणन मालूम होता है, परन्तु विपाक सूत्र के मूलपाठ के भलामण से तो प्रथम पक्ष वाली बात ठीक प्रतीत होती है। प. श्री घासीलालजी म की बनाई हुई विपाक सूत्र की टीका मे छह जीवो की तद्भव मोक्ष स्पष्ट रूप से बताई है। नन्दी सूत्र मे जो देवलोक आदि का पाठ है, वह तो जो जो जीव देवलोक गये हैं, उनके लिए वह पाठ होगा, ऐसा प्रथम पक्ष का कहना है।

१३८७ प्रश्न ठाणाग १० में "सिद्ध विग्रह-गति" का उल्लेख है। यह किस प्रकार सगत हो सकता है ? सिद्ध भगवान की तो सम गति ही जानी, फिर यह विग्रह-गति कैसे समझी जाय ?

उत्तर- विग्रह और अविग्रह गति का प्रसिद्ध अर्थ के अतिरिक्त निम्न अर्थ भी होता है-

विग्रह-गति एक गति मे दूसरी गति मे जाने वाले (वक्र तथा ऋजु गति मे वाटे वहने वाले) सभी जीव विग्रह-गतिया और जो उत्पत्ति क्षेत्र को प्राप्त हुए अर्थात् वहा रहने वाले वे अविग्रह गतिया। ऐसा अर्थ भगवती श. १४ उ. ५ मे तथा ठाणाग १० सूत्र ७४५ की टीका मे निकलता है, सो बहुत ही ठीक प्रतीत होता है।

१३८८ विनय के सात भेदो मे "लोकोपचार विनय" का अर्थ और भाव क्या है ?

उत्तर- स्थानाग स्थान ७ (सू. ५८५) की टीका में "विनीयते अष्ट प्रकार कर्मनेनेति विनय." आठ प्रकार के कर्म जिससे नाश हो, उस विनय बताया है। "लोकानामुपचारो व्यवहार-स्तेन स एव वा विनयो लोकोपचार-विनय" इस विनय का लोग तो कला, धन, काम आदि की प्राप्ति के लिए कलाचार्य, नृप, वेश्या आदि का "अब्भास-वत्तिय" आदि ७ प्रकार का विनय करते है। परन्तु यहा मोक्ष-मार्ग का प्रकरण है जो ऊपर कर्मनाश का अर्थ बताया

कलाचार्य आदि के साथ जो " अब्भासवत्तियं " आदि विनय प्रवृत्ति है वैसे ही " अब्भास वत्तिय " आदि विनय प्रवृत्ति शुद्ध चारित्रियो के साथ होने से इसका नाम लोकोपचार विनय बताया है, परन्तु पास मे रहने आदि के विचारो मे अन्तर है। इसकी ओट मे मोक्षमार्ग के विरुद्ध प्रवृत्ति करना सर्वथा अनुचित है।

१३८९ प्रश्न–किसी दुराचारी साधु को गृहस्थ दड दे, तो यह उसके अधिकार मे है या नही ?

उत्तर–" **संति एगेहिं भिक्खूहिं, गारत्था संजमुत्तरा।**" उत्तराध्ययन अ ५ गाथा २०। " **कुसीललिंग इहधार-इत्ता,....४३,** उत्त॰ अ २०। ऐसे हो जाने पर " **अयसि लोए विसमेव गरहिए**" उत्त. अ. १७ गाथा २० तथा " **गिहत्था वि ण गरिहंति, जेण जाणंति तारिसं** "

दशवैकालिक अ. ५ उ. २ गाथा ४० के अनुसार वे निन्दनीय बन जाते हैं, उसके असह्य दुष्कृत के कारण लोग उसको निंदे, दड देवे, यह स्वाभाविक ही है। उसको अनधिकार नही समझना। जब वह साधु अपने अधिकार को छोडता है, तभी गृहस्थो द्वारा वास्तविक रूप से दड का पात्र बनता है। ऐसी स्थिति मे यदि उनको अनधिकारी बतावे, तो कहने वाला दोष और दोष-पात्रो का बचाव करने वाला होता है।

देव तथा श्रावको ने विपरीत प्रवृत्ति करने वालो की निर्भर्त्सना, ताडनादि की, जिसके कतिपय उदाहरण–

१ बाईसवे परीषह पर दी हुई आषाढाचार्य की कथा में देव ने राजा (श्रावक) रूप धारण कर के आहार बहरने की प्रार्थना की यावत् पात्र मे भूषण मिलने से अत्यन्त कठोर शब्दों मे उनकी निर्भ्रंछना की।

२ बलभद्र नृप जो श्रावक थे, उन्होने तीसरे निन्हवो पर कोप करके उनको बंधवाये और मारने आदि का हुक्म दिया।

३ शुल्कपाल (दाणी) श्रावको ने चौथे निन्हव की मार-पीट की।

४ मणिनाग नाम के देव ने पाचवे निन्हव पर मुग्दर उठाया और कुपित होकर बोला।

उपरोक्त उदाहरणो से स्पष्ट होता है कि दुराचारियो को श्रावक आदि दड दे सकते हैं। निन्हवो की कथा उत्तराध्ययन अ. ३, स्थानाग ठा. ७ (सू. ५७८) की टीका तथा उववाई आदि मे है।

व्यवहार सूत्र के प्रथम उद्देशे के उपात मे आलोचना दिलाने योग्य अन्य का सयोग नही मिलने पर समभाव वाले सम्यग्दृष्टि गृहस्थ के पास भी आलोचना करना यावत् प्रायश्चित्त को स्वीकार करना बताया है।

१३९० प्रश्न–बत्तीस सूत्रो के मूल से ४७ दोषो मे "पाओअर," "परिवर्तित" तथा पाहुडिया" दोष कहां आये हैं?

उत्तर–उद्गम के १६ दोषो मे से छठा दोष 'पाहुडं' (प्राभव) मेहमान आगे-पीछे करके देवे, सातवा "पाउकरण"

(प्रादुष्करण) अंधेरे में उजाला करके देवें–ये दोनों ही दोष प्रश्नव्याकरण के अंतिम अध्ययन में है। दशवां–'**परियट्टिय**' (परिवर्तित) दोष निशीथ के १४ वें उ. में पात्र वर्णन में, १८ वें उ. में तथा १९ वें उ. में "**वियंड**" के वर्णन आदि में दिया है।

१३९१ प्रश्न–उत्पादन के १६ दोषों में निमित्त और आजीविका के अतिरिक्त १४ बोल नहीं मिले ?

उत्तर–मूल-कर्म के बिना उत्पादन के १५ दोष निशीथ के १३ वें उ. के अन्त में बताये हैं। मूल-कर्म दोष मूल से दीक्षादि कारण होने से शायद यहां नहीं बताया होगा।

१३९२ प्रश्न–एषणा के १० में से 'छड्डिय' नहीं मिला।

उत्तर–छड्डिय दोष के स्थान प्रश्नव्याकरण के १० वें अ. में 'पकिण्ण' (प्रकीर्ण) विक्षिप्तं विच्छर्दित-परिशाटीतयर्थः अनेन च छर्हितभिधान–एषणादोष उक्तः–इस प्रकार बताया है।

१३९३ प्रश्न–आहार में लगने वाले दोषों में-आचारांग के ६ दोप हैं, उन में से ३ वागरणं, ४ सघारवेणे, ६ भूमालोहडं, कहां है ?

उत्तर–आचारांग के ६ दोषों में से तीसरे 'वाघायं' दोष का भाव दूसरे आचा॰के अध्य १ के ५ वें उ. के अंतिम सूत्र से

१३६४ प्रश्न—प्रश्नव्याकरण, निशीथ, उत्तराध्ययन, स्थानांग, दशाश्रुतस्कध तथा वृहत्कल्प में बताये दोषों का खुलासा व आधार बतावें ?

उत्तर—प्रश्नव्याकरण में वर्णित दोष ५ वें संवरद्वार में है।

१ 'रचियग'—(रचितकं) साधु के लिए मोदक के चूर्णादि को तपा कर फिर से मोदकादि रूप करना, यह औद्देशिक का भेद है।

२ 'पज्जवजाय'—(पर्यवजात) साधु के लिए एक पर्याय से दूसरी पर्याय में बदलना। जैसे—कुरादि ले कर करवा कर देना। यह भी औद्देशिक का ही भेद है।

३ 'सयग्गहं'—दाता की इच्छा के बिना अपने आप ग्रहण करना।

४ 'अंतो वा बहिं वा होज्ज समणट्ठयाए ठवियं'—जो आहार घर के अन्दर अथवा बाहर तैयार कर के साधु के लिए रखा हो।

५ 'मोहरं'—दाता की प्रशंसा आदि कर अधिक बोल कर प्राप्त किया हो।

निशीथ के—

१ 'ओभासिय-ओभासिय' जोर-जोर से पुकार कर अशनादि की याचना करे, ऐसा करने से आधाकर्मादि दोष कोई लगा दे, अतः निषिद्ध है। उ. ३ के प्रारंभ में ही है।

२ 'कंतार भक्त'—अटवी वासियों का भाग। उ. ६ इस

उ. में तो द्वारपाल, पशु आदि अनेकों का भाग लेना निषिद्ध है, तो यहाँ पर केवल अटवी वासियों के भाग का निषेध ही क्यों करते हैं ?

३ 'वणीमग्गपिंड, अनाहपिंड'–इनके लिए बनाया हुआ लेना निषिद्ध है। उ. ८ के अन्त में। यह दोष अन्यत्र भी बताया है।

४ 'पासत्था, ओसन्ना' आदि का आहार आदि लेना निषिद्ध है उ. १५।

५ दुर्गन्छनीय कुलों का आहार, वस्त्रादि लेना निषिद्ध है, उ. १६।

६ 'सागारियं पिंडं'–शय्यात्तर का आहारादि सूत्र ४६, 'सागारिय-णिसाणं' और उसकी दलाली के आहारादि का निषेध है, सूत्र ४६ नि उ. ३, २।

उत्तराध्ययन के–

१ 'सन्नाइ-पिंडं'– अ. १७ गाथा १६।

२ 'अकारण'–छह कारण बिना आहार करे, तो कारण दोष. अ. २६ गा. ३२–३३।

स्थानांग स्था. ६ में श्री श्रेणिक म. के वर्णन में– "पाहुण भत्ते इवा" पाठ है, दूसरे दोष वाला पाठ तो ध्यान में नहीं आया, परन्तु–'आमिप' निषेध तो अन्यत्र आचारांगादि में है ही। दशाश्रुतस्कंध के–

१–२ 'णो गुव्विणीए, णो वालवच्छाए।' अ. ७।

'अभिधान राजेन्द्र' में तो 'गुव्विणीए' का अर्थ गर्भवती के हाथ का किया है। 'जिनकल्पी और पडिमाधारी तो गर्भवती जान कर उसके हाथ का लेना छोड़ देते हैं और गच्छवासी आठवें और ९ वें महिने में लेना छोड़ देते हैं-ऐसा अर्थ किया है।

'पारियासिए'-काल प्रमाण (३ पहर) के ऊपर का तथा बासी रख कर खाने का निषिद्ध है।

नोट- स्थानांग ठा. ९, भगवती श. ५. उ. ६ तथा श. ७ उ. १ और प्रश्नव्याकरण संवरद्वार १-५ इत्यादि स्थानों में अनेक दोषों का विवरण बताया है। तथा निशीथ, आचारांग, दशाश्रुतस्कंध में भी प्रसंगोपात अनेक स्थानों पर ऐसे दोषों का उल्लेख है।

१३९५ प्रश्न- मिथ्यात्व के २५ प्रकार किस सूत्र में है?

उत्तर- मिथ्यात्व के १० से अधिक भेद एक साथ सूत्र के मूल-पाठ में देखने में नहीं आए। दस भेदों के अतिरिक्त सूत्रों के भिन्न-भिन्न स्थानों पर निम्न प्रकार से ध्यान में आए हैं-

"मिच्छत्ताभिणिवेसेहिय..." आदि पाठ भग. श. ९ उ. ३३ में है, यह "अभिनिवेश" मिथ्यात्व है।

"अकिरिया, अविणय, अण्णाणे"- ये तीन प्रकार के मिथ्यात्व और इनके भेद-प्रभेद स्था. ठा. ३ उ. ३ में बताये हैं। अनाभोग-मिथ्यात्व का समावेश ऊपर बताये हुए 'अण्णाण' मिथ्यात्व में होता है। संशय मिथ्यात्व का समावेश जो शंकादि समकित के अतिचार उपासकदशादि में बताये हैं, उसमें हो

जाता है। न्यून,अधिक और विपरीत, ये तीन भेद स्थानांग ठा. दो के प्रथम उ. में बताये हुए मिथ्यात्व-क्रिया के दो भेदों में आ जाते हैं।

"**अणभिग्गहिय कुदिट्ठी ....**" (उत्त. अ. २८) इस पर से आभिग्रहिक और अनभिग्रहिक, ये दो लिए जा सकते हैं।

"**कुप्पवयणपासंडी ....** " (उत्त. अ. २३) तथा अनुयोगद्वार कथित आवश्यक के भेदों में—लौकिक, लोकोत्तर और कुप्रावचनिक भेद आए हैं। उस पर से मिथ्यात्व के भी उपरोक्त तीन भेद बन सकते हैं।

"**अरिहंताणं आसायणाए ...**" आदि जो ३३ आसातना आवश्यक में बताई है, उससे आसायणा मिथ्यात्व निकल आता है, इत्यादि।

१३६६ प्रश्न—चतुस्पर्शी पुद्गल पकड़ में आ सकते हैं क्या? प्रकाश और छाया चतुस्पर्शी हैं या अष्ट स्पर्शी?

उत्तर—चतुस्पर्शी पुद्गल बाह्य-साधनों के द्वारा पकड़ में नहीं आते। प्रकाश और छाया अष्ट-स्पर्शी है।

१३६७ प्रश्न—यदि साधु, रजिस्ट्रेशन करावे और लाइसेन्स रखे, तो उनको कौन-सा दोष लगता है?

उत्तर—प्रथम तो साधु अपने नियमानुसार रजिस्ट्रेशन के लिए गृहस्थों को प्रार्थना-पत्र ही नहीं लिखा सकता, क्योंकि प्रार्थना-पत्र दीनता का द्योतक है। दीनता से भिक्षादि लेना भी निषिद्ध बताया है। लाइसेंस न देने पर तथा पूरी शर्तें स्वीकार न करने पर अनेक प्रकार की दौड़-धूप, खुशामद,

रिश्वत आदि का बढ़ना स्वाभाविक है। गृहस्थों को इधर-उधर भेजना, उनसे लाइसेंस मंगवाना, उनका लाया हुआ लेना, कार्ड-लिफाफे आदि रखना, कोर्टों में उपस्थित होना इत्यादि अनेक दोषों के समूह का उद्भव होना दिखाई देता है। ऐसी प्रपंचकारी अवस्था में साधु का साधुत्व ही कैसे स्थिर रह सकता है ?

किसी साधु पर किसी का विरोध पैदा होने से जाल रच कर फँसा भी सकते हैं। इससे पेशियां इत्यादि का पड़ना, गवाह आदि देना—इन सभी से परिग्रहधारी बन कर साधुत्व से हाथ धोना पड़ेगा।

लाइसेंस की निरन्तर रक्षा करने से द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव का प्रतिबंध होगा। अतः व्रत-नियम स्थिर किस प्रकार रह सकेंगे ?

खास बात तो साधु को प्रभु-आज्ञा स्वीकार करना है, लाइसेंस में तो राज्य-आज्ञा ही माननी पड़ेगी। ऐसी स्थिति में दोष तो क्या, परन्तु मूल संयम से ही वंचित रहने जैसी बात दिखाई देती है।

१३९८ प्रश्न—दो से कम साधु और तीन से कम साध्वियों के नहीं विचरने का तथा एकल-विहार के निषेध का आगमिक प्रमाण क्या है ?

उत्तर—ठाणांग सूत्र के आठवें ठाणे के प्रारम्भ के सूत्र में बताया गया है कि आठ गुणों का धारक मुनि एकल-विहार-प्रतिमा धारण करने योग्य होता है। जिसके चौथे बोल में

'बहुस्सुए' की टीका तथा अर्थ में लिखा है कि जघन्य नौवें पूर्व की तीसरी आचार-वस्तु और उत्कृष्ट असम्पूर्ण दस पूर्व का धारक हो। इस से स्पष्ट होता है कि इतने ज्ञानादि गुणों के अभाव में एकल-विहारी नहीं हो सकता। उपरोक्त गुणों के अभाव में एकल-विहार करने वाले में आचारांग सूत्र के पाँचवें अध्ययन के प्रथम उद्देश में बताये हुए "बहुकोहे बहुमाणे.,..." इत्यादि दोषों की सम्भावना है।

व्यवहार सूत्र के चतुर्थ उद्देशे के प्रारम्भ में बतलाया गया कि आचार्य, उपाध्याय अकेला न रहे, किन्तु शीत-उष्ण काल में कम से कम दो रहना कल्पता है। यह बात अलग है कि साधु तो सेवा आदि कार्य के लिए अकेला भी जा सकता है। एक साधु इस गच्छ का और एक साधु अन्य गच्छ का, इस प्रकार दो रह सकते हैं, किन्तु आचार्य, उपाध्याय तो बहुत इकट्ठे होने पर भी इस प्रकार नहीं रह सकते हैं। प्रत्येक आचार्य, उपाध्याय आत्म-द्वितीय (एक स्वयं आचार्य अथवा उपाध्याय तथा दूसरा उसी गच्छ का साधु) रह सकते हैं। व्यवहार सूत्र के पाँचवें उद्देशे में बताया है कि प्रवर्तिनी को शीतकाल उष्णकाल में तीन से कम रहना नहीं कल्पता है। आर्याओं का स्वाभाविक यही कल्प है, परन्तु सेवा आदि कार्य के लिए दो से विहार कर सकती है। अकेली को गृहस्थ के घर आहार-पानी के लिए, स्थंडिल भूमि, स्वाध्याय भूमि और ग्रामानुग्राम विहार करना नहीं कल्पता है। यह बात वृहत्कल्प के पाँचवें उद्देशे में है।

१३६६ प्रश्न–दशवैकालिक अ. ६ गाथा २३ के "एगभत्तं च भोयणं" में एगभत्तं का अर्थ एक वार का भोजन ही उचित लगता है। जब हम चतुर्थ-भक्त, छठ-भक्त आदि का अर्थ उतनी वार का भोजन करते है, तो एक-भक्त का अर्थ एक वार का भोजन ठीक ही होगा और वह दिन का तो है ही, क्योंकि रात्रि का तो सर्वथा निषेध है। यह बात उत्तराध्ययन अ. २६ गाथा ३२ के "तइयाए पोरिसीए भत्तं पाणं गवेसए" से भी एक वार की समाचारी लगती है, अतएव दशवै. अ. ६ के "एगभत्तं" का अर्थ एक वार संगत नहीं लगता है क्या ?

उत्तर–दशवैकालिक अ. ६ में जो १८ स्थान बताये गये हैं, वहां गाथा ६–७ में कहा गया है कि इन अठारह ही स्थानों का पालन बालक, वृद्ध, रोगी, निरोगी, इन सभी मुनियों को अखण्ड रूप से करना चाहिए। उनमें से किसी एक का भी भंग करता है, तो निर्ग्रन्थता से भ्रष्ट होता है। इसलिए यदि "एगभत्तं" का अर्थ एक वार ही किया जाय, तो सकारण अवस्था में अथवा आहारादि के अधिक आ जाने पर मुनि दो बार आहार कर ही नहीं सकता। यदि करता है, तो उपरोक्त गाथा के अनुसार वह निर्ग्रंथता से भ्रष्ट हो जाता है।

कल्पसूत्र की आठवीं समाचारी में नित्यभोजी के लिए साधारणतया गोचरी का एक काल बताया है। चउत्थ-चउत्थ भक्त करने वाले को न सरे तो दूसरी बार जा सकता है। छठ-छठ करने वाले के गोचरी के दो काल, अट्ठम-अट्ठम करने वाले

के गोचरी के तीन काल और विकृष्ट भक्त (अट्ठम-अट्ठम से अधिक) करने वाले के गोचरी के सभी काल बताये हैं। पारणे धारणें में यदि एक ही समय भोजन करना है, तो इतनी-इतनी बार भिक्षाचरी क्यों बताई ?

ठाणांग ठाणा ३ उ. ३ में चउत्थ, छठ आदि का शब्दार्थ करके फिर प्रवृत्ति चउत्थ का उपवास और छठ का बेला-कहा है।

भगवती का पन्द्रहवां शतक यदि एक दिन में पूरा न हो, तो दूसरे दिन आयंबिल करके पूरा करना। यदि दूसरे दिन भी पूरा न हो, तो तीसरे दिन आयंबिल छठ करके समाप्त कर देना। यह बात ४१ वें शतक की समाप्ति के बाद मूल पाठ में बताई है। इससे भी सिद्ध होता है कि बेले की छठ की संज्ञा है।

कृष्ण-वासुदेव ने देवकी के पास से जा कर पोषधशाला में अट्ठम किया। उनको पहले तो मालूम नहीं था कि कल अट्ठम करना पड़ेगा। अतः पहले दिन उनके एक भक्त भोजन कैसे हुआ होगा ? इससे भी तेले को अट्ठम की "संज्ञा" सिद्ध होती है। यदि यह कहा जाय कि उस समय एक ही समय भोजन करने की प्रणाली थी, तो उनके अट्ठम हुआ ही कैसे ? क्योंकि तीन दिन के तीन समय का भोजन छूटा है। इसी प्रकार धारणी रानी के दोहद की पूर्ति के लिए किया हुआ अभयकुमार का तेला भी समझना चाहिए।

व्यवहार सूत्र उद्देशक ६ में 'लघुमोक प्रतिमा' यदि भोजन

करके प्रारम्भ की जाय, तो चौदह भक्त से पूरा होना और बिना भोजन किये प्रारम्भ की जाय, तो सोलह भक्त से पूरा होना बताया है। इसी प्रकार 'बड़ीमोक प्रतिमा' सोलह और अठारह भक्त से पूरी हो होती है—ऐसा बताया है। भोजन कर प्रारम्भ करने से तप के दो भक्त कम हो जाते हैं और बिना भोजन किये प्रारम्भ करने से तप के दो भक्त बढ़ जाते हैं। इससे भी दिन का एक और रात्रि का एक, इस प्रकार प्रतिदिन के दो-दो भक्त हो जाते हैं—ऐसा समझा जाता है।

"भिक्खू य उग्गय वित्तिय अण-अत्थमियं संकप्पे" आदि पाठ के चार सूत्र बृहत्कल्प के पांचवें उद्देशे में हैं, वे भी अवलोकनीय हैं।

प्रथम पहर का आहार-पानी तीन पहर तक साधारणतया साधु उपयोग में ले सकते हैं। तीन पहर के उपरान्त उपयोग करे, तो चौमासी दण्ड बताया है। खास कारण से तो चौथे पहर में भी उपयोग करने की छूट बताई है। दो कोस तक आहार-पानी ले जाने का विधान है, परंतु इससे आगे ले जाने से प्रायश्चित्त आता है। यह बात बृहत्कल्प से और भगवती के "कालाइक्कंते मग्गाइक्कंते" पाठ से स्पष्ट है।

दशवैकालिक अ. ५ उ. २ की गाथा दूसरी तथा बृहत्कल्प उ. ५ का अंतिम सूत्र भी इस विषय में अवलोकनीय है।

उत्तराध्ययन अ. २६ की गाथा ३२ वीं तो साधु के लिए सामान्य रूप से कही है, किन्तु उसी के साथ इसी अध्ययन की गाथा ९ और १० तथा शेष रहा हुआ आहार दो कोस तक ले

जाया हुआ आहार एवं परिठावणिया आगार, साधु के लिए एकासन तप भी आया है, इत्यादि सभी बातों पर विचार करने से यह स्पष्ट सिद्ध हो जाता है कि दशवैकालिक सूत्र के छठे अध्ययन की ३२ वीं गाथा रात्रि-भोजन का निषेध बताने के लिए है और वहां का प्रकरण भी यही बता रहा है। इसलिए इस गाथा में आये हुए '**एगभत्तं**' का अर्थ एक समय नहीं है अपितु यहाँ रात्रि-भोजन का निषेध है।

१४०० प्रश्न– करण और योग में क्या अन्तर है?

उत्तर– 'करण' शब्द का अर्थ 'करना' है और 'योग' का अर्थ मन, वचन और काया का व्यापार है। करण के तीन भेद हैं–स्वयं करना, दूसरों से कराना और करते हुए का अनुमोदन करना अर्थात् करना-करण, कराना-करण और अनुमोदन करण। प्रत्येक करण का व्यापार मन, वचन और काया से होता है। इसलिए कार्य करने के नौ भेद बन जाते हैं।

१४०१ प्रश्न– गौतमस्वामी आनन्द श्रावक के पास आये, तब उन्हें अवधिज्ञान था, इसका क्या प्रमाण है?

उत्तर– गौतमस्वामी जब आनन्द श्रावक के यहां पधारे, उसके पूर्व ही उन्हें अवधिज्ञान हो गया था। यह बात आगमिक समालोचना से ध्यान में आती है। यथा भगवती सूत्र के प्रारंभ में ही जिस समय राजगृह नगर में श्रेणिक राजा और चेलना रानी थी, उस समय में भी गौतमस्वामी के चार ज्ञान और चौदह पूर्व बतलाये हैं। पन्द्रहवें शतक में गोशालक ने आठ चरम कहे, उसमें सातवां चरम महाशिला कण्टक संग्राम बत-

लाया है जो कि निकट भूत में ही हुआ, ऐसी सम्भावना है।
इसी शतक में भगवान् ने फरमाया है कि मैं चालू वर्ष के अतिरिक्त सोलह वर्ष और केवली-पर्याय में विचरण करूँगा।

भगवान् की केवली-पर्याय तीस वर्ष से कुछ कम था। उस समय भगवान् की केवली-पर्याय का चौदहवां वर्ष चल रहा था। कोणिक राजा था। श्रेणिक राजा की मृत्यु हो चुकी थी। तभी महाशिला कण्टक संग्राम हुआ था। जब गौतम स्वामी श्रेणिक नरेश की जीवितावस्था में ही चार ज्ञान और चौदह पूर्व युक्त थे, तो उसकी मृत्यु के बाद तो वे चार ज्ञान वाले हो, इसमें संशय को स्थान ही नहीं है। आनन्द श्रमणोपासक की घटना भगवान् के केवली-पर्याय के बीस वर्ष पूर्व की तो थी ही नहीं, क्योंकि भगवान् के केवली होने के बाद ही वे उनके पास श्रावक बने थे। उन्होंने बीस वर्ष पर्यन्त श्रावकपना पाला था। यह घटना उनके संथारे के समय की है। अतः उस समय तो गौतम स्वामी अवधिज्ञानी थे ही। हां, यह अवश्य सम्भवित है कि उस समय उन्होंने पूर्वों में तथा अवधिज्ञान आदि में उपयोग नहीं लगाया। अतः ऋजुसूत्र (वर्तमानकाल ग्राही) नय से यह कहा जा सकता है कि उस समय उन्हें अवधिज्ञान नहीं था अर्थात् उन्होंने अवधिज्ञान आदि में उपयोग नहीं लगाया था।

१४०२ प्रश्न– मरुदेवी माता अव्यवहार-राशि में से निकल कर कदली का भव करके मरुदेवी बनी ? तो संसार के सभी प्राणियों से सम्बन्ध कैसे हुए ?

उत्तर– पन्नवणा सूत्र के ३६ वें पद में बतलाया गया है कि एक-एक नरकादि चौबीस ही दण्ड के जीवों ने भूतकाल में अनन्त बार वेदनीय-समुद्घात की है। वहीं पर टीकाकार तथा टब्बाकार ने खुलासा किया है कि यह बात बहुलता की अपेक्षा कही गई है। बहुत जीव ऐसे मिलते हैं जिनको अव्यवहार राशि से निकले अनन्त काल हो गया है। थोड़े जीव ऐसे भी मिलते हैं जिनको अव्यवहार-राशि से निकले थोड़ा काल हुआ है। उनमें से किन्हीं ने संख्याती और किन्हीं ने असंख्याती वेदनीय-समुद्घात की है। किन्तु ऐसे जीव थोड़े होने से सूत्रकार ने उन्हें गौण कर दिया है। इसलिए एक जीव ने सभी जीवों के साथ अनन्त बार सम्बन्ध किये हैं—यह बात बहुलता की अपेक्षा समझना चाहिए, क्योंकि कोई-कोई जीव अव्यवहार-राशि से निकल कर थोड़े ही काल में मोक्ष चले जाते हैं, उनका सभी जीवों के साथ संबन्ध नहीं होता है। इसलिए मरुदेवी माता का सभी जीवों के साथ सम्बन्ध नहीं हुआ हो, तो शास्त्रीय वाक्य में कोई बाधा नहीं आती।

'मरुदेवी माता का जीव कदली का भव कर के फिर मरुदेवी का भव कर के मोक्ष चला गया'—यह बात शास्त्र के मूल-पाठ में तो नहीं है, किन्तु कहीं टीका में अवश्य आई है।

१४०३ प्रश्न-तीर्थंकर भगवान् सिंहासन पर विराजते हैं या अतिशय से दर्शकों को ऐसा ही दिखता है?

उत्तर–समवायांग सूत्र के चौतीसवें समवाय में तीर्थंकर भगवान् के चौतीस अतिशयों का वर्णन आया है। उनमें नौवां

अतिशय यह है-"आगासफालिहामयं सपायपीढं सीहासणं" टीका-"आकाशमिवयदत्यन्तमच्छं स्फटिकं तन्मयं सिंहासनं सहपादपीठेन सपादपीठमिति नवमः।"

अर्थात् आकाश के समान अत्यंत निर्मल स्फटिक रत्नमय पाद-पीठ सहित सिंहासन होता है। यह नौवां अतिशय है।

यहां केवल अतिशय रूप (केवल लोगों को दिखने मात्र) सिंहासन नहीं है, अपितु साक्षात् सिंहासन होता है। वह देव-कृत है। अनादि रीति के अनुसार तीर्थंकर भगवान् उस पर स्वतः विराजते हैं।

१४०४ प्रश्न-खमासणा दो बार क्यों दिया जाता है? राजा का दृष्टांत कैसे घटित होता है?

उत्तर-खमासणा के विषय में आवश्यक सूत्र के तीसरे अध्ययन में निम्नलिखित गाथाएँ आई है। यथा-

"सीसो पढम पवेसे, वंदिउमावस्सियाए पडिकम्मिउं।
बीय पवेसम्मि पुणो वंदइ किं चालणा अहवा ॥१९१॥
जह दूओ रायाणं, णमिउं कज्जंणिवेइउं पच्छा।
वीसज्जिओ वि वंदिय, गच्छइ साहू वि एमेव ॥१९२॥"

अर्थ-शंका-शिष्य प्रथम प्रवेश में आवश्यक प्रतिक्रमण करने के लिए वन्दन करता है, किन्तु दूसरे प्रवेश में वह वन्दना क्यों करता है?

समाधान-जैसे दूत राजा को नमस्कार करके कार्य निवेदन करता है और राजा से विदा होते समय फिर न

करता है। इसी प्रकार साधु भी करता है।

अर्थात् शिष्य कार्य को निवेदन करने के लिए अथवा अप-राध की क्षमा याचना करने के लिए प्रथम वन्दन करता है (खमासण देता है)। जब गुरु महाराज क्षमा प्रदान कर देते हैं, तब फिर शिष्य वन्दना करके (खमासणा देकर) वापिस लौट जाता है।

१४०५ प्रश्न–'**कयबलिकम्मे**' किसे कहते हैं ?

उत्तर–जहाँ विशद रूप में स्नान का वर्णन हो, वहाँ '**कयबलिकम्मे**" का प्रयोग नहीं किया गया। जहाँ संक्षिप्त रूप में स्नान वर्णन है, वहाँ स्नान सम्बन्धी सभी कार्यों के निरूपक के रूप में इस शब्द का प्रयोग किया गया है। यह बात जंबूद्वीपप्रज्ञप्ति के भरत अधिकार को देखने से स्पष्ट होती है।

१४०६ प्रश्न–मृगापुत्रजी जिनकल्पी थे या स्थविरकल्पी ?

उत्तर–किसी बाह्य वस्तु को देख कर जिन्हें बोध होता है, वे 'प्रत्येक-बुद्ध' कहलाते हैं। नियमानुसार प्रत्येक-बुद्ध पिछले मनुष्य-भव में जघन्य ११ अंग तथा उत्कृष्ट किंचित् न्यून १० पूर्व के धारक होते ही हैं। प्रत्येक-बुद्ध को स्थिति प्राप्त होने पर जातिस्मरण ज्ञान के द्वारा पूर्व अभ्यस्त ज्ञान स्मृति में आ जाता है। अतः वे स्वयं ज्ञानी होने से स्वयं दीक्षा अंगीकार कर लेते हैं। दीक्षित अवस्था में में जघन्य रूप में रजोहरण और मुख-वस्त्रिका–ये दो और उत्कृष्ट पात्र-नियोग युक्त नौ उपधि के धारक तथा '**प्रावरणवर्जः**' होते हैं। प्रावरण वर्ज का तात्पर्य

यह है कि वे ओढ़ने-पहनने आदि के वस्त्र नहीं रखते हैं। तथा वे नियमतः आजीवन जिनकल्पीवत् एकाकी ही विचरण करते हैं।

ठाणांग के प्रथम ठाणे की और पन्नवणा के प्रथम पद की टीका में प्रत्येक-बुद्ध सम्बन्धित वर्णन है।

मृगापुत्रजी भी मुनि को देख कर बोध पाये, इसलिए नियमतः वे प्रत्येक-बुद्ध ही थे। अतः वे दीक्षित होने पर जिनकल्पी रहे और बाद में कल्पातीत अवस्था को प्राप्त हुए।

१४०७ प्रश्न–मृगापुत्रजी किस समय हुए थे?

उत्तर–"सामण्णं च पुराकयं" ९ "सुयाणि मे पंच महव्वयाणि" ११ "देवलोगचुओ संतो......" ८ "पंचमहव्वयजुत्तो...... ८९" इत्यादि शास्त्रीय पदों से यह प्रमाणित है कि मृगापुत्रजी के जीव ने पिछले मनुष्य-भव में पंच महाव्रत रूप संयम का आराधन किया, फिर देव-भव पूर्ण कर के मृगापुत्रजी हुए। इस भव में भी उन्होंने पाँच महाव्रत रूप संयम का पालन किया। इसका फलितार्थ यह है कि मृगापुत्रजी भगवान् ऋषभदेव के शासन में हुए। क्योंकि पंच महाव्रत रूप संयम-पालन का इतना लम्बा शासन-काल अन्य किसी तीर्थंकर का इस अवसर्पिणी काल में नहीं रहा।

१४०८ प्रश्न–साधु के लिए औषधी-सेवन उत्सर्ग-मार्ग है या अपवाद-मार्ग?

उत्तर–औषधी-सेवन अपवाद-मार्ग है।

१४०९ प्रश्न–कायोत्सर्ग और ध्यान किसे कहते हैं?

उत्तर–काया के ममत्व से दृष्टि हटा कर और उसके व्या-पार को छोड़ कर अंतरंग आत्मा सम्बन्धी शुभ-चिन्तन करने रूप क्रिया को कायोत्सर्ग कहते हैं।

चित्त की एकाग्रता को ध्यान कहते हैं। यदि एकाग्रता शुभ की ओर हो, तो शुभ-ध्यान और अशुभ की ओर हो तो अशुभ-ध्यान माना जाता है।

१४१० प्रश्न– शेष काल में साधु-साध्वी को कितनी बार नदी पार करना कल्पता है? अधिक पानी वाली नदी में उतरने से अधिक प्रायश्चित्त आता है? घुटने तक पानी वाली ५० कदम नदी उतरने का क्या प्रायश्चित्त है?

उत्तर– यदि कोई दूसरा रास्ता हो, तब तो नदी में उतरने से बचना चाहिए। यदि प्रयत्न करते हुए भी दूसरा रास्ता नहीं हो, तो यतनापूर्वक एक महीने में दो और एक वर्ष में ९ से अधिक बार नहीं उतरना चाहिए। इसके प्रायश्चित्त भिन्न-भिन्न हैं। पानी में यदि फूलण जैसी स्थिति हो, तो अधिक प्रायश्चित्त आता है। अन्य मार्ग के अभाव में जो साधु यतनापूर्वक ५० कदम, घुटने तक पानी वाली नदी उतरा हो, तो २५ उप-वास का प्रायश्चित्त बताया है।

१४११ प्रश्न– पन्नवणा पद १ में जाति-आर्य के छह भेद– "**अंबट्ठा, कलंदा, वेदेहा, वेदगातिता, हरित और चंचुण**" बताये हैं। इनका अर्थ क्या है?

उत्तर– मातृ-पक्ष को जाति कहते हैं। जाति से जो आर्य–निर्दोष हो, उनको 'जाति-आर्य' कहते हैं अर्थात् जिनका मातृ-

पक्ष निर्मल हो, वे जाति-आर्य कहलाते है। जिनके अंबष्ठादि छह भेद हैं। इन भेदों के भिन्न-भिन्न अर्थ टीकाकार ने नहीं दिये हैं। कोशकार ने 'जाति विशेष' ऐसा अर्थ किया है। अतः छह ही भेदों का अर्थ निर्मल मातृ-पक्ष वाले समझना चाहिए।

१४१२ प्रश्न—सोपक्रम आयु का सात कारणों से टूटना स्थानांग ठा. ७ में बताया है, सो कितना टूटता है ? कोई कहते हैं कि छह महीने से अधिक नहीं टूटता, सो कैसे ?

उत्तर—सोपक्रम आयु वालों की करोड़ पूर्व से अधिक आयु नहीं होती। जिस सोपक्रम आयु वाले जीव की जितनी आयु हो, उसमें से अधिक से अधिक एक तिहाई भाग की आयु पर-भव का आयुष्य बंधने के बाद टूट सकती है, अधिक नहीं।

सोपक्रम आयु वाला जीव, पर-भव आयुष्य का बंध तीसरे, नौवें, सत्ताईसवें भागादि में बांधता है, परन्तु पहले के दो॰ तिहाई भागों में कोई भी पर-भवायु नहीं बांधता। यह बात पन्नवणा के छठे पद में बताई है। यह भी स्पष्ट है कि पर-भव का आयु बांधे बिना कोई भी संसारी जीव मरता नहीं है। इस पर से अनेक आचार्यों का मत है कि आयु बंध के बाद एक तिहाई भाग की आयु टूट सकती है।

भगवती श. १ उ. ८ में प्रहार-हेतुक मरण में जो छह मास तक का व्यवहार नय से बताया है, इस पर से कोई आचार्य छह मास से अधिक आयु टूटना नहीं मानते हैं, परन्तु इस व्यवहार नय के कथन से छह मास से अधिक आयु टूटने का

निषेध बराबर सिद्ध नहीं हो सकता है।

सूत्रकृतांग अ. २ की दूसरी गाथा की टीका में टीकाकार कहते हैं कि कोई जीव तीन पल्योपम की आयु पा कर भी पर्याप्ति के पश्चात् अंतर्मुहूर्त में ही अपने जीवन को छोड़ देता है, परन्तु यह बात सूत्र से मेल नहीं खाती।

उपरोक्त तीन मान्यताओं में आयु-बंध के बाद एक तिहाई भाग के आयु टूटने की मान्यता अधिक प्रचलित है।

१४१३ प्रश्न– वाणव्यंतर और ज्योतिषी देवों के लोकपाल तथा त्रायस्त्रिंशक क्यों नहीं होते ?

उत्तर- प्रश्न कथित दोनों देव अल्प ऋद्धि वाले हैं, अतः इनके लोकपाल और त्रायस्त्रिंशक नहीं होते हैं।

१४१४ प्रश्न– लोकान्तिक देवों में दृष्टि कितनी होती है ?

उत्तर– लोकांतिक विमानों के मुख्य देवों में तो एक सम्यग् दृष्टि होने का सम्भव है और अन्य आभियोगिकादि देवों की अपेक्षा अन्य दृष्टि भी मिल सकती है।

शंका– लोकांतिक विमानों के मुख्य देवों में आपने सम्यग् दृष्टि होने का संभव बताया, परन्तु अनुत्तर विमानों के देवों को छोड़ कर सभी स्थानों पर जीव 'अणंतखुत्तो' कहा, जो कैसे समझा जाय ?

समाधान– लोकांतिक देव पांचवें देवलोक के अन्तर्गत है। अतः समुच्चय पांचवें देवलोक की अपेक्षा तो 'अणंतखुत्तो' बैठ सकता है, परन्तु निःकेवल लोकांतिक देवों की अपेक्षा "अणंतखुत्तो" नहीं बैठता, क्योंकि भगवती श. ६ उ. ५ में

सभी जीव लोकांतिक विमानों में देवपने उत्पन्न नहीं होने का ही बताया है। इसलिए लोकांतिक विमानों के मुख्य देवों में एक सम्यग्दृष्टि होने का ही संभव है।

१४१५ प्रश्न– समकित में मनुष्य का आयुष्य कैसे बांधते हैं ?

उत्तर– नैरयिक और देव तो समकित में मनुष्य आयु के अतिरिक्त कोई दूसरा आयुष्य नहीं बांधते हैं और मनुष्य और तिर्यंच समकित में वैमानिक के अतिरिक्त कोई दूसरी आयुष्य नहीं बांधते हैं।

१४१६ प्रश्न–नंदीश्वर द्वीप का क्रमानुसार कौनसा स्थान है ?

उत्तर– केवल द्वीपों को गिनने से नन्दीश्वर द्वीप आठवां और द्वीप-समुद्र दोनों को गिनने से १५ वां द्वीप होता है।

१४१७ प्रश्न– कालोदधी समुद्र का पानी कैसा है ?

उत्तर– कालोदधी, पुष्कर समुद्र और स्वयंभूरमण समुद्र, इन तीनों समुद्रों के पानी का रस स्वभाव से ही पानी जैसा है।

१४१८ प्रश्न– सलीलावती विजय किस महाविदेह क्षेत्र में है ?

उत्तर– सलीलावती नामक विजय पांचों ही महाविदेह में पश्चिम की ओर आई हुई है। परन्तु हजार योजन की गहरी तो जंबूद्वीप के महाविदेह में ही है, अन्य में नहीं।

१४१९ प्रश्न– मेतारज मुनि का नाम साधु-वन्दना में नहीं है, सो क्या कारण ?

उत्तर– मेतारज गणधर के अतिरिक्त अन्य मेतारज मुनि

का नाम साधु-वन्दना में नहीं दिया, इसका कारण मेरे ध्यान में नहीं है।

१४२० प्रश्न– असोच्चा-केवली किसे कहते हैं ?

उत्तर– उस भव में किसी दूसरों के पास धर्म का स्वरूप सुने बिना ही स्वयं धर्म का स्वरूप समझ कर केवलज्ञान प्राप्त करने वालों को 'असोच्चा-केवली' कहते हैं।

१४२१ प्रश्न– पूज्य धर्मदासजी म. किस संवत् में हुए ? उन्होंने अकारण संथारा क्यों किया ?

उत्तर– पूज्य धर्मदासजी म. का जन्म वि. सं. १७०३ आश्विन शु. ११ को हुआ था। सं. १७१६ आश्विन शु. ११ को दीक्षा हुई। आचार्य पद सं. १७२१ माघ शु. ५ (वसंत-पंचमी) को दिया गया। दूसरा साधु संथारे में डिगने से उसके स्थान पर स्वयं पूज्य श्री ने संथारा किया, जो नौ दिन तक रहा। सं. १७५८ फाल्गुन शु. १ को स्वर्गवास सिधारे। भगवान् के ६२ वें पाट एवं एकाभव अवतारी हुए, ऐसा पढ़ने में आया है।

१४२२ प्रश्न– साधु टार्च रख सकते हैं ?

उत्तर– साधु के लिए टार्च रखना नहीं कल्पता है और उसका उपयोग करना भी वर्जित है।

१४२३ प्रश्न– लोहे की टिमची पर मटकी में पानी रखना साधु को कल्पता है ?

उत्तर– लोहे तथा लकड़ी आदि की टिमची पर साधु को पानी की मटकी आदि नहीं रखना चाहिए, क्योंकि पानी की

बून्दें ऊपर से गिरने के कारण अयत्ना होती है। अतः साधु को नहीं रखना चाहिए।

१४२४ प्रश्न—क्या साधु यह कह सकते हैं कि मुंह पर मुख-वस्त्रिका बांधने से कोई लाभ नहीं ?

उत्तर—मुखवस्त्रिका बांधने से कोई लाभ नहीं—ऐसा बोलना सूत्र-विरुद्ध है। अतः धर्मी पुरुषों को ऐसा नहीं बोलना चाहिए।

१४२५ प्रश्न—कमरे में अकेला साधु हो, बाहर भाई बैठे हैं, ऐसी स्थिति में अकेली बहिन के साथ साधु बैठ सकता है ?

उत्तर—साधु अपने पास बिना भाइयों के बहिनों को न बैठने दे, यही कल्पानुसार है।

१४२६ प्रश्न—गृहस्थ को साधु, किसी संस्था को आभूषणादि देने का कह सकता है ?

उत्तर—गृहस्थ को धन-भूषण आदि संस्था आदि को देने का साधु कुछ न कहे। इन प्रपंचों में साधु को नहीं पड़ना चाहिए।

१४२७ प्रश्न—फाउन्टेन पेन रखना और अपने हाथ से गृहस्थ को पत्र लिखना साधु को कल्पता है ?

उत्तर—साधु को न तो कार्ड-लिफाफे लिखना कल्पता है और न रखना ही। इसी प्रकार फाउन्टेन पेन भी नहीं रखना चाहिए। स्याही में फूलन की शंका के कारण उससे लिखना भी नहीं चाहिए।

१४२८ प्रश्न—मूल-सूत्र की परिभाषा क्या है ? 'मूल'

है। उसकी टीका में बताया है कि तप से निकाचित कर्म क्षय होते हैं, परन्तु वहाँ भी तप के द्वारा कष्ट सहन कर के उन कर्मों को क्षय करना लिखा है। किन्तु उदीरणा आदि नहीं समझना चाहिए।

१४३० प्रश्न–"**अट्ठजुत्ताणि सिक्खिज्जा, णिरट्ठाणि उ वज्जए**" यहाँ अर्थयुक्त का क्या प्रयोजन है? यदि स्वशास्त्र ही लिया जाय, तो फिर संस्कृत आदि अन्य विषयों का अध्ययन किस आधार से किया जाता है?

उत्तर–"**अट्ठजुत्ताणि सिक्खिज्जा**" यहाँ पर अर्थ युक्त का अर्थ स्वशास्त्र ही लेना चाहिए। "**णिरट्ठाणि उ वज्जए**" में निरर्थक का अर्थ–मोक्षमार्ग से विपरीत काम-शास्त्र आदि का वर्जन करना, लेना चाहिए। व्याकरण, गणित आदि का सीखना भी यदि मोक्षमार्ग प्रतिपादक एवं वीतराग प्ररूपित शास्त्रों में गति करने के लिए हो, तो वह उस उद्देश्य की पूर्ति में सहायक है। यदि वे अन्य उद्देश्य की सिद्धि के लिए सीखे जाते हों, तो वे निरर्थक की गिनती में आवेंगे। उस दृष्टि से सीखना सर्वथा वर्जित है।

१४३१ प्रश्न–अनुयोगद्वार सूत्र के समास आदि वर्णन में जहाँ-कहीं संस्कृत शब्दों का प्रयोग बिना कोष्टक के हुआ है, सो वह मूल-सूत्र परम्परा है या क्षेपक है अथवा उसे मुद्रण की अशुद्धि समझना?

उत्तर–अनुयोगद्वार सूत्र के समास आदि वर्णन संस्कृत शब्दों का प्रयोग बिना कोष्टक के हुआ है,

आरम्भादि असंयम तथा प्रमाद में प्रीति को 'रति' और संयम, तप आदि में अप्रीति को 'अरति' कहते हैं।

ऐसे तो सामान्य रूप से क्रोध और मान दोनों द्वेष के ही भेद हैं। विशेष रूप से नाराजगी को 'द्वेष' और कोप को 'क्रोध' कहते हैं।

१४३७ प्रश्न—नव तत्त्व में जानने योग्य तीन, आदरने योग्य तीन और छोड़ने योग्य तीन—ऐसा श्री विनयचंद चोवीसी के २१ वें तीर्थंकर की प्रार्थना में है। इसके लिए कोई प्राचीन आधार है क्या? एक टीका में प्राचीन गाथा इस प्रकार है—

"हेया बन्धाऽसवपुन्नपावा, जीवाऽजीवाय हुंति विन्नेया,
संवर निज्जर मुक्खो, तिण्णि वि एओ उवावेया।" इस प्रकार का आधार प्रत्येक तीन के लिए भी है?

उत्तर—वैसे तो नो ही तत्त्व जानने योग्य हैं ही, परन्तु जानकर इनमें से ज्ञेय, हेय और उपादेय की सीमा में रहने वाले के भेद श्री टीकमदासजी म. कृत चौवीस ठाणा (नो तत्त्व का जाणपणा) में चौवीस द्वार हैं, उनमें से चौवीसमां द्वार हेय, ज्ञेय और उपादेय का है। उसमें कई अपेक्षाओं से कई प्रकार का विभाजन किया है, जिसमें प्रश्न-कथित गाथा का भाव तथा श्री विनयचंद चोवीसी में प्रदर्शित भाव निकलते हैं।

उत्तराध्ययन सूत्र के अठाईसवें अ. की १४ वीं गाथा इस प्रकार है—

"जीवाजीवा य बंधो य, पुण्णं पावाऽसवो तहा।
संवरो णिज्जरा मोक्खो, संतेए तहिया णव ॥१४॥"

जीव ऋजुश्रेणी से ही गति करते हैं, अतः रास्ते में उपरोक्त देवलोक आते हैं।

१४३५ प्रश्न–तेतीस आशातना में "**सदेवमणुआसुरस्स लोगस्स आसायणाए**" का क्या आशय है? काल आशातना कसे लगती है?

उत्तर–देव, मनुष्य, असुरादि सहित जो लोक है, उसकी आशातना इस प्रकार होती है। लोक के सम्बन्ध में झूठी प्ररूपणा करना, जैसे–यह लोक देव का बनाया हुआ है, ब्रह्मा का बनाया हुआ है, ईश्वर का बनाया हुआ है, सात द्वीप, सात समुद्र पर्यन्त ही लोक है, इत्यादि रूप से लोक के विषय में विपरीत प्ररूपणा करना लोक आशातना है।

वर्तना लक्षण रूप काल है–बाल, तरुण, वृद्ध आदि अवस्थाएँ कालकृत हैं। यदि काल न हो, तो द्रव्य में रूपांतर ही कैसे हो सकता है–ऐसे काल को न मानना काल-आशातना है। धार्मिक पुरुषार्थ न करते हुए काल के ऊपर दूषण देना जैसे कि 'यह पंचम काल है, हम धर्म करणी कैसे करें,' इत्यादि रूप से कह कर अपनी प्रवृत्ति को न सुधारते हुए काल पर दूषण देना, काल की आशातना है।

१४३६ प्रश्न–अठारह पाप में राग-द्वेष और रति-अरति में क्या अन्तर है? द्वेष और क्रोध में क्या अन्तर है?

उत्तर–मनोज्ञ–सुत-बांधवादि पर स्नेह–आसक्ति होना राग और अमनोज्ञ–शत्रु आदि पर नाराजगी होना द्वेष है।

आरम्भादि असंयम तथा प्रमाद में प्रीति को 'रति' और संयम, तप आदि में अप्रीति को 'अरति' कहते हैं।

ऐसे तो सामान्य रूप से क्रोध और मान दोनों द्वेष के ही भेद हैं। विशेष रूप से नाराजगी को 'द्वेष' और कोप को 'क्रोध' कहते हैं।

१४३७ प्रश्न–नव तत्त्व में जानने योग्य तीन, आदरने योग्य तीन और छोड़ने योग्य तीन–ऐसा श्री विनयचंद चोवीसी के २१ वें तीर्थंकर की प्रार्थना में है। इसके लिए कोई प्राचीन आधार है क्या? एक टीका में प्राचीन गाथा इस प्रकार है–
"हेया बन्धाऽसवपुन्नपावा, जीवाऽजीवाय हुंति विन्नेया,
संवर निज्जर मुक्खो, तिण्णि वि एओ उवावेया।" इस प्रकार का आधार प्रत्येक तीन के लिए भी है?

उत्तर–वैसे तो नो ही तत्त्व जानने योग्य हैं ही, परन्तु जान-कर इनमें से ज्ञेय, हेय और उपादेय की सीमा में रहने वाले के भेद श्री टीकमदासजी म. कृत चोवीस ठाणा (नो तत्त्व का जाणपणा) में चोवीस द्वार हैं, उनमें से चोवीसमां द्वार हेय, ज्ञेय और उपादेय का है। उसमें कई अपेक्षाओं से कई प्रकार का विभाजन किया है, जिसमें प्रश्न-कथित गाथा का भाव तथा श्री विनयचंद चोवीसी में प्रदर्शित भाव निकलते हैं।

उत्तराध्ययन सूत्र के अठाईसवें अ. की १४ वीं गाथा इस प्रकार है–

"जीवाजीवा य बंधो य, पुण्णं पावाऽसवो तहा।
संवरो णिज्जरा मोक्खो, संतेए तहिया णव ॥१४॥"

इस गाथा में बतलाये हुए क्रम से तीन-तीन ज्ञेय, हेय और उपादेय हैं, ऐसा पूर्वजों से सुना हुआ है।

समकित छप्पनी गाथा ६ से १२ तक में उपरोक्त गाथा के अनुसार ज्ञेय, हेय, उपादेय बताया है। संभव है इसी गाथा पर से बताया हो।

१४३८ प्रश्न—आत्मा के आठ रुचक-प्रदेश १ से लेकर ६ तथा ८ आकाश-प्रदेश पर रह सकते हैं, परन्तु ७ पर नहीं रहते, क्या यह ठीक है ?

उत्तर—जीव के आठ रुचक-प्रदेश एक से लेकर ६ और ८ आकाश प्रदेश पर रह सकते हैं, किन्तु ७ पर नहीं रह सकते, यह ठीक है। यह बात भगवती शतक २५ उ. ४ के अन्तिम मूल-पाठ में बतलाई गई है। टीकाकार ने इसकी टीका में सात आकाश-प्रदेश पर नहीं रह सकने का कारण यह बतलाया है कि वस्तु-स्वभाव ही ऐसा है।

१४३९ प्रश्न—क्या यह भी मान्यता है कि—" ११ वें गुणस्थान तक छद्मस्थ है, बारहवां गुणस्थान अकेवली है—छद्मस्थ नहीं।" क्या कारण है ?

उत्तर—बारहवें गुणस्थान तक छद्मस्थ माने गये हैं। छद्मस्थ शब्द का अर्थ यह है—" छद्मतीति छद्म। छादयति ज्ञानादिकगुणमात्मन इति छद्म। छद्मनिज्ञानदर्शनावरणमोहनीयान्तरायात्मके तिष्ठतीति छद्मस्थः।" इन चारों कर्मों के आवरण में रहने वाले दसवें गुणस्थान तक के जीव हैं और ज्ञानावरण, दर्शनावरण तथा अन्तराय, इन

तीन कर्मों के आवरण में रहने वाले ग्यारहवें, बारहवें गुणस्थान वर्ती जीव हैं। वे सभी छद्मस्थ हैं।

ठाणांग, पन्नवणा, भगवती आदि में विशिष्ट अवधि आदि रहित को भी छद्मस्थ बतलाया है। उस व्याख्या से अवधि-ज्ञानी वैमानिक देवों को तथा मनुष्यों को छद्मस्थ से भिन्न भी बतलाये हैं। इस व्याख्या में तो चतुर्थ गुणस्थानवर्ती आदि भी ले लिये गये हैं, परन्तु साधारण रूप से छद्मस्थ की व्याख्या बारहवें गुणस्थान तक के जीवों के लिए है।

१४४० प्रश्न—आठवें गुणस्थान में जो श्रेणी मांडते हैं, वे शुक्ल-ध्यान के प्रथम द्वितीय पाद में उपयोगवन्त होते हैं। वे छठे-सातवें गुणस्थान की तरह ईर्यासमिति में उपयोग रखें, यह कैसे हो सकता है? हां, उनसे ईर्यासमिति का पालन होता रहता है, यह बात दूसरी है, किन्तु वे उस ओर ध्यान दें, तो उस स्थिति पर पहुँचना ही कठिन हो जाय। सातवें गुण-स्थान के बाद तो अन्तर्मुखी दृष्टि, ध्यान की स्थिरता और उत्तरोत्तर वृद्धि ही सम्भव है। अतः उनका उपयोग ईर्या आदि में रहने का सम्भव नहीं होगा?

बाह्य रूप से कल्प में रहे हुए भी सातवें गुणस्थान से आगे बढ़ने वाले का उपयोग कल्प की क्रियाओं में नहीं रह कर अन्तर्परिणमन होना ही सम्भव है। यह स्थिति अपूर्व होती है। इसीलिए आठवें गुणस्थान को अपूर्वकरण भी कहते हैं। यहां आत्म-परिणति ऐसी होती है जो छठे-सातवें में नहीं होती। उपयोग की धारा कल्प की क्रियाओं में रहे तब तक सातवें से

आगे बढ़ना असंभव होता है।

यह भी जानना है कि शुक्ल-ध्यान की चार अनुप्रेक्षा है, वे बारह भावनाओं में से चार भावना कौन-सी है ?

उत्तर–दसवें, ग्यारहवें, बारहवें गुणस्थानवर्ती जीवों के चलने में ईर्या में उपयोग सम्बन्धी प्रश्न के उत्तर में लिखना है कि भगवती श. १८ उ. ८ का प्रथम सूत्र और श. ७ उ. ७ का प्रथम सूत्र, ये दोनों ही अवलोकनीय हैं। इन से यह स्पष्ट है कि उनका ईर्या में उपयोग होता है। जैसे कि–

"**भावियप्पणो पुरओ दुहओ जुगमायाए पेहाए रीयं रीयमाणस्स**.........." तथा " **संवुडस्स णं भंते ! अणगारस्स आउत्तं गच्छमाणस्स**।"

यहां ईर्यापथिक क्रिया बतलाई है। अतः वे वीतरागी ही समझने चाहिए। जब कि ग्यारहवें और बारहवें गुणस्थानवर्ती जीवों के ईर्या में एवं बैठने-सोने आदि में उपयोग युक्तता बतलाई है, तब आठवें, नौवें, दसवें गुणस्थानवर्ती जीवों के ईर्या आदि में उपयोग हो, इसमें बाधा ही क्या है ? इन अन्तर्मुखी जीवों के हलन-चलन आदि क्रियाएँ करते हुए भी अन्तर्मुखीपने में बाधा नहीं आती है, बल्कि ये क्रियाएँ उनके अन्तर्मुखीपने में ही गिनी जाती है।

भगवती श. ८ उ. ८ में जो परीषहों का वर्णन दिया है, उसका पूर्ण अवलोकन करने से भी आठवें, नौवें आदि गुणस्थानों में क्षुधा, पिपासा, शीत, उष्ण, दंशमसक, चर्या, शय्या, वध, रोग, तृण-स्पर्श आदि परीषहों का अनुभव होना स्पष्ट सिद्ध

होता है। 'चर्या' चलने में उपयोग रहता है, तभी तो उनके चर्या-परीषह का अनुभव होता है। इसी प्रकार अन्य परीषहों का अनुभव भी यथा-प्रसंग होता है। अन्तर्मुखी होते हुए भी कर्म के उदय से क्षुधा आदि का अनुभव होना स्वाभाविक है।

आठवें-नौवें गुणस्थान में कल्पातीत के अतिरिक्त भी मुनि होते हैं। यह बात भगवती श. २५ उ. ७ से स्पष्ट है।

छठे गुणस्थान की अपेक्षा आठवें-नौवें गुणस्थानवर्ती जीवों का ईर्या आदि में उपयोग विशेष रूप से रहता है। क्योंकि वहां की अवस्था अपूर्व है। इसलिए वे जिस कार्य में प्रवृत्ति करते हैं, उस कार्य में तन्मय हो जाते है। कल्पातीत का यह अर्थ नहीं है कि उनका लक्ष्य संयम की विधि में न रहे, किन्तु उनका लक्ष्य तो संयम की विधि में विशेष रूप से रहता है। हां, वे विशेषज्ञ या सर्वज्ञ होने के कारण आगामी कार्य का फलाफल एवं लाभालाभ पहले सोच लेते हैं और तदनुसार प्रवृत्ति करते हैं। जैसे भगवान् अरिष्टनेमि ने गजसुकुमाल मुनि को उसी दिन भिक्षु-प्रतिमा के लिए आज्ञा दे दी। प्रभु महावीर ने ग्यारह अंग के पाठी खंधकजी को भिक्षु-प्रतिमा की आज्ञा दे दी। किंतु कल्प वाले ऐसी आज्ञा नहीं दे सकते।

बारह भावना मुख्य रूप से धर्म-ध्यान की है। यदि शुक्ल ध्यान की चार अनुप्रेक्षाओं का विचार किया जाय, तो १ अनंतवत्तियाणुप्पेहा का समावेश लोक-स्वरूप भावना में २ विप्परिणामाणुप्पेहा का समावेश अनित्य भावना में ३ असुभाणुप्पेहा का समावेश अशुचि भावना में और ४ अवायाणुप्पेहा का

समावेश आश्रव भावना में संभवित होता है।

१४४१ प्रश्न–'कुटुम्ब-जागरणा' किसे कहते हैं? यदि शब्द से ही कुटुम्ब-जागरणा का अर्थ लिया जाय, तो 'बहुपुत्रिया' देवी के पहले भव में सन्तान नहीं थी। वहां 'कुटुम्ब-जागरणा' पाठ आया है, उसका क्या अर्थ लेना चाहिए?

उत्तर–'कुटुम्ब' शब्द इन अर्थों में आता है–पोष्यवर्ग, बांधव, संतति और स्वजन वर्ग। इन सभी की अथवा इनमें से किसी एक की भी उत्पत्ति सम्बन्धी, पालन-पोषण सम्बन्धी, विवाह सम्बन्धी, आरोग्यता सम्बन्धी विचारणा करना 'कुटुम्ब-जागरणा' कहलाती है। बहुपुत्रिका ने पिछले भव में सन्तान उत्पन्न होने सम्बन्धी विचारणा की थी, वह कुटुम्ब-जागरणा में समाविष्ट होती है।

१४४२ प्रश्न–जो तंदुल नाम के मच्छ होते हैं, वे सभी सातवीं नरक में ही जाते हैं?

उत्तर–तन्दुल नाम का मत्स्य सातवीं नरक में ही जाता है–ऐसा एकान्त नियम नहीं है। वह पहली नरक से सातवीं नरक तक जा सकता है, इसके सिवाय सभी तिर्यंचों में, मनुष्य में और देवों में आठवें देवलोक तक जा सकता है अर्थात् तन्दुल मत्स्य अपने परिणामानुसार चारों गतियों में जा सकता है।

१४४३ प्रश्न–शास्त्रों में दीक्षा लेते समय पंचमुष्टि लोच का उल्लेख मिलता है। इस युग में अपने-आप क्यों नहीं करते हैं? यदि ऐसा समझें कि अपने-आप अभ्यास या शक्ति नहीं है, तो फिर दीक्षा लेने के बाद तो स्वयं करना ही पड़ता है,

तो पहले अपने आप क्यों नहीं करते हैं ? दीक्षार्थी के बाल नाई से कटवाने का उल्लेख कब से प्रारम्भ हुआ ?

उत्तर–दीक्षार्थी के केश, नाई से कटवाने की प्रणाली प्राचीन है, नई नहीं है, भगवती श. ९ उ. ३३ में जमाली क्षत्रियकुमार का वर्णन आता है। वहां माता-पिता के पूछने पर जमाली ने कुत्तियावण से रजोहरण आदि लाने का और नाई को बुलाने का कहा है। तदनुसार पिता ने नाई को बुलाया और नाई ने **परेणजत्तेणं चउरंगुलवज्जे णिक्खमणपाओगे अग्गकेसे कप्पेइ.......** पूर्ण सावधानी के साथ चार अंगुल छोड़ कर निष्क्रमण योग्य अग्रकेश काटे।

जमाली के पाठ की भलामण कई स्थानों पर लगती है। शेष रहे हुए केशों का पंच-मुष्टि लोच तो जमालीकुमार ने स्वयमेव किया है–ऐसा वर्णन आगे वहीं पर है।

इस प्रकार कई तो स्वयमेव पंच-मुष्टि लोच कर लेते थे। कई कहते थे कि–हे भगवन् ! आप ही मेरा लोच करो। जैसे भगवती सूत्र श. २ उ. १ में खन्दकजी ने भगवान् महावीर स्वामी से कहा है– "**तं इच्छामि णं देवाणुप्पिया ! सयमेव पव्वाविअं सयमेव मुंडाविअं........**" इत्यादि। उनकी प्रार्थना पर भगवान् ने ऐसा ही किया है अर्थात् उनका लोच किया है।

इसी प्रकार ठाणांग ठा. ३ के उद्देशक ४ में तथा बृहत्कल्प उ. ४ में भी मुण्डित करने आदि का अधिकार आता है। इस प्रकार परतः लोच करने का वर्णन भी आता है। अतः दीक्षार्थी

स्वयमेव लोच न करे, तो भी कोई बाधा नहीं आती।

१४४४ प्रश्न-पानी के अन्दर सात बोलों की नियमा बताई है, तो तमस्काय में भी मिलते हैं क्या ?

उत्तर-तिर्च्छा लोक की सीमा तक आई हुई तमस्काय में तो बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चौरिन्द्रिय और पचेन्द्रिय जीव हो सकते हैं, किन्तु जो तमस्काय ऊर्ध्व लोक में चली गई है उसमें तो उपरोक्त जीव नहीं मिलते हैं। अप्काय और तदाश्रित वनस्पतिकाय तो है ही। देवलोकों की बावड़ियों तथा घनोदधियों में भी बेइन्द्रियादि जीव नहीं मिलते हैं।

१४४५ प्रश्न-अठाईस प्रकार की लब्धियों के अर्थ सहित नाम क्या हैं ?

उत्तर-शास्त्रकारों ने २८ प्रकार की लब्धियां इस प्रकार बतलाई हैं-

"आमोसहि विप्पोसहि खेलोसहि जल्ल ओसहि चेव।
सव्वोसहि संभिन्ने ओही रिउ विउलमइ लद्धी॥
चारण आसीविस केवलिय गणहारिणो य पुव्वधरा।
अरहंत चक्कवट्टी बलदेवा वासुदेवा य॥
खीर महु सप्पि आसव कोट्ठय बुद्धि पयाणुसारी य।
तह वीयवुद्धि तेयग आहारग सीय लेसा य॥
वेउव्वि देह लद्धी अक्खीण महाणसी पुलाया य।
परिणाम तव वसेणं एमाई हुंति लद्धीओ॥

अर्थ-आमर्सोषधि लब्धि, विप्रडोषधि, खेलौषधि, जल्लो-

षधि, जल्लोषधि, सर्वोषधि, सम्भिन्नश्रोत, अवधि, ऋजुमति, विपुलमति, चारण, आशीविष, केवली, गणधर, पूर्वधर, अर्हल्लब्धि, चक्रवर्ती, बलदेव, वासुदेव, क्षीरमधु सर्पिराश्रव, कोष्ठक, पदानुसारी, बीज-बुद्धि, तेजो-लेश्या, आहारक, शीत-लेश्या, वैकुर्विक देह, अक्षीणमहानसी और पुलाकलब्धि।

१४४६ प्रश्न—पोष और आषाढ़ ही बढ़ते हैं, अन्य मास नहीं बढ़ते—ऐसा वर्णन शास्त्रों में कहां आया है?

उत्तर—वर्ष तथा युग का प्रारम्भ श्रावण कृ. १ को और समाप्ति आषाढ़ शु. १५ को होती है। यह बात जंबूद्वीपप्रज्ञप्ति, चन्द्रप्रज्ञप्ति, सूर्यप्रज्ञप्ति आदि सूत्रों में बताई है। चन्द्रमास २९ अहोरात्रि और एक अहो रात्रि के बासठिये बत्तीस भाग का ($२९\frac{३२}{६२}$) और सूर्यमास साढ़े तीस अहो रात्रि ($३०\frac{३०}{६०}$) का होना बतलाया है। इस हिसाब से जब सूर्य के ३० मास अधिक होते हैं, तब तक चन्द्र के ३१ महिने हो जाते हैं अर्थात् उपरोक्त हिसाब से ३० सूर्य-मास के ९१५ अहो-रात्रि होती है और इतनी अहो-रात्रि के बराबर ३१ चन्द्र-महिने उपरोक्त हिसाब से होते हैं। अतः सूर्य के ३० महीने होने से चन्द्र का एक अधिक मास और ६० होने पर दूसरा अधिक मास करना चाहिए। प्रत्येक युग में ३० वां महीना पोष और ६० वां महीना आषाढ़ ही आता है। अतः इस फलावट से ये ही दो महिने बढ़ते हैं। इस प्रकार पंच-वर्षीय युग के मध्य में पोष और अन्त में आषाढ़ बढ़ने का उपरोक्त अनुसार हिसाब जबूंद्वीपप्रज्ञप्ति आदि सूत्रों में मिलता है। पंच वर्षीय

युग के १८३० अहोरात्रि बताई है, जिसके सूर्य-मास ६०, ऋतु-मास ६१, चन्द्रमास ६२ और नक्षत्र-मास ६७ होने बताये हैं।

सूर्य-मास आदि प्रत्येक मास के दिन और दिन के भाग नीचे के यंत्र से देखें—

मास के नाम	सूर्य मास	ऋतु मास	चन्द्र मास	नक्षत्र मास
मासकी अहोरात्रि	३०	३०	२९	२७
अहोरात्रिके भाग	३०/६०	०	३२/६२	२१/६२

सूर्य और चन्द्र मास में उपरोक्त अन्तर होने से दोनों का मिलान करने के लिए युग में दो चन्द्र-मास बढ़ना बताया है।

१४४७ प्रश्न—करन, करावन और अनुमोदन, ये तीन करण हैं। इनमें से एकेन्द्रिय, विकलेन्द्रिय और असंज्ञी पंचेन्द्रिय में कितने करण हैं? संज्ञी में तो तीनों हैं, परन्तु असंज्ञी जीवों के विषय में प्रश्न है।

एक काय-योग वाले के भी तीन करण और वचन तथा काय—ऐसे दो योग वाले के करावन और अनुमोदन होता है?

उत्तर—एकेन्द्रिय से पंचेन्द्रिय पर्यन्त सभी जीवों के करना, कराना और अनुमोदन, ये तीन करण मानना ठीक प्रतीत होता

है, क्योकि उन्होने कराने और अनुमोदन की निवृत्ति नही की है। अत उनके तीनो ही करण की अविरति सम्बन्धी क्रिया चालू है। जैसा कि भगवती सूत्र श १ उ. ६ मे 'क्रिया विचार' करते हुए एकेन्द्रिय से पचेन्द्रिय पर्यन्त के जीवो के अठारह ही पापो की क्रिया बताई है। विचार किया जाय, तो एकेन्द्रिय जीव न तो मृषावाद का सेवन करते है, न कलह करते है, न अभ्याख्यान देते है, न पैशुन्य करते है और न परपरिवाद बोलते है, इत्यादि बाते उनमे प्रकट रूप से तो दिखाई नही देती, तथापि उनमे सभी पापो की क्रिया बताई है और यह भी "**कडा कज्जइ णो अकडा कज्जइ, अत्तकडा कज्जइ, णो परकडा कज्जइ, णो तदुभयाकडा कज्जइ**" इत्यादि बताया गया है। इससे स्पष्ट है कि उनके मृषावाद आदि की क्रिया स्वकृत है अर्थात् वे एकेन्द्रियादि अवस्था मे भी स्वय करते है। इस पर विचार करने से फलितार्थ यही निकलता है कि उन्होने उस क्रिया का त्याग नही किया, वे अविरत हैं। इसलिए उनके वे क्रियाएँ चालू रहती हैं। सामर्थ्यवान होते हुए भी विचारपूर्वक उन क्रियाओ का त्याग करने से ही त्यागी बनता है और तभी वे क्रियाएँ रुकती है। यह बात सज्ञी पचेन्द्रिय मे ही बन सकती है।

शंका–अविरति की अपेक्षा तो सभी करण खुले हैं, यह ठीक है, किन्तु हमारा प्रश्न अविरति की अपेक्षा नही था। हमारा प्रश्न तो जिस प्रकार तीनो योग वाले मन से भी कर स ` करा सकते और अनुमोदन कर सकते हैं। वैसे क्या एके

विकलेन्द्रिय भी कर सकते है ? जहा जितने योग है, वहाँ उतने ही करण है ? क्या वे शरीर मे या अध्यवसाय मे कर सकते, करा सकते और अनुमोदन कर सकते है ? जैसे वृक्ष को पानी पिलाने से उसे अनुकूल लगे, तो अनुमोदना आती है या नही ?

समाधान–एकेन्द्रिय मे तीनो करण होना सभवित है। उनके शरीर से करण, करावण और अनुमोदन तीनो करण होते है। जैसे हवा, पानी आदि से जीव विराधना होती है–यह स्वय करना है। हवा से प्रेरित वनस्पति आदि मे भी जीव विराधना होती है–यह कराना है। उनमे प्रफुल्लितता आना या अध्यवसायो मे परिवर्तन होना–यह अनुमोदन है। अत उनके शरीर व अध्यवसायो से तीनो करण होते है। इसी प्रकार बेइन्द्रियादि मे भी समझ लेना चाहिए।

१४४८ प्रश्न–पू. श्री दौलतरामजी म. के शिष्य श्री सौभाग्यमलजी म लिखित और लगभग ६०–७० वर्ष पूर्व अहमदनगर से प्रकाशित 'नव तत्त्व प्रश्नोत्तर' है। उसमे कुछ स्थान शकास्पद भी हैं। जैसे भाव-सामायिक, प्रतिक्रमण आदि मे मोक्ष तत्त्व छोड कर आठ तत्त्व माना है, जिसमे पाप तत्त्व भी शामिल है। द्रव्य वन्दन आदि मे पाच तत्त्व (पाप छोड-कर) माने तो भाव सामायिक मे पाप तत्त्व को क्यो नहीं छोडा ?

उत्तर–प्रश्न कथित प्रश्नोत्तर देखने मे नही आये। वे किस अपेक्षा लेकर चलते हैं, पता नही। भाव-सामायिक, प्रतिक्रमण आदि मे जो पाप तत्त्व शामिल लिया, उसका कारण या तो निश्चय सामायिकादि ही पाप अभाव का कारण समझ कर

स्थिति में काम में लाने पर भी प्रायश्चित्त माना है।

'आपवादिक स्थिति में किसी कार्य के दण्ड का विधान नहीं किया गया है'-ऐसा कथन ठीक प्रतीत नहीं होता, क्योंकि शास्त्रों में अपवाद का दंड भी बताया गया है।

व्यवहार सूत्र की जो अपवाद की स्थिति वाला उदाहरण दिया गया है, उसमें केवल लिंग-परिवर्तन मात्र हुआ है, संयम विराधना किंचित् मात्र भी नहीं हुई है। (स्वलिंग आदि तीनों लिंगों में भाव की अपेक्षा साधुत्व कायम रह सकता है)। फिर भी उनके भावों की जानकारी के लिए लिंग-परिवर्तन की आलोचना सुनना बताया है। आलोचना सुनने पर किसी प्रकार की सदोषना प्रतीत नहीं हुई, इसलिए उसका दण्ड नहीं दिया गया। इसी के आगे के सूत्र ३३ वें में व्रतों से विमुख होने पर दंड रूप नई दीक्षा बताई गई है।

स्थानांग सूत्र का जो प्रमाण दिया गया है, वह भी समीक्षा योग्य है। समीक्षा करने पर उसकी वास्तविक स्थिति ज्ञात हो जावेगी।

साधु ने पानी में से साध्वी को निकाली, इसमें उसने भगवान् की आज्ञा का भंग नहीं किया, किन्तु आज्ञा का उल्लंघन नहीं होते हुए भी अपकाय आदि की विराधना तो हुई ही है। जैसे-साधु आज्ञापूर्वक बरसते हुए पानी, धूंअर आदि में शौच-निवृत्ति हेतु जाता है। यह कार्य आज्ञापूर्वक होते हुए भी पानी आदि की विराधना का दण्ड वह अवश्य ग्रहण करता है। यद्यपि यह कार्य आज्ञा के अन्तर्गत किया गया, फिर भी